स्वाध्याय स्वमन्थन स्वावलम्बन

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

उत्तर प्रदेश सरकार का एकमात्र मुक्त विश्वविद्यालय

उ0 प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय प्रयागराज

॥ सरस्वती नः सुभगा मयस्करत् ॥

M.Com-106

प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र

खण्ड - 1 : परिचय

खण्ड - 2 : उत्पादन फलन

खण्ड - 3 : बाजार

सेक्टर-एफ, शान्तिपुरम, फाफामऊ, प्रयागराज-211021

www.uprtou.ac.in

टोल फ्री नम्बर - 1800-120-111-333

M.Com-106

प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र
MANEGERIAL ECONOMICS

खण्ड

1

परिचय

इकाई - 1 5
प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र की प्रकृति एवं क्षेत्र

इकाई - 2 16
मांग की प्रकृति एवं उसका नियम

इकाई - 3 28
मांग का विश्लेषण

इकाई - 4 44
मांग की लोच

इकाई - 5 64
तटस्थता वक्र विश्लेषण

इकाई - 6 78
मांग पूर्वाभास

इकाई - 7 90
फर्म का सिद्धान्त-लाभ एवं विक्रय अधिकतमकरण

NMDC-222

परामर्श-समिति

प्रो0 नागेश्वर राव	कुलपति - अध्यक्ष
डॉ0 हरीशचन्द्र जायसवाल	वरिष्ठ परामर्शदाता - कार्यक्रम संयोजक
श्री एम0 एल0 कनौजिया	कुलसचिव - सचिव

विषयगत सम्पादन

प्रो0 एस0 ए0 अंसारी	निदेशक, मोनिरबा, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

लेखक

डॉ0 ज्ञान प्रकाश यादव	असिस्टेन्ट प्रोफेसर, उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

प्रस्तुत पाठ्य सामग्री में विषय से सम्बन्धित सभी तथ्य एवं विचार मौलिक रूप से लेखक के स्वयं के हैं।

© उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

सर्वाधिकार सुरक्षित। इस पाठ्य-सामग्री का कोई भी अंश उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय की लिखित अनुमति लिए बिना, मिमियोग्राफ अथवा किसी अन्य साधन से पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय प्रयागराज की ओर से डॉ0 अरूण कुमार गुप्ता कुलसचिव द्वारा पुनः मुद्रित एवं प्रकाशित 2021

M.Com-106/2

मुद्रक : चन्द्रकला यूनिवर्सल प्रा0 लि0 42/7 जवाहर लाल नेहरू रोड प्रयागराज, 211002

NMDC-222

खण्ड-1 परिचय

प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र आधुनिक व्यवसाय का एक प्रमुख अंग है। प्रबंधकीय निर्णय लेने में प्रबंधकीय अर्थशास्त्र सहायक होता है। प्रस्तुत खण्ड सात इकाईयों में विभक्त है। प्रथम इकाई में प्रबंधकीय अर्थशास्त्र की प्रकृति एवं क्षेत्र के बारे में बताया गया है। इसके पश्चात् मांग की प्रकृति एवं नियम तथा मांग का विश्लेषण किया गया है। इसके अतिरिक्त अन्य इकाईयों में मांग की लोच, तटस्थता वक्र विश्लेषण, मांग पूर्वाभास तथा अन्त में फर्म का सिद्धान्त के अन्तर्गत लाभ एवं विक्रय अधिकतमकरण का अध्ययन किया गया है। उपरोक्त सभी इकाईयों में वर्णित विषय प्रबंधकों को निर्णय लेने में सहयोग प्रदान करते हैं। इसके अतिरिक्त उपरोक्त सभी विषयों में केवल प्रबंधकीय निर्णय हो अहम् भूमिका का निर्वाह करते हैं। अन्य तत्वों की भूमिका गौण होती है।

NMDC-222

इकाई-1 प्रबंधकीय अर्थशास्त्र की प्रकृति एवं क्षेत्र

संरचना

1.0 उद्देश्य

1.1 प्रस्तावना

1.2 प्रबंधकीय अर्थशास्त्र का अर्थ

1.3 प्रबंधकीय अर्थशास्त्र का प्रयोग

1.4 प्रबंधकीय अर्थशास्त्र की प्रकृति

1.5 प्रबंधकीय अर्थशास्त्र का क्षेत्र

1.6 प्रबंधकीय अर्थशास्त्र में समष्टि अर्थशास्त्र का प्रयोग

1.7 प्रबंधकीय अर्थशास्त्री के उत्तरदायित्व

1.8 व्यावसायिक फर्म

1.9 सारांश

1.10 बोध प्रश्न

1.11 सन्दर्भ ग्रन्थ

1.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप सक्षम होंगेः

-प्रबंधकीय अर्थशास्त्र के अर्थ एवं प्रकृति को जानने में,

-प्रबंधकीय अर्थशास्त्र का क्षेत्र समझने में,

-प्रबंधकीय अर्थशास्त्र में समष्टि अर्थशास्त्र का उपयोग समझने में, तथा

-प्रबंधकीय अर्थशास्त्र एवं अर्थशास्त्र का अन्तर समझने में।

1.1 प्रस्तावना

प्रबंधकीय अर्थशास्त्र सामान्य अर्थशास्त्र का ही एक संशोधित रूप होता है जिसका व्यवहार प्रबंधकीय निर्णय लेने में सहायक होने का है। एक प्रबंधक द्वारा निर्णय के लिए आवश्यक विषयों को इसके अन्तर्गत सम्मिलित किया जाता है। प्रबंधकीय अर्थशास्त्र क्रमबद्ध आर्थिक नियमों का विज्ञान होने के साथ-साथ कला के रूप में उनका समयोचित प्रयोग भी करता है। अतः यह कला और विज्ञान का अनूठा समन्वय है।

प्रबंधकीय अर्थशास्त्र का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है। प्रबंधकीय अर्थशास्त्र सूक्ष्म होते हुए भी बहुत कुछ समष्टि अर्थशास्त्र के प्रयोग पर निर्भर करता है। इसके अतिरिक्त प्रबंधकीय अर्थशास्त्र एवं सामान्य अर्थशास्त्र में अन्तर पाया जाता है।

1.3 प्रबंधकीय अर्थशास्त्र का अर्थ

प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र आधुनिक व्यवसाय का एक प्रमुख अंग है। यह सामान्य अर्थशास्त्र का ही वह संशोधित रूप है जिसका व्यवहार प्रबंधकीय निर्णय लेने में सहायक होना है। सामान्य अर्थशास्त्र में पूंजी बजटिंग, संयंत्र विस्थापन तथा विनियोग अवसर जैसे निर्णयों पर मुख्य ध्यान नहीं रखा जाता परंतु ये निर्णय एक फर्म के लिए काफी महत्वपूर्ण होते हैं एवम् इन निर्णयों के औचित्य को जानने के लिए आर्थिक विश्लेषण का प्रयोग किया जाता है। चूंकि क्रिया शोध तांत्रिकी निर्णय बर्ताव सुधारने के काम आने लगा, अतः अर्थशास्त्र में भी एक नई दृष्टि से व्यावसायिक इकाइयों का अध्ययन आवश्यक समझा जाने लगा। फलतः प्रबंधकीय अर्थशास्त्र का प्रादुर्भाव एवं विकास हुआ।

1.4 परिभाषा

अर्थशास्त्र की इस इकाई शाखा को सीमित शब्दों में परिभाषित करना कुछ कठिन है क्योंकि समयानुसार एवं परिस्थिति में परिवर्तन के फलस्वरूप इसकी प्रकृति एवं क्षेत्र में अन्तर आता है। प्रबंधकीय अर्थशास्त्र की समुचित परिभाषा के लिए कुछ विद्वानों के द्वारा की गई परिभाषा का अध्ययन आवश्यक है।

"प्रबंधकीय अर्थशास्त्र व्यावसायिक परिस्थितियों का विश्लेषण करने के लिए, अर्थशास्त्र की सैद्धान्तिक विधि का प्रयोग है"

—मैक वायर तक वेरियान

"प्रबंधकीय अर्थशास्त्र व्यावसायिक व्यवहार के साथ प्रबंध द्वारा निर्णय निर्माण तथा अग्रिम नियोजन के लिए आर्थिक सिद्धान्त का समन्वय है।"

—स्पेंसर एवम् सीजग्यैन

"प्रबंधकीय अर्थशास्त्र फर्मों के सिद्धान्त एवम् व्यवहार के बर्ताव का अध्ययन है।"

—बेट्स एण्ड पार्किन्स

"प्रबंधकीय अर्थशास्त्र का प्रयोग निर्णय लेने में किया जाता है। यह अर्थशास्त्र की वह शाखा है जो निरपेक्ष सिद्धान्त एवम् प्रबंधकीय व्यवहार के बीच की खाई को पाटती है।"

—"हाइन्स, मोटे व पाल"

उपरोक्त परिभाषाओं के विश्लेषण से प्रबंधकीय अर्थशास्त्र के आशय को स्पष्ट करने वाले तत्वों को जाना जा सकता है—

(1) व्यष्टि प्रकृति— प्रबंधकीय अर्थशास्त्र सूक्ष्म अध्ययन है, क्योंकि इसकी विषयवस्तु व्यावसायिक इकाई होती है। अतः व्यावसायिक

फर्म की समस्यायों का ही उल्लेख इसमें होता है। यह सारी अर्थव्यवस्था के बारे में अध्ययन नहीं करता।

(2) आर्थिक सिद्धान्त का सैद्धान्तिक व्यवहार—दूसरी विशेषता यह है कि प्रबंधकीय अर्थशास्त्र मुख्य रूप से उन आर्थिक सिद्धान्तों के समूह का प्रयोग करता है जो फर्म के सिद्धान्तों के रूप में जाने जाते हैं।

(3) आर्थिक सिद्धान्त एवम् व्यवसायिक व्यवहार का समन्वय— सिद्धान्तवादियों तथा व्यवहारवादियों के बीच के इस मतभेद से व्यवसाय जगत को निरंतर हानि होती आई है। **एडविन मैन्टाफील्ड** का कहना है कि प्रबंधकीय अर्थशास्त्र विभिन्न आर्थिक सिद्धान्तवादियों की कोरी विश्लेषणात्मक समस्याओं तथा प्रबंध के सामने आने वाली नीति की समस्याओं के बीच जो खाई होती है उसको पाटता है।

(4) प्रबंध द्वारा निर्णय निर्माण—निर्णय निर्माण की क्रिया में दो विशेषतायें होती हैं- (1) सीमित साधनों का सर्वश्रेष्ठ प्रयोग तथा (2) वातावरण की अनिश्चितता

(5) अग्रिम नियोजन— अग्रिम नियोजन प्रबंधकों का महत्वपूर्ण कार्य होता है। पूर्वानुमान अग्रिम निर्णयों के लिए आवश्यक होते हैं।

प्रबंधकीय अर्थशास्त्र की विषयवस्तु

इस विश्लेषण के आधार पर निम्नलिखित शब्दों में अर्थशास्त्र की परिभाषा दे सकते हैं।

"प्रंबधकीय अर्थशास्त्र, सामान्य अर्थशास्त्र का वह व्यवहारिक पहलू है जो व्यवसायिक फर्म का अध्ययन करता है और इसकी समस्याओं को सुलझाने में उचित निर्णय के लिए प्रबंध की मदद करता है।"

NODC-222

1.3 प्रबंधकीय अर्थशास्त्र का प्रयोग

(1) प्रबंधकीय अर्थशास्त्र वास्तविक व्यावसायिक व्यवहार तक पारस्परिक आर्थिक सिद्धान्तों का समन्वय है। प्रबंधकीय अर्थशास्त्र में इस बात का प्रयास किया जाता है कि लेखीय एवम् आर्थिक दृष्टियों में समन्वय स्थापित किया जाये जिससे लाभ एवम् लागत से सम्बन्धित आँकड़ों का प्रयोग निर्णय-निर्माण एवम् व्यावसायिक योजना में और अधिक प्रभावपूर्ण ढंग से किया जा सके।

(2) आर्थिक संबंधों की भी संभावना का अनुमान किया जा सकता है

(3) प्रबंधकीय अर्थशास्त्र अपेक्षित आर्थिक मात्राओं की भी भविष्यवाणी करता है जैसे- लागत, मांग, उत्पादन, कीमत, पूँजी आदि

(4) इन आर्थिक मात्राओं का निर्णय-निर्माण में प्रयोग करने से भविष्यकालीन लाभ, कीमत, लागत, पूँजी संबंधी योजनाओं को निश्चित किया जाता है।

(5) प्रबंधकीय अर्थशास्त्र की विषयवस्तु को निर्मित करने वाले ऐसे बाह्य तत्व भी हैं जिनसे व्यवसाय चलता है, जैसे- व्यावसायिक चक्र, राष्ट्रीय आय में परिवर्तन, कर, विदेश व्यापार, श्रम संबंध आदि। व्यवसाय प्रबंध इन बाह्य शक्तियों से अच्छी तरह परिचित होता है और उसी के अनुसार कार्य करता है।

1.4 प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र की प्रकृति

जे0एम0 केन्स के शब्दों में "कला दिये हुए लक्ष्यों की पूर्ति के लिए नियमों की एक पद्धति है।" प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र एक कला है। यह अनिश्चितताओं के मध्य फर्म के लिए सीमित साधनों का सर्वाधिक लाभप्रद प्रयोगों के विकल्प प्रदान करता है। विज्ञान कारण

तथा परिणाम के बीच सम्बन्ध की खोज के उद्देश्य से ज्ञान का एक क्रमबद्ध समूह है। प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र एक विज्ञान है जहाँ मांग, लागत, मूल्य, पूँजी, लाभ एवं वातावरणीय कारणों तथा परिणामों का क्रमबद्ध अध्ययन किया जाता है।

यह कहा जा सकता है कि चूंकि प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र क्रमबद्ध आर्थिक नियमों का विज्ञान होने के साथ-साथ कला के रूप में उनका समयोचित प्रयोग भी करता है अतः यह कला व विज्ञान का एक अनूठा समन्वय है।

1.5 प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र का क्षेत्र

प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र के अन्तर्गत बहुधा निम्नांकित विषयों का अध्ययन किया जाता है—

(1) फर्म का सिद्धान्त,

(2) मांग विश्लेषण तथा मांग पूर्वाभास,

(3) लागत तथा उत्पादन विश्लेषण,

(4) प्रतियोगिता,

(5) मूल्य सम्बन्धी निर्णय, नीति व व्यवहार,

(6) लाभ प्रबन्ध

(7) पूंजी प्रबन्ध,

(8) व्यावसायिक वातावरण।

हाल के कुछ वर्षों में प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र के क्षेत्र के अन्तर्गत क्रिया-शोध, रेखीय कार्यक्रम, सामग्री नमूना तथा खेल के सिद्धान्त को भी शामिल किया जा रहा है।

1.6 प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र में समष्टि अर्थशास्त्र का उपयोग

प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र सूक्ष्म होते हुए भी बहुत कुछ समष्टि

NMIU-222

अर्थशास्त्र के प्रयोग पर निर्भर करता है। इसके निम्न कारण हैं :

(1) फर्म जिन कच्चे माल, संयन्त्र, आदि का जो क्रय करता है उनकी मांग पैदा करता है। इन वस्तुओं का मूल्य न केवल इसकी अपनी मांग से प्रभावित होता है वरन् इस फर्म तथा इससे सम्बन्धित समस्त उद्योग की मांग के द्वारा निश्चित होता है। इतना ही नहीं, इन साधनों की मांग सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था में क्या है, इस पर भी इनका मूल्य आश्रित होता है।

(2) कोई फर्म विशेष अपनी कितनी वस्तुएँ बेच सकती हैं, यह इस बात पर भी निर्भर करता है कि उससे सम्बन्धित उद्योग की वस्तुओं की मांग तथा अर्थव्यवस्था की सामान्य मांग का स्तर क्या है। यदि उद्योग या अर्थव्यवस्था में मांग का स्तर ऊंचा है तो साधारणतया फर्म की वस्तुओं की मांग भी बढ़ती है। मन्दी की स्थिति में मांग भी गिरेगी। इसके उदाहरण मुद्रास्फीति व विस्फीति हैं।

(3) किसी एक वस्तु का मूल्य केवल उसी की मांग व पूर्ति से प्रभावित नहीं होता अपितु अन्य वस्तुओं की मांग और पूर्ति की स्थितियों पर भी निर्भर करता है।

1.7 प्रबन्धकीय अर्थशास्त्री के उत्तरदायित्व

(1) **व्यवसाय के मुख्य उद्देश्य की प्राप्ति**—एक प्रबन्धकीय अर्थशास्त्री अपने उत्तरदायित्वों को तभी अच्छी तरह निभा सकता है जब वह सदा अपने सामने व्यवसाय के मुख्य उद्देश्य को रखे। व्यवसाय का मुख्य उद्देश्य लगाई गई पूंजी पर अधिकतम लाभ प्राप्त करना होता है। उसे यह विश्वास होना चाहिए कि उसका कार्य फर्म के लाभ को अधिकतम सीमा तक पहुंचाने में सहायता करता है।

(2) **सफल अनुमान**— प्रबन्धकीय निर्णय स्वभावतः भविष्य

के अनुमान से सम्बधित है जो अनिश्चित है। अतः प्रबन्धकीय अर्थशास्त्री का यह उत्तरदायित्व होता है कि वह सफल अनुमान करे और इसी में उसकी सफलता निहित है। प्रबन्ध का विश्वास प्रबन्धकीय अर्थशास्त्री में तभी होता है जबकि उसके अनुमान सत्य निकलते हैं।

(3) अपनी त्रुटियों से प्रबन्ध को सूचित करना— पता चलने पर उनका दायित्व है कि प्रबन्ध को जल्दी से जल्दी सचेत कर दे कि उसके अनुमान में गलती रह गयी है। ऐसा करने से वह प्रबन्ध को न सिर्फ निर्णय में उचित संशोधन करने में सहायक होगा, बल्कि वह अपनी स्थिति को प्रबन्ध समूह में बनाए रखने में भी सफल होगा।

(4) व्यापक सम्बन्ध— उसका कर्तव्य है कि वह अपने सम्बन्धों को विस्तृत बनाकर रखे जिससे कि वह आंकड़ों के उन स्रोतों तक पहुँच सके जहाँ प्रबन्ध के अन्य सदस्यों की पहुंच या तो हो ही न सके या होना कठिन हो,। सूचनाओं के स्रोतों का पता और सूचना प्राप्त करने के स्थानों का ज्ञान बड़े पैमानों पर तो आवश्यक है ही, पर इससे कम महत्वपूर्ण यह नहीं है कि वह उन व्यक्तियों को जानता हो जो विशिष्ट ज्ञान रखते हैं।

(5) तत्परता— प्रबन्धकीय अर्थशास्त्री को सफल कहलाने के लिए ऐसे गुणों को विकसित करना चाहिए जिससे कि वह समूह में अपना विशिष्ट स्थान बना सके। उसे हमेशा ही अपनी सेवायें उन कार्यों में लगाने के लिए प्रस्तुत करना चाहिए जो विशिष्ट हों।

1.8 व्यावसायिक फर्म

प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र की विषय-वस्तु व्यावसायिक फर्म होती है इसलिए इसे **''फर्म का अर्थशास्त्र''** भी कहा जाता है। फर्म शब्द ''व्यावसायिक प्रतिष्ठान' शब्द की अपेक्षा अधिक व्यापक है क्योंकि फर्म के क्षेत्र में कृषिगत प्रतिष्ठान, व्यवसायी, तकनीकी तथा सेवा

NMS-222

कार्य करने वाली एवं आय उत्पादित करने वाली इकाइयां भी सम्मिलित की जानी है। "लाभ सर्वाधिकरण हेतु लाभ पर बेचने के लिए उत्पादन करने वाली इकाई फर्म होती है।" –डी० एस० वाटसन

"फर्म एक मध्य एजेण्ट है जो कि संगठनात्मक कार्य करने के लिए स्रोत स्वामियों तथा उपभोक्ताओ के बीच मध्यस्था करती है।'

–जी०सी० आर्चीबाल्ड

विशेषतायें–

(1) लाभ (2) विवेक (3) रूपान्तरण (4) उत्पत्ति-मूल्य निर्णय (5) आदान व उत्पादन के मूल्य

कार्य एवम् उद्देश्य

(1) लाभ सर्वाधिकरण,

(2) सन्तुष्टिकरण व्यवहार,

(3) बाजार विस्तार,

(4) सुदृढ़ वित्तीय स्थिति।

(5) मधुर श्रम सम्बन्ध,

(6) दीर्घकालीन अस्तित्व,

(7) सामाजिक उत्तरदायित्व,

(8) कुल विक्रय आगम सर्वाधिकरण,

(9) लागत न्यूनाधिकरण,

(10) व्यावसायिक साम्राज्य निर्माण,

(11) आर्थिक आत्मनिर्भरता।

1.9 सारांश

सामान्य अर्थशास्त्र का एक रूप प्रबंधकीय अर्थशास्त्र होता है।

सामान्य अर्थशास्त्र जहाँ सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था एवं उसके अन्य पहलुओं का अध्ययन है वही प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र के अन्तर्गत एक प्रबंधक को किन बातों एवं सिद्धान्तों का ज्ञान होना चाहिए का, अध्ययन किया जाता है। प्रबंधकीय अर्थशास्त्र की गतिविधियाँ प्रबंधक द्वारा सम्पादित की जाती हैं। अतः यह एक कला एवं विज्ञान दोनों रूपों में पाया जाता है। प्रबंधकीय अर्थशास्त्र के क्षेत्र के अन्तर्गत फर्म की मांग, मांग पूर्वाभास, लागत तथा लाभ सम्बन्धी निर्णय आते हैं। प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र के अनेक उत्तरदायित्व होते हैं जो व्यवसाय एवं फर्म को सुचारूपूर्वक चलाने के लिए आवश्यक होते हैं। फर्मों की विशेषताओं के अन्तर्गत लाभ, विवेक, रूपान्तरण, उत्पत्ति मूल्य निर्णय तथा आदान व उत्पादन के मूल्य होते हैं। इसके अतिरिक्त फर्म का कार्य एवं उद्देश्य ऐसी नीतियां एवं कार्य प्रणाली को अपनाना जिससे फर्म लाभ को प्राप्त करते हुए दीर्घकाल तक स्थायी रह सके।

1.10 बोध प्रश्न

1. प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र की प्रकृति व क्षेत्र की विवेचना करें।
2. "प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र वह अनुशासन है जो कि आर्थिक सिद्धान्तों के व्यावसायिक प्रबन्ध में प्रयोग का अध्ययन करता है।" विवेचना करें।
3. प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र के स्वभाव एवम् क्षेत्र का आलोचनात्मक परीक्षण कीजिए।
4. प्रबन्धकीय अर्थशास्त्री के कार्यों की विवेचना करें।
5. व्यावसायिक फर्म की परिभाषा दीजिए। इसकी प्रमुख विशेषताओं की चर्चा करें।

1.11 सन्दर्भ ग्रन्थ

1. जे0सी0 पंत, व्यष्टि अर्थशास्त्र, साहित्य भवन पब्लिकेशनस, आगरा, 2005

2. Ahuja, H.L.; Advanced Economic Theory, S. Chand & Company Ltd. 2001.

3. एम0 एल0 झिंगन, उच्च आर्थिक सिद्धान्त, वृंदा पब्लिकेशन्स प्रा0 लि0, 1947

इकाई-2 मांग की प्रकृति एवं उसका नियम (Nature and Law of Demand)

संरचना

2.0 उद्देश्य

2.1 प्रस्तावना

2.2 मांग की परिभाषा

2.3 मांग का नियम

2.4 मांग के प्रकार

2.5 मांग वक्र का स्वरूप

2.6 मांग के नियम के विभिन्न रूप

2.7 मांग में परिवर्तन

2.8 सारांश

2.9 बोध प्रश्न

2.10 सन्दर्भ ग्रन्थ

2.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप सक्षम होंगे—

- मांग का अर्थ समझने में,
- मांग का नियम जानने में,
- मांग वक्र का विश्लेषण करने में, तथा
- मांग के नियम के विभिन्न रूप जानने में।

2.1 प्रस्तावना

अर्थशास्त्र के अध्ययन में मांग का नियम अत्यन्त महत्वपूर्ण

NBPC-222

स्थान रखता है तथा सम्पूर्ण अर्थशास्त्र प्रत्यक्ष व परोक्ष रूप में किसी न किसी प्रकार से मांग के नियम से अवश्य प्रभावित है। वर्तमान समय में सम्पूर्ण अर्थशास्त्र मांग और पूर्ति के चारों ओर चक्कर लगा रहा है। मांग के बिना उपभोग तथा बाजार का अध्ययन नहीं किया जा सकता है। मांग का नियम अर्थाशास्त्र का आधारभूत नियम है। प्रबंधकीय अर्थशास्त्र में मांग के नियम का अत्यधिक महत्व होता है, क्योंकि प्रबंधक को अनेक निर्णय लेने होते हैं जिन्हें वह इस नियम के आलोक में आसानी से लेने में सक्षम होता है।

2.2 मांग की परिभाषा (Definition of Demand)

मांग को समझने के लिए मांग की परिभाषा के वर्गीकरण को समझना आवश्यक है। प्रमुख वर्गीकरण निम्नलिखित हैं—

(i) मांग का सम्बन्ध प्रभावपूर्ण इच्छा से है—

इस वर्ग के अन्तर्गत अर्थशास्त्रियों ने मांग को प्रभावपूर्ण इच्छा का पर्याय माना है। प्रो. पेन्सन के अनुसार ''मांग एक प्रभावी इच्छा है जिसमें तीन बातें शामिल होती हैं—

i. वस्तु को प्राप्त करने की इच्छा,

ii. वस्तु को खरीदने के उपलब्ध साधन, तथा

iii. साधनों को खर्च करने की तत्परता''

प्रो. पेन्सन की परिभाषा को त्रुटिपूर्ण माना गया क्योंकि जहां एक ओर यह मांग की मूलभूत प्रवृत्तियों की सही व्याख्या नहीं

NMDC-222

करती वही यह मांग और आवश्यकता में भी अन्तर नहीं करती है क्योंकि मांग सदा ही मूल्य एवं समय के सन्दर्भ में व्यक्त की जाती है।

(ii) मांग का सम्बन्ध मूल्य से है— दूसरे वर्ग में ऐसी परिभाषाएं है जिनमें मांग का सम्बन्ध मूल्य से स्थापित किया गया है। इसमें प्रमुख परिभाषाएं निम्न हैं—

प्रो. जे० एस० मिल के अनुसार-, "मांग शब्द का अभिप्राय मांगी गई मात्रा से लगाया जाना चाहिए जो कि एक निश्चित मूल्य द्वारा क्रय की जाती है। मांग की मात्रा स्थिर मात्रा नहीं होती, यह तो सामान्य मूल्य के साथ बदलती रहती है। वाघ (Waugh) के अनुसार, "किसी वस्तु की मांग उस वस्तु की मात्रा तथा उसकी कीमत से सम्बन्धित होती है, जो कीमत विशेष पर खरीदी जा सकती है।"

इस वर्ग की परिभाषाएं पहले वर्ग से उपयुक्त हैं। यहां मांग का सम्बन्ध कीमत से जोड़ा गया। इस वर्ग की परिभाषा में भी समय तत्व की उपेक्षा की गई है। अतः इस वर्ग की परिभाषा भी त्रुटिहीन नहीं है।

(iii) मांग का सम्बन्ध कीमत तथा समय दोनों से है—

इस वर्ग की परिभाषाएं मांग का सम्बन्ध कीमत और समय से स्थापित करती हैं जो वास्तव में मांग की मूल प्रवृत्तियों का सही चित्र प्रस्तुत करती है। इस वर्ग की परिभाषाएं निम्नलिखित हैं—

बेन्हम के अनुसार, ``किसी समय विशेष में दिए हुए मूल्य पर किसी वस्तु की मांग उस परिमाण को कहते हैं, जो उस मूल्य पर एक निश्चित समय में क्रय की जाती है।

NMDC-222

मेयर्स (Mayers) के अनुसार, "किसी वस्तु की मांग उन वस्तुओं की मात्राओं की सारिणी होती है, जिन्हें क्रेता समय विशेष पर सभी सम्भव मूल्यों पर खरीदने के लिए तैयार रहता है।"

इस वर्ग की परिभाषाएं अन्य वर्गों से अधिक उपयुक्त है क्योंकि यह परिभाषाएं मांग के वास्तविक तत्वों पर प्रकाश डालती हैं।

2.4 मांग के प्रकार

यदि हम वस्तु का मूल्य (P), उपभोक्ता की आय (Y) तथा अन्य वस्तुओं के मूल्य (Po) तीन चरों (Variables) को लें तथा एक-एक में परिवर्तन के बाद माँग में परिवर्तन जानना चाहें तो हमारे सामने निम्न तीन रूप आएंगे।

(क) मूल्य मांग सिद्धान्त (Price-Demand Theory)— वस्तु की मांग तथा वस्तु के मूल्य के बीच सम्बन्ध जबकि आय तथा अन्य वस्तुओं के मूल्य स्थिर हों, यह बताता है कि यदि वस्तु के मूल्य में परिवर्तन हो तो इसका क्या प्रभाव उस वस्तु की मांग के ऊपर पड़ेगा।

(ख) आय-मांग का नियम (Income Demand Theory) — $D_x = f(y)$

वस्तु की माँग (Dx) तथा आय (y) के बीच सम्बन्ध जबकि x वस्तु का मूल्य (P) तथा x को छोड़कर अन्य वस्तुओं के मूल्य (P_o) स्थिर हों, अर्थात् यदि उपभोक्ता की आय में परिवर्तन हो तो वस्तु की माँग में किस प्रकार का परिवर्तन होगा।

(ग) तिर्यक मांग या आड़ी मांग सिद्धान्त (Cross-Demand Theory) $D_x = f(P_0)$—वस्तु की मांग dx तथा अन्य वस्तुओं के मूल्य के बीच सम्बन्ध, जबकि वस्तु का मूल्य (P_x) तथा आय (y) अपरिवर्तित हो।

वास्तव में माँग का नियम इन तीनों का ही सम्मिलित रूप है, जिसे प्रो० मार्शल ने दिया है।

मांग का तार्किक सिद्धान्त तीन अलग-अलग आधारों से उत्पन्न होता है-

(1) **सीमान्त उपयोगिता परिकल्पना (Marginal Utility Hyptothesis)**

(2) **अधिमान परिकल्पना**

(3) **व्यक्त अधिमान परिकल्पना**

Assumptions (मान्यताएँ)

1. **उपभोक्ताओं की रुचियों व अधिमानों में कोई परिवर्तन न हो**
2. उपभोक्ता की आय स्थिर रहे।
3. रीति-रिवाजों में कोई परिवर्तन न हो।
4. प्रयोग में आने वाली वस्तु साधारण हो, अर्थात् श्रेष्ठता प्रदान करने वाली न हो।
5. अन्य वस्तुओं की कीमतों में परिवर्तन न हो।
6. भविष्य में कीमत परिवर्तन की आशा न हो।
7. वस्तु-विशेष के गुण में परिवर्तन न हो।
8. उपभोक्ता की आदतें स्थिर रहे।

NMDC-222

2.5 मांग वक्र का स्वरूप

1. सीमान्त उयोगिता ह्रास नियम– इस नियम के कारण माँग वक्र नीचे की ओर गिरेगा (Sloping Downward)। किसी वस्तु की जैसे-जैसे अधिक मात्रा का प्रयोग होगा, उसकी सीमांत उपयोगिता गिरती जाएगी। उपभोक्ता किसी भी वस्तु की अधिक मात्रा तभी क्रय करेगा जब उस वस्तु के मूल्य में कमी हो।

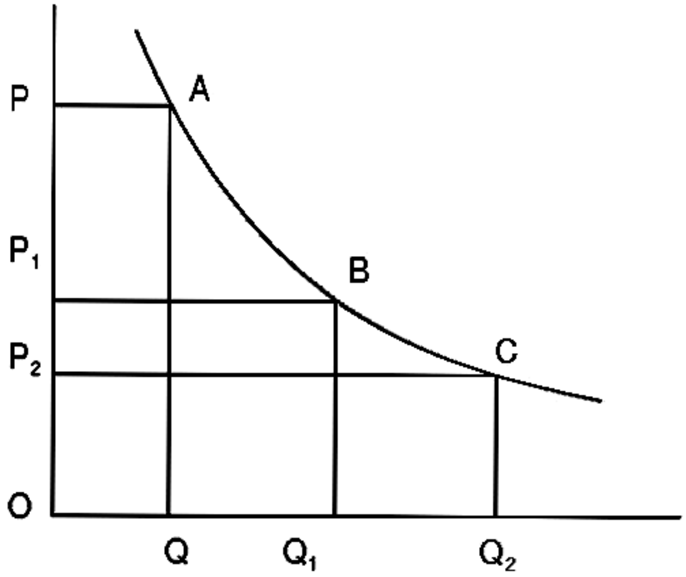

2. सम–सीमान्त उपयोगिता नियम तथा मांग वक्र का नीचे दाहिनी ओर गिरना।

इसके अंतर्गत $\frac{M_{U_x}}{P_x} = M_{U_m}$ होना आवश्यक है।

M_{U_x} – 'X' पदार्थ की सीमान्त उपयोगिता (Marginal utility of x commodity)

P_x – 'X' पदार्थ का मूल्य (Price of x commodity)

M_{U_m} – मुद्रा की सीमान्त उपयोगिता (Marginal utility of money)

M_{U_m} के स्थिर रहने की स्थिति में P_x की गिरावट के साथ MUm का गिरना आवश्यक है और M_{U_m} तभी गिरेगा जबकि x वस्तु की अधिक मात्रा उपभोग में लायी जाए।

सामान्यतया मांग वक्र नीचे की ओर गिरता हुआ होता है पर कुछ अपवाद स्वरूप यह ऊपर की ओर (Sloping Upward) भी

हो सकता है:

1. प्रतिष्ठा सूचक वस्तुयें— इन वस्तुओं की ऊंची कीमत दिखावटी प्रभाव (Demonstration effect) डालने के लिये लोग पसन्द करते हैं।

2. गिफेन वस्तुएँ : इसका आम प्रभाव इतना व्यापक होता है कि ऋणात्मक प्रतिस्थापन प्रभाव (Negative Substitution effect) को समाप्त कर देता है। ज्यादा आम होने पर लोग ऊंची कीमत की वस्तुएँ पसन्द करेंगे। इसे गिफेन अपवाद (Giffen's Paradox) की संज्ञा अर्थशास्त्री गिफेन जिन्होंने इसका अन्वेषण किया था, के नाम पर दी गयी।

3. मंदी या युद्ध की स्थिति : लोग संचय (Storing) करना शुरू कर देते हैं।

4. जीवन निर्वाह वस्तुएँ : जो लोगों को जीवन के लिए निश्चित मात्रा में अवश्य चाहिए। चाहे उसकी कीमत जितनी ऊँची ही हो, ऐसी वस्तु का उदाहरण नमक है।

बाजार मांग वक्र

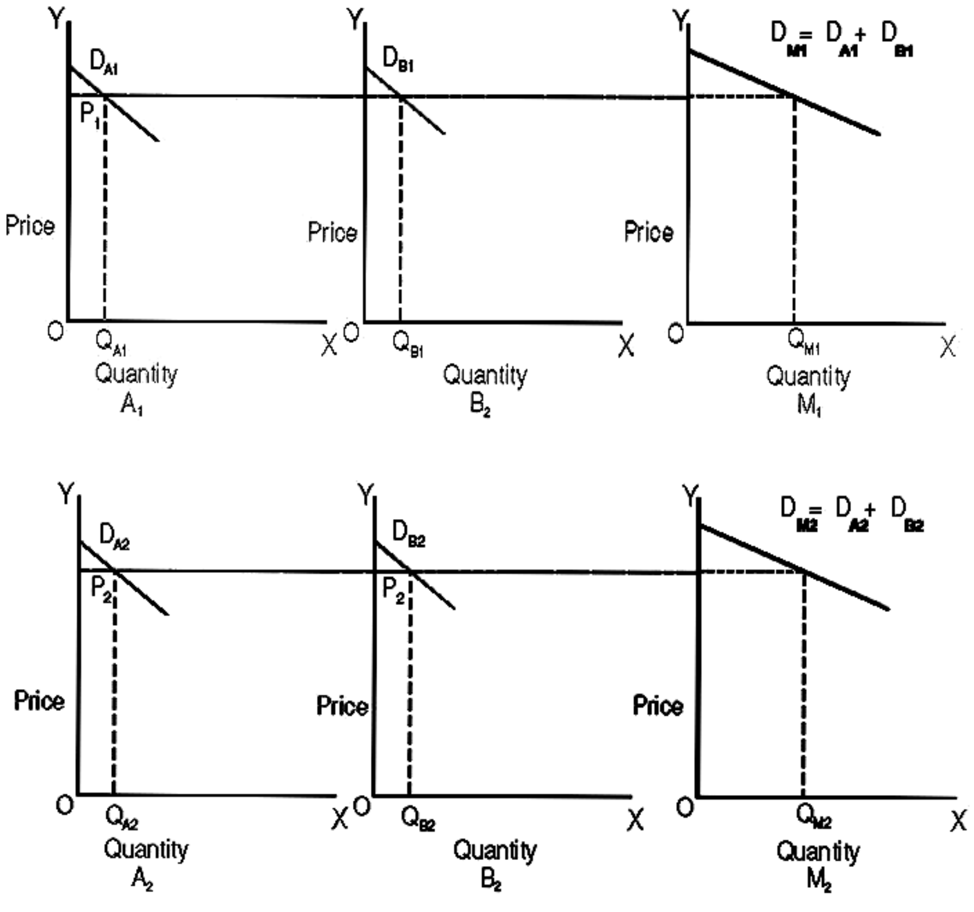

समाज में सभी व्यक्तियों के माँग वक्रों का जोड़ बाजार मांग वक्र होता है।

Demand curve of A + Demand curve of B = Market Demand curve

2.6 मांग के नियम के विभिन्न रूप

1. स्थानापन्न प्रभाव (Subsitution effect) : एक वस्तु के मूल्य में कमी दूसरी वस्तु की मांग में कमी ला दे।

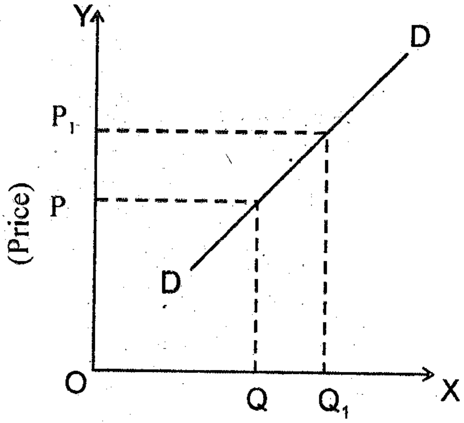

2. पूरक प्रभाव (Complementary goods) : पूरक वस्तुएं जब एक वस्तु के मूल्य में कमी दूसरी वस्तु की मांग में वृद्धि ला दें।

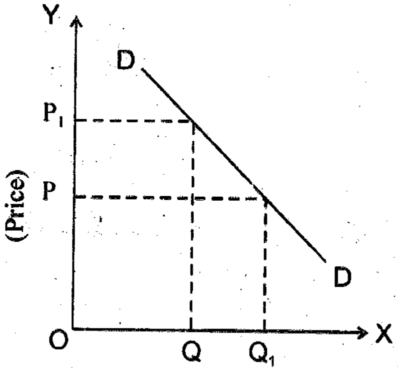

३. आय प्रभाव (सामान्य वस्तु तथा निम्नकोटि वस्तु के लिए)

सामान्य वस्तु : आय बढ़ने के साथ-साथ वस्तु की माँग बढ़ेगी।

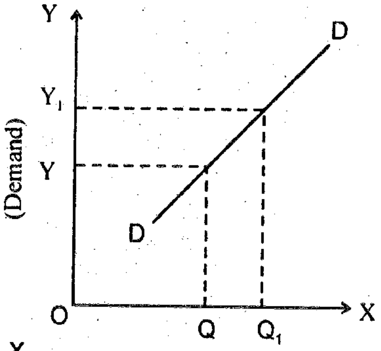

निम्नकोटि वस्तु : आय बढ़ने पर वस्तु की मांग घटती है। लोग ऊँची आय से घटिया वस्तु की जगह अच्छी या महंगी वस्तु खरीदेंगे।

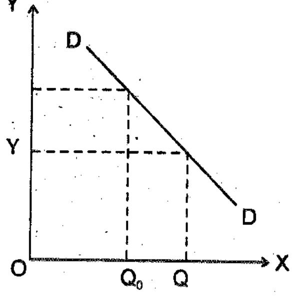

2.7 मांग में परिवर्तन (Change in Demand)

(क) संकुचन या विस्तार (Expansion or Contraction of Demand)

अन्य बातें समान रहने पर जब किसी वस्तु के मूल्य में कमी के कारण मांग बढ़ती है तो इसे विस्तार (expanstion) तथा कीमत के बढ़ने पर मांग में कमी संकुचन (contraction) प्रभाव कहते हैं।

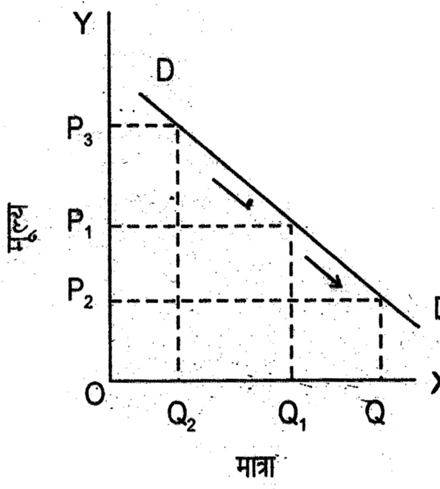

(ख) मांग में परिवर्तन Shifting of Demand :

यदि वस्तु की कीमत स्थिर रहे, लेकिन अन्य निर्धारक तत्वों में परिवर्तन के कारण, एक ही मूल्य पर मांग अपेक्षाकृत अधिक हो जाए तो मांग वृद्धि (increase in or inten-sification of de-mand) कहेंगे।

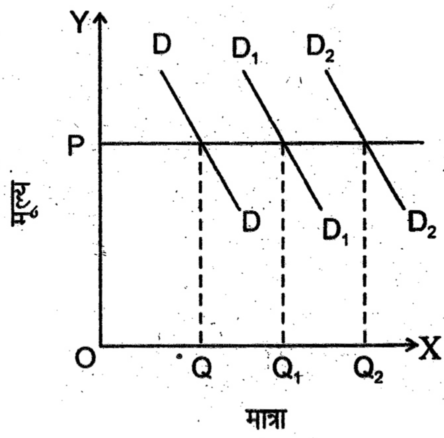

चित्र में D_2 D_2 के द्वारा इसे दिखाया गया है।

यदि अन्य तत्त्वों के प्रभाव स्वरूप मांग में कमी होने से मांग वक्र नीचे आ जाए जैसा कि चित्र में DD वक्र प्रदर्शित करता है तो इसे मांग में कमी (Decrease in or weakening in Demand) कहेंगे।

NMDC-222

(मार्शल के सम सीमांत उपयोगिता सिद्धान्त के आधार पर मांग वक्र का व्युत्पादन)

(Derivation of Demand curve from equi marginal utility approach)

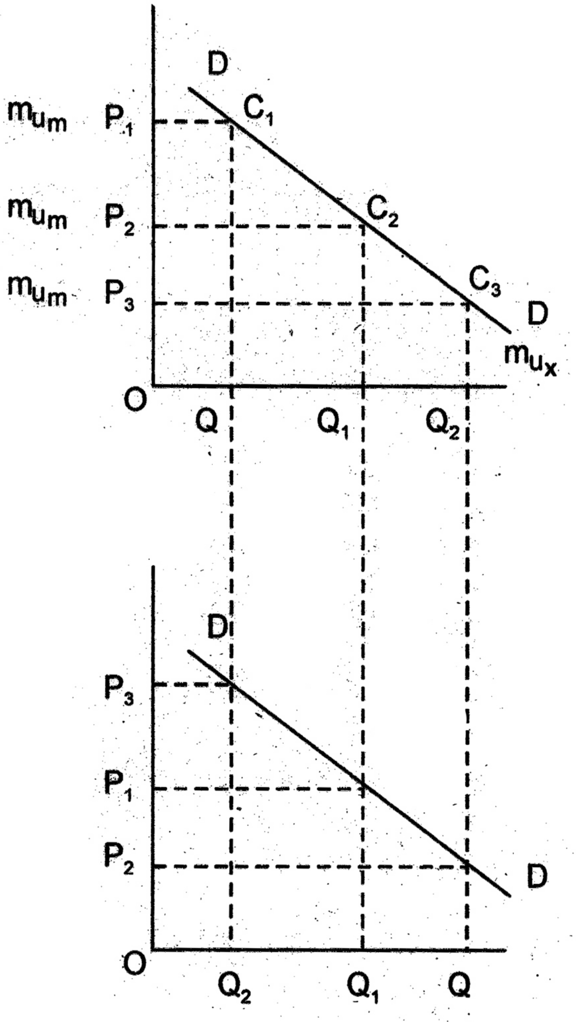

$$\frac{M_{U_x}}{P_x} = M_{U_m}$$

आलोचनाएँ (Criticisms) :

(Limitations of Utility analysis or demand theory)

1. उपयोगिता को गणन-संख्या प्रणाली (Cardinal measurement) से नहीं मापा जा सकता।
2. एक वस्तु मॉडल अवास्तविक है।
3. मुद्रा उपयोगिता का अपूर्ण माप है।
4. मुद्रा की सीमान्त उपयोगिता स्थिर नहीं है।
5. उपयोगिता विश्लेषण आय-प्रभाव, स्थानापन्न प्रभाव एवं कीमत

NMDC-322

प्रभाव का अध्ययन नहीं करता।

6. यह नियम Giffen या घटिया (inferior) वस्तुओं की व्याख्या नहीं करता।

7. यह विश्लेषण अविभाज्य वस्तुओं की मांग को समझाने में विफल है।

2.8 सारांश

अर्थशास्त्र का प्रमुख सिद्धान्त मांग एवं पूर्ति का सिद्धान्त है। मांग को परिभाषित करने के क्रम में अनेक विद्वानों ने अपने-अपने अनुसार परिभाषित किया है। जहाँ कुछ ने इसका सम्बन्ध मूल्य से एवं अन्य ने इसे कीमत तथा समय दोनों से जोड़ा है। मांग के सिद्धान्त के अन्तर्गत आय का सिद्धान्त तथा तिर्यक मांग का सिद्धान्त आता है। मांग का सिद्धान्त तीन आधारों - सीमान्त उपयोगिता, अधिमान परिकल्पना तथा व्यक्त अधिमान परिकल्पना से उत्पन्न होता है। मांग का नियम अनेक मान्यताओं पर आधारित है। सामान्यतः मांग वक्र नीचे की ओर गिरता हुआ होता है। सभी व्यक्तियों के इकट्ठा मांग को बाजार मांग वक्र कहते हैं। मांग वक्र के अनेक अपवाद देखे जा सकते हैं। मांग के नियम के अनेक रूप देखे जाते हैं। मांग में परिवर्तन भी अनेक कारणों से देखा जा सकता है।

2.9 बोध प्रश्न

1. मांग से आप क्या समझते हैं ? मांग के प्रमुख प्रकारों

को बताइये।

2. मांग वक्र के स्वरूप को विश्लेषित करें।

3. मांग में परिवर्तन का वर्णन करें।

2.10 सन्दर्भ ग्रन्थ

1. जे0सी0 पंत, व्यष्टि अर्थशास्त्र, साहित्य भवन पब्लिकेशनस, आगरा, 2005

2. Ahuja, H.L.; Advanced Economic Theory, S. Chand & Company Ltd. 2001.

3. एम0 एल0 झिंगन, उच्च आर्थिक सिद्धान्त, वृंदा पब्लिकेशन्स प्रा0 लि0, 1947

इकाई-3 मांग का विश्लेषण

संरचना

3.0 उद्देश्य

3.1 प्रस्तावना

3.2 मांग का विश्लेषण

3.2.1 मांग का नियम

3.2.2 मार्शल का मांग का नियम

3.2.3 मांग की सारिणी तथा व्यक्तिगत मांग वक्र

3.2.4 मांग वक्र का स्वरूप

3.2.5 बाजार मांग वक्र

3.3 आड़ी मांग

3.4 मांग के प्रकार

3.5 मांग में परिवर्तन

3.6 सारांश

3.7 बोध प्रश्न

3.8 सन्दर्भ ग्रन्थ

3.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप सक्षम होंगे :-

- मांग के नियम का विश्लेषण करने में,
- मांग सारिणी एवं मांग वक्र के स्वरूप को जानने में,
- मांग के प्रकारों को जानने में. तथा

– मांग में परिवर्तन के कारणों को समझने में।

3.1 प्रस्तावना

इस इकाई से पूर्व आपने मांग की प्रकृति एवं उसके नियम का अध्ययन किया। इस इकाई में मांग के नियम का विश्लेषण एवं उससे सम्बन्धित अन्य पहलुओं का अध्ययन किया जायेगा। मांग के विश्लेषण के अन्तर्गत मांग का नियम क्यों इस तरह कार्य करता है तथा कौन से ऐसे तत्व हैं जो मांग के नियम को प्रभावित करते हैं तथा मांग वक्र का क्या स्वरूप होगा, कि इस बात का अध्ययन किया जायेगा। मांग के नियम के अनुसार जब वस्तुओं के मूल्य बढ़ जाते हैं तो उनकी मांग घट जाती है तथा जब मूल्य घट जाते हैं तो उनकी मांग बढ़ जाती है। इस नियम को मांग-विश्लेषण के अन्तर्गत विश्लेषित कर वास्तविक एवं उचित कारणों को तलाशा जाता है। इस प्रकार इस इकाई के अन्तर्गत मांग से सम्बन्धित महत्त्वपूर्ण पहलुओं का अध्ययन किया जायेगा।

3.2 माँग-विश्लेषण (Demand Analysis)

जब कोई उपभोक्ता किसी दिये हुए समय एवं मूल्य पर, बाजार में किसी वस्तु की जो मात्रा क्रय करता है, उसे उस वस्तु की माँग कहते हैं। मूल्य के उल्लेख के बिना माँग का कोई अर्थ नहीं होता है। अतः मांग के साथ मूल्य का उल्लेख आवश्यक होता है। इसका कारण यह है कि भिन्न-भिन्न मूल्यों पर किसी वस्तु की भिन्न-भिन्न मात्राएं माँगी जायेंगी तथा मूल्य में परिवर्तन का प्रभाव माँग पर पड़ता है। इसके अतिरिक्त किसी दिये गये समय में मूल्य ही वह तत्व है जो मांग को उस वस्तु

की इच्छा तथा उस वस्तु की आवश्यकता से अलग कर देता है। यद्यपि कि अनेक अर्थशास्त्री प्रभावोत्पादक इच्छा को ही मांग कहते हैं पर वस्तुस्थिति यह है कि प्रभावोत्पादक इच्छा, आवश्यकता होती है। जब आवश्यकता अथवा प्रभावोत्पादक इच्छा का अध्ययन किसी निश्चित समय में तथा निश्चित मूल्य पर किया जाता है तो यह मांग कहलाती है। बेन्हम (Benham) ने माँग को परिभाषित करते हुए कहा- किसी दिये हुए मूल्य पर किसी वस्तु की मांग उस वस्तु की वह मात्रा है जो उस मूल्य पर एक निश्चित समय में खरीदी जायेगी।

3.2.1 मांग का नियम —

किसी वस्तु की मांग तथा उसके निर्धारक तत्वों के बीच फलनात्मक सम्बन्ध की व्याख्या मांग के नियम के नाम से जानी जाती है। किसी वस्तु की मांग उस वस्तु के मूल्य, अन्य वस्तुओं के मूल्य जिससे मांग प्रभावित हो सकती है, उपभोक्ता की आय तथा उपभोक्ता की पसंद पर निर्भर करती है। अतः मांग के नियम का उद्देश्य वस्तु की मांग तथा उपरोक्त निर्धारक तत्वों के बीच फलनात्मक सम्बन्ध का अध्ययन है। मांग के नियम को फलनात्मक सम्बन्ध के रूप में निम्न प्रकार व्यक्त किया जा सकता है—

$$D_x = f(P_x, P_o, Y, T)$$

जहां D_x = किसी वस्तु के सम्बन्ध में उपभोक्ता की मांग है।

P_x = इस वस्तु का मूल्य

P_o = वस्तु x के अतिरिक्त अन्य सभी वस्तुओं के

UPRTOU / MCDC-222

मूल्य

Y = उपभोक्ता की आय तथा

T = उसकी रुचि व्यक्त करता है।

इस समीकरण का अर्थ यह हुआ कि मांग का नियम यह स्पष्ट करता है कि यदि वस्तु के मूल्य, उपभोक्ता की आय, उसकी रुचि तथा उस वस्तु की स्थानापन्न या पूरक वस्तुओं के मूल्य में परिवर्तन हो तो उसका प्रभाव उस वस्तु की मांग पर पड़ेगा। परन्तु एक साथ इन सभी चरों में परिवर्तन करके इनका मांग के ऊपर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन एवं विश्लेषण अत्यन्त ही कठिन कार्य होगा तथा मांग के नियम की सरल रूप में व्याख्या सम्भव नहीं हो पायेगी। अतः दिये गये सभी चरों में से वस्तु के मूल्य को छोड़कर शेष सभी चरों को स्थिर मान लिया जाता है। इस प्रकार मांग का नियम मांगी गयी वस्तु की मात्रा तथा उसके मूल्य के बीच फलनात्मक सम्बन्ध के रूप में जाना जाता है। यह इस प्रकार लिखा जा सकता है—

$Dx = f(P_x)$ (अन्य तत्त्वों के समान रहने पर)

उपभोक्ता के व्यवहार अथवा किसी वस्तु के सम्बन्ध में उसकी मांग की व्याख्या के लिए तथा मांग के नियम के स्पष्टीकरण के लिए मार्शल से लेकर अब तक समय-समय पर अनेक सिद्धान्तों ने योगदान किया है। सर्वप्रथम मांग के नियम का प्रतिपादन प्रो० मार्शल ने किसी वस्तु से मिलने वाली मापनीय सीमान्त उपयोगिता के आधार पर किया तथा यह बताया कि किसी वस्तु की मांग (D_x) तथा वस्तु के मूल्य (P_x) में विलोम सम्बन्ध पाया जाता है। इस प्रकार स्पष्ट है जैसे-जैसे किसी वस्तु

का मूल्य बढ़ता जायेगा उसकी मांग कम होती जायेगी तथा इसके विपरीत यदि वस्तु का मूल्य गिरता जायेगा तो उसकी मांग बढ़ती जायेगी।

3.2.2 मार्शल का मांग का नियम

उपयोगिता का संख्यात्मक माप सम्भव मानते हुये तथा वस्तु के स्टॉक में वृद्धि के साथ उसकी सीमान्त उपयोगिता में कमी होती जाती है, पर उपयोग के दौरान मुद्रा की सीमान्त उयोगिता स्थिर रहती है, मार्शल ने मांग के नियम का प्रतिपादन करते हुये कहा कि किसी वस्तु की मांगी हुई मात्रा तथा उस वस्तु के मूल्य के बीच विलोम सम्बन्ध पाया जाता है तथा जैसे-जैसे किसी वस्तु का मूल्य गिरता जाता है उसकी मांग बढ़ती जाती है तथा इसके विपरीत जैसे-जैसे किसी वस्तु का मूल्य बढ़ता जाता है उसकी मांग गिरती है। मार्शल के शब्दों में—"मांग का एक सामान्य नियम है— किसी वस्तु की अधिक मात्राओं में बिक्री के लिए उसके मूल्य में निश्चित रूप से कमी होनी चाहिए ताकि उसके अधिक क्रेता मिल सकें। दूसरे शब्दों में मूल्य के बढ़ने से मांग घटती है और मूल्य के गिरने से मांग बढ़ती है। अतः मार्शल के अनुसार D_x तथा P_x के बीच विपरीत फलनात्मक सम्बन्ध पाया जाता है अर्थात् मूल्य (P_x) में वृद्धि होने पर माँग (D_x) में कमी हो जायेगी। इस विपरीत सम्बन्ध के कारण ही मूल्य माँग सम्बन्ध ऋणात्मक होता है। मूल्य में होने वाला परिवर्तन मांग में विपरीत परिवर्तन लाता है परन्तु दोनों में परिवर्तन एक निश्चित अनुपात में हो, यह आवश्यक नहीं है। इस प्रकार मार्शल का मांग से सम्बन्धित दृष्टिकोण ही मांग का नियम कहलाता है।

NMDC-222

3.2.3 माँग की सारिणी तथा व्यक्तिगत माँग वक्र

वस्तु की विभिन्न मात्राओं की सूची जो विभिन्न मूल्य पर मांगी या क्रय की जाती है, मांग सारणी कहलाती है। वस्तु के मूल्य तथा मांग में विलोम फलनात्मक सम्बन्ध के कारण जब किसी वस्तु का मूल्य अधिक होता है तो वस्तु की कम मात्रा मांगी जाती है तथा इसके विपरीत जब वस्तु का मूल्य कम रहता है तो अधिक वस्तुएं मांगी जाती हैं। मांग की सारणी दो प्रकार की होती है— व्यक्तिगत मांग की सारणी तथा सामूहिक मांग की सारणी। किसी व्यक्ति द्वारा किसी मूल्य पर मांगी जाने वाली वस्तु की मात्राओं की सूची को व्यक्तिगत मांग की सारणी कहते हैं। जब विभिन्न व्यक्तियों की मांग की सारणियों को मिला देते हैं तो सामूहिक मांग की सारणी बन जाती है।

सारिणी

मूल्य प्रति इकाई रु०	वस्तु की मांगी गई इकाइयां संख्या
20	20
15	30
10	40
5	60

उपरोक्त सारणी से यह स्पष्ट है कि जैसे-जैसे वस्तु का मूल्य घटता गया है माँगी गई वस्तु की मात्रा बढ़ती गयी है अथवा जैसे-जैसे मूल्य बढ़ता गया है माँगी गई वस्तु की मात्रा घटती गई है।

NMDC-222

सारणी द्वारा प्रदर्शित मूल्य तथा वस्तु की मात्रा के सम्बन्ध को रेखाचित्र के माध्यम से प्रदर्शित किया जा सकता है।

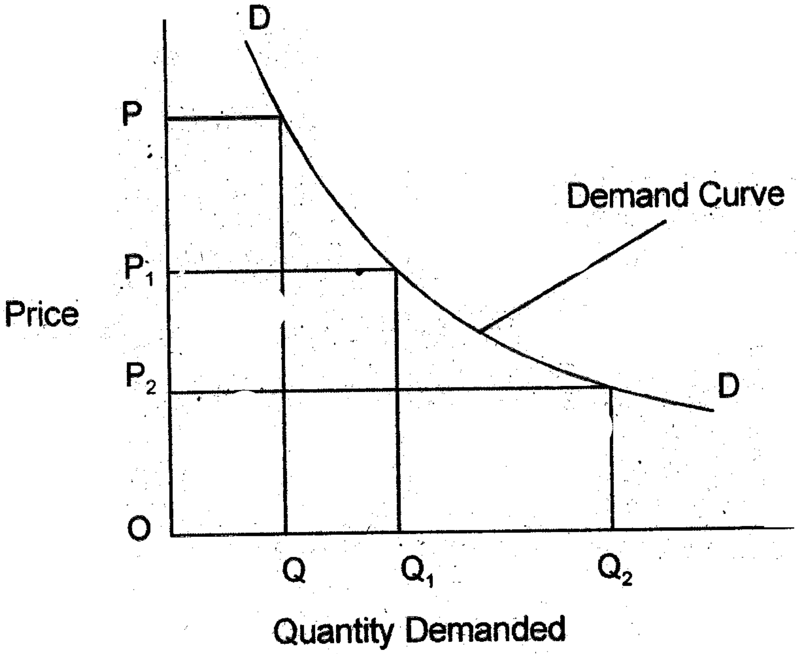

रेखाचित्र में प्रदर्शित DD मांग वक्र है जो दायें गिरता हुआ है। रेखाचित्र से स्पष्ट है जब मूल्य OP है तो मांग OQ जब मूल्य घटकर OP_1 हो जाता है तो मांग बढ़कर OQ_1 हो जाती है। इसी प्रकार मूल्य OP_2 होने की स्थिति में मांग बढ़कर OQ_2 हो गयी है।

नियम की मान्यतायें

मांग का नियम कुछ मान्यताओं पर आधारित है। अतः मांग के नियम की चर्चा करते समय यह उल्लेख किया गया कि नियम तभी सत्य होगा जब अन्य बातें समान रहें। यह मान्यताएं निम्नलिखित हैं:-

1. लोगों की आय स्थिर रहे।
2. अन्य वस्तुओं के मूल्य के वृद्धि न हो।
3. लोगों की रुचि स्थिर बनी रहे।

NMDC-222

4. स्थानापन्न वस्तुओं का प्रयोग न हो।
5. वस्तु के मूल्य में होने वाला परिवर्तन इस आशा को जन्म न दे कि भविष्य में मूल्य और बढ़ेगा अथवा घटेगा।
6. वस्तु ऐसी न हो कि मूल्य में वृद्धि के कारण लोग इसे प्रतिष्ठा सूचक समझ कर अधिक क्रय करने लगें।

यदि उपर्युक्त मान्यतायें रहे तो मांग की सारिणी वही बनी रहेगी और मांग वक्र वही बना रहेगा। परन्तु यदि इन मान्यताओं में परिवर्तन हो जाय तो मांग की मूल सारिणी ही परिवर्तित हो जायेगी। परिणामस्वरूप मांग वक्र दूसरा बन जायेगा। इस स्थिति में यह सम्भव है कि उसी मूल्य पर पहले से अधिक अथवा कम वस्तुएं मांगी जायें।

3.2.4 मांग वक्र का स्वरूप—

मांग वक्र की प्रारम्भिक व्याख्या से यह स्पष्ट है कि मांग वक्र सामान्यतया नीचे दाहिने ओर झुकेगा। यहां हम उन कारणों का उल्लेख करेंगे जिनके कारण मांग वक्र नीचे दाहिने ओर गिरता हुआ पाया जाता है। ये कारण निम्नलिखित हैं—

1. सीमान्त उपयोगिता ह्रास नियम— इस नियम के अनुसार कोई उपभोक्ता जैसे-जैसे किसी वस्तु की अधिक इकाइयां क्रय करता जायेगा उससे मिलने वाली सीमान्त उपयोगिता क्रमशः कम होती जायेगी। अतः उपयोगिता की कमी होने के कारण कोई भी उपभोक्ता किसी भी वस्तु की अधिक मात्रा तभी क्रय करेगा जब उस वस्तु के मूल्य में कमी हो। इसके विपरीत यदि किसी कारण से उपभोक्ता को उस वस्तु की कम मात्रा उपलब्ध हो तो उस वस्तु की उपयोगिता अधिक होगी और वह उसके लिए अधिक मूल्य देने के लिए तत्पर हो जायेगा। ऐसा वह

NMDC-222

इसलिए करेगा क्योंकि मूल्य के रूप में उसे उपयोगिता का त्याग करना पड़ता है और यह त्याग अधिक मूल्य पर अधिक तथा कम मूल्य पर कम होगा। परन्तु कोई भी उपभोक्ता किसी वस्तु का मूल्य उससे मिलने वाली उपयोगिता से अधिक नहीं देगा। संस्थिति की स्थिति में वस्तु से मिलने वाली सीमान्त उपयोगिता वस्तु के मूल्य के बराबर होती है। इस प्रकार गिरते हुये मूल्य के साथ संस्थिति के लिए यह आवश्यक है कि सीमान्त उपयोगिता में कमी आये और कमी तभी सम्भव है जबकि वस्तु की मात्रा में वृद्धि लायी जाय।

2. समसीमान्त उपयोगिता नियम तथा उपभोक्ता की संस्थिति— मार्शल के अनुसार उपभोक्ता अधिकतम सन्तुष्टि या संस्थिति की स्थिति में वहां होगा, जहां $M_{U_x}/Px = M_{U_M}$ अर्थात् वस्तु की सीमान्त उपयोगिता तथा उसके मूल्य का अनुपात मुद्रा की सीमान्त उपयोगिता (जो स्थिर है) के बराबर हो जाय। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि $M_{U_x} = M_{U_M}.Px$ होगा। अतएव M_{U_M} के स्थिर रहने की स्थिति में, Px की गिरावट के साथ M_{U_x} का गिरना आवश्यक है, और यह तभी गिरेगा जब X वस्तु की अधिक मात्रा उपभोग में लायी जाये।

3. प्रतिस्थापन प्रभाव— यदि किसी वस्तु का मूल्य गिरता है और स्थानापन्न वस्तु का मूल्य स्थिर बना रहता है तो उपभोक्ता मंहगी वस्तु के स्थान पर सस्ती वस्तुओं को प्रतिस्थापित करता है। इस प्रकार अधिक सस्ती वस्तु का प्रयोग बढ़ जाता है। इस प्रकार मांग में होने वाली वृद्धि प्रतिस्थापन प्रभाव कहलाती है।

4. आय प्रभाव— किसी वस्तु की कीमत में गिरावट के कारण, उस वस्तु के रूप में उपभोक्ता की वास्तविक आय बढ़ जाती है। वास्तविक आय में परिवर्तन के फलस्वरूप मांग

NMDC-222

में होने वाला परिवर्तन आय प्रभाव कहलाता है। उदाहरण के लिए यदि चीनी की कीमत 20 रु0प्रति किलोग्राम से घटकर 10 रु0 प्रति किलोग्राम हो जाये तो ऐसी स्थिति में उपभोक्ता उतने ही व्यय से 2 किलो ग्राम चीनी खरीद सकता है। स्पष्ट है कि उसकी आय में 10 रु0 की वृद्धि हो गयी है जिसका कुछ भाग वह चीनी की अतिरिक्त मात्रा खरीदने पर व्यय कर सकता है, तथा आय का शेष भाग अन्य वस्तुओं पर व्यय कर सकता है। वास्तव में इसे ही आय प्रभाव कहते हैं।

3.2.5 बाजार मांग वक्र—

किसी विशिष्ट समयावधि में अन्य बातों के समान रहने पर किसी वस्तु की कुल मात्रा जो सभी उपभोक्ता किसी मूल्य पर क्रय करने के लिए इच्छुक है, वह उस वस्तु की बाजार मांग होगी। उदाहरण के लिए यदि P_1 मूल्य पर X वस्तु के विभिन्न उपभोक्ताओं की मांग $d_1, d_2, d_3 ....d_n$ है तो P_1 मूल्य पर बाजार मांग $\Sigma(d_1 + d_2 + d_3 +......d_n)$ होगी।

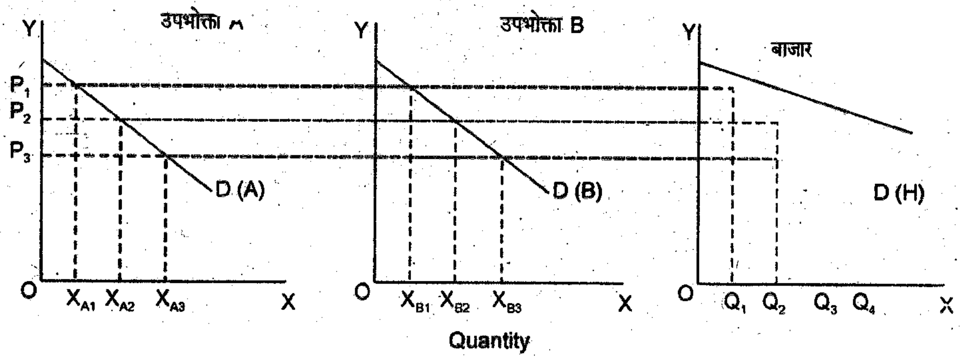

3.3 आड़ी मांग या तिर्यक मांग—

किसी वस्तु के मूल्य तथा अन्य वस्तुओं के मूल्य के बीच दो प्रकार के सम्बन्ध पाये जाते हैं—

(क) यदि किसी वस्तु के मूल्य में कमी दूसरी वस्तु की मांग में कमी ला दे तो ऐसी वस्तुएं परस्पर स्थानापन्न कहलायेंगी। x तथा y वस्तुएं उस समय स्थानापन्न कहलायेंगी जबकि y वस्तु के मूल्य में कमी होने पर उपभोक्ता x वस्तु की मांग घटा दे तथा इसी प्रकार y वस्तु के मूल्य में वृद्धि होने पर उपभोक्ता x वस्तु की मांग बढ़ा दे। अतः स्पष्ट है कि एक वस्तु के मूल्य एवं उसकी स्थानापन्न वस्तु की मात्रा में प्रत्यक्ष सम्बन्ध होता है।

इस रेखाचित्र में DD माँग वक्र दो स्थानापन्न वस्तुओं X तथा y के क्रमशः मांग तथा मूल्य के बीच फलनात्मक सम्बन्ध व्यक्त करता है। इस प्रकार DD वक्र $DX = f(P_o)$ को प्रदर्शित करता है। DD वक्र से स्पष्ट है कि जब y का मूल्य बढ़कर OP से OP_1 हो जाता है तो स्थानापन्न X वस्तु की आंग OQ से बढ़कर OQ_1 हो जाती है।

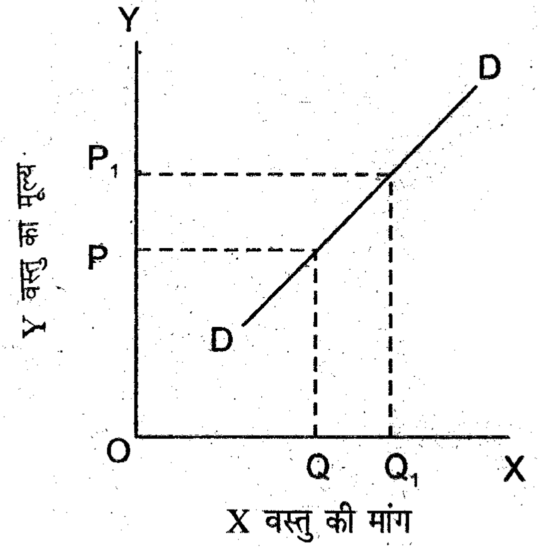

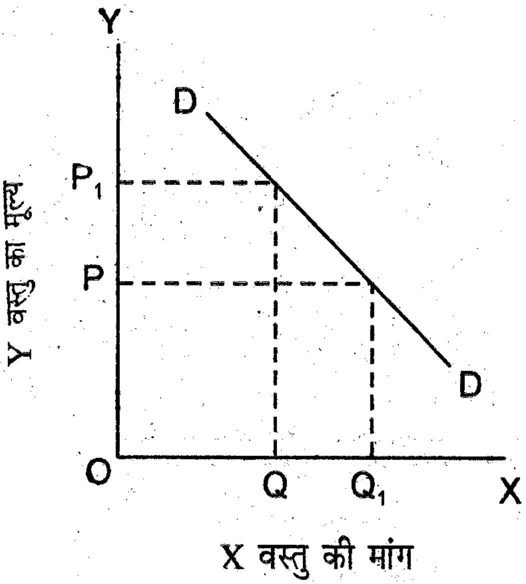

(ख) जब एक वस्तु के मूल्य में कमी दूसरी वस्तु की मांग में वृद्धि ला दे तो ऐसी वस्तुयें पूरक वस्तुयें कहलायेंगी।

x तथा y वस्तुयें परस्पर पूरक कहलायेंगी जबकि y वस्तु के मूल्य में कमी x वस्तु की मांग में वृद्धि ला दे।

इस रेखाचित्र में DD वक्र y वस्तु के मूल्य या X वस्तु की मांग के बीच फलनात्मक सम्बन्ध व्यक्त करता है। यह वक्र $DX = f(P_o)$ सम्बन्ध को स्पष्ट करता है। वक्र से स्पष्ट है कि जब y का मूल्य Op_1 से घटकर OP हो जाता है तो X वस्तु की मांग OQ से बढ़कर OQ_1 हो जाती है।

आय मांग— उपभोक्ता की आय तथा वस्तु की मांग के बीच फलनात्मक सम्बन्ध [$Dx = f(Y)$] है। यह आय मांग कहलाता है। आय मांग से अभिप्राय वस्तु की उन मात्राओं से है, जिन्हें अन्य बातों के स्थिर रहने पर, उपभोक्ता एक निश्चित समय में आय के विभिन्न स्तरों पर क्रय करता है। वस्तुयें सामान्यतः दो प्रकार की होती है- उत्तम किस्म तथा निम्न किस्म की। जहाँ उत्तम किस्म की वस्तुओं की मांग आय के बढ़ने पर बढ़ती है, वहीं निम्न कोटि की वस्तुओं की मांग आय के बढ़ने पर घटती है।

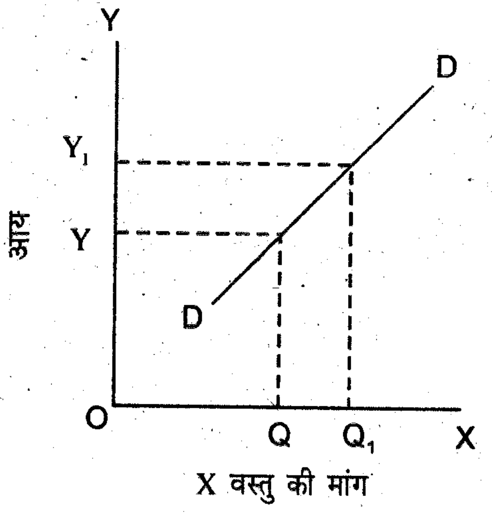

चित्र-1

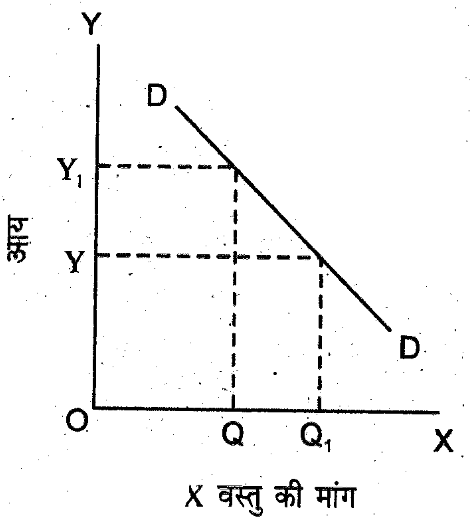

चित्र-2

चित्र-1 में DD श्रेष्ठ वस्तु का माँग वक्र है जो यह प्रदर्शित

करता है जब आय OY से बढ़कर OY_1 हो जाती है तो x वस्तु की माँगी गयी मात्रा OQ से बढ़कर OQ_1 हो जाती है।

चित्र-2 मे DD निम्न कोटि की वस्तु का माँग वक्र है जो यह प्रदर्शित करता है कि आय OY से बढ़कर OY_1 होने पर x वस्तु की माँग OQ_1 से घटकर OQ हो जाती है।

3.4 माँग के प्रकार—

माँग का नियम सामान्यतः माँगी गयी वस्तु की मात्रा तथा उसके मूल्य, अन्य वस्तुओं के मूल्य, उपभोक्ता की आय तथा रुचि के बीच फलनात्मक सम्बन्ध की व्याख्या करता है, अर्थात् $Dx = f(Px, Po, Y, T)$। पूर्व की व्याख्या में मांगी गयी मात्रा के अतिरिक्त अन्य चरों को स्थिर माना गया है। अस्तु इसी प्रकार फलनात्मक सम्बन्ध अन्य वंस्तुओं के मूल्य (p_O) तथा आय (Y) के साथ भी किया जा सकता है। इस प्रकार फलनात्मक सम्बन्ध के आधार पर मांग को तीन रूपों में व्यक्त किया जा सकता है:-

1. मांग तथा उसी वस्तु के मूल्य के बीच फलनात्मक सम्बन्ध की व्याख्या [$Dx = f(Px)$] है। जिसे मांग मूल्य कहते हैं। अब तक की व्याख्या इसी से सम्बन्धित थी।
2. मांग तथा उस वस्तु के अतिरिक्त अन्य वस्तुओं के मूल्यों के बीच फलनात्मक सम्बन्ध की व्याख्या [$D_X = f(P_O)$] है। जिसे आड़ी मांग अथवा तिर्यक मांग कहते हैं।
3. माँग तथा उपभोक्ता की आय के बीच फलनात्मक

सम्बन्ध की व्याख्या $[D_X = f(Y)]$ है, जिसे आय माँग कहते हैं।

3.5 मांग में परिवर्तन—

माँग में होने वाले परिवर्तन दो प्रकार के होते हैं—

(क) माँग में विस्तार तथा संकुचन

अन्य बातों के समान रहने पर जब मूल्य में कमी के कारण माँग बढ़ जाती है तो इसे माँग का विस्तार कहते हैं, और जब मूल्य में वृद्धि के कारण माँग कम हो जाती है तो इसे मांग का संकुचन कहते हैं। इस प्रकार एक ही मांग वक्र पर चलने की क्रिया मांग में विस्तार या संकुचन कहलाती है। मांग वक्र पर दाहिनी ओर चलना मांग में विस्तार तथा बायीं ओर चलना संकुचन कहलाता है। इस प्रकार के परिवर्तनों में मांग की सारणी वही रहती है तथा एक ही माँग रेखा होती है।

वस्तु की विभिन्न मात्राओं की सूची जो विभिन्न मूल्य पर मांगी या क्रय की जाती है मांग की सारणी कहलाती है। मांग का नियम कुछ निश्चित मान्यताओं पर कार्य करता है। मांग वक्र समान्यतया दाहिनें नीचे की ओर झुकता है। मांग वक्र का स्वरूप निर्धारित करने में सीमान्त उपयोगिता ह्रास नियम, समसीमान्त उपयोगिता नियम तथा उपभोक्ता की संस्थिति, प्रतिस्थापन प्रभाव तथा आय प्रभाव महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। मांग मुख्यतः तीन प्रकार की होती है- मूल्य माँग, आय माँग तथा तिर्यक माँग।

NMDC-222

(ख) मांग वक्र का विवर्तन-प्रकर्षण अथवा विकर्षण

यदि माँग के अन्य निर्धारक तत्वों में परिवर्तन के कारण एक ही मूल्य पर मांग अपेक्षाकृत अधिक हो जाये तो मांग की वृद्धि या प्रकर्षण कहा जाता है। इसके विपरीत जब एक ही मूल्य पर मांग पहले की अपेक्षा कम हो जाये तो इसे मांग में कमी या विकर्षण कहेंगे। इस प्रकार के परिवर्तन में माँग की सारणी में परिवर्तन हो जाता है परिणामस्वरूप मांग वक्र दूसरा बनता है।

प्रकर्षण तथा विकर्षण को इस रेखाचित्र द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है। रेखाचित्र में मूल्य OP तथा मांग $D_1 D_1$ है। यदि मूल्य OP है तथा मांग $D_1 D_1$ ही रहेगी परन्तु इसके अतिरिक्त किसी अन्य कारण से मांग $D_1 D_1$ से बढ़कर D_2D_2 हो जाय अर्थात मांगी गयी मात्रा OQ_1 से बढ़कर OQ_2 हो जाय तो इसे मांग का प्रकर्षण कहा जायेगा। इसके विपरीत यदि मांग D_2D_2 से D_1D_1 हो जाये तो मांगी गयी मात्रा QQ_2 से घटकर OQ_1 हो जायेगी जिसे मांग का विकर्षण कहा जायेगा।

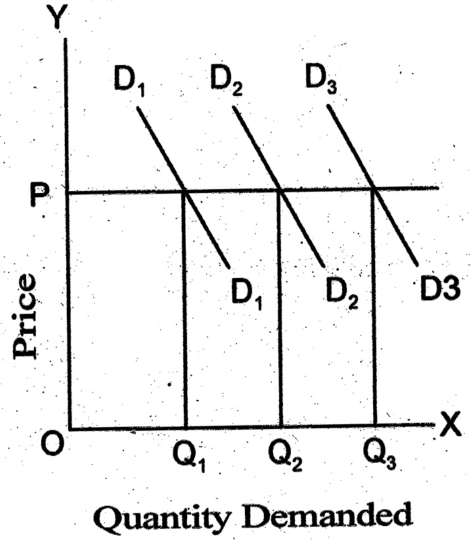

3.6 सारांश

किसी उपभोक्ता द्वारा किसी समय एवं मूल्य पर बाजार से क्रय की गयी वस्तु की मात्रा को मांग कहते हैं। मांग का नियम

कहता है कि जैसे-जैसे वस्तु का मूल्य घटता है उसकी मांग बढ़ती है। मार्शल के अनुसार मांग का एक सामान्य नियम है— किसी वस्तु की अधिक मात्राओं में बिक्री के लिए उसके मूल्य में निश्चित रूप से कमी होनी चाहिए ताकि उसको अधिक क्रेता मिल सकें।

3.7 बोध प्रश्न

1. माँग के नियम से आप क्या समझते हैं ?
2. मांग वक्र के स्वरूप को निर्धारित करने वाले तत्त्वों का वर्णन करें।
3. मांग के प्रकारों का वर्णन करें।

3.8 सन्दर्भ ग्रन्थ

1. जे0सी0 पंत, व्यष्टि अर्थशास्त्र, साहित्य भवन पब्लिकेशनस, आगरा, 2005
2. Ahuja, H.L.; Advanced Economic Theory, S. Chand & Company Ltd. 2001.
3. एम0 एल0 झिंगन, उच्च आर्थिक सिद्धान्त, वृंदा पब्लिकेशन्स प्रा0 लि0, 1947

इकाई-4 मांग की लोच (Elasticity of Demand)

संरचना

4.0 उद्देश्य

4.1 प्रस्तावना

4.2 मांग की लोच

4.2.1 मांग की मूल्य लोच

4.2.1.1 पूर्णतया लोचदार मांग

4.2.1.2 पूर्णतया बेलोचदार मांग

4.2.1.3 समलोच मांग

4.2.1.4 अधिक लोचदार मांग

4.2.1.5 बेलोच मांग

4.2.1.6 मांग की लोच को प्रभावित करने वाले तत्व

4.2.1.7 मांग की लोच का महत्व

4.2.2 मांग की आय लोच

4.2.3 मांग की आड़ी लोच

4.3 सारांश

4.4 बोध प्रश्न

4.5 सन्दर्भ ग्रन्थ

4.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप सक्षम होंगे—

- मांग की लोच का अर्थ समझने में,

NMDC-222

- मांग की मूल्य लोच को मापने में,
- मांग की आय लोच को जानने में,
- मांग की आड़ी लोच को समझने में तथा
- मांग की लोच को प्रभावित करने वाले तत्वों को पहचानने में।

4.1 प्रस्तावना

इस इकाई के पूर्व मांग के नियम के अन्तर्गत आपने देखा है कि किसी वस्तु के मूल्य में वृद्धि अथवा कमी किस प्रकार मांग में कमी या वृद्धि करती है। यह नियम मांग में हुई कमी या वृद्धि की निश्चित मात्रा को बताने में असमर्थ रहता है। किसी वस्तु के मूल्य में एक निश्चित वृद्धि या कमी होने पर उसकी मांग में निश्चित रूप से होने वाली कमी या वृद्धि को मांग की लोच कहते हैं। मांग की लोच का अध्ययन मुख्यतः मांग की मूल्य लोच, मांग की आय लोच तथा मांग की आड़ी लोच रूप में किया जाता है। अनेक ऐसे तत्वों का अध्ययन भी इस इकाई के अन्तर्गत किया जायेगा जो मांग की लोच को प्रभावित करते हैं। मांग की लोच के महत्व का अध्ययन भी इसी इकाई के अन्तर्गत किया जायेगा।

4.2 मांग की लोच (Elasticity of Demand)

मूल्य में परिवर्तन के परिणामस्वरूप मांग में किस दिशा में तथा कितना परिवर्तन होगा, यह विभिन्न मूल्यों पर मांग के बदलने की क्षमता पर निर्भर करता है। इस क्षमता को ही मांग की मूल्य लोच कहते हैं। यह क्षमता या सापेक्षिक अनुक्रिया

NMDC-222

(Relative responsiveness) मांग तथा उपभोक्ता की आय एवं मांग तथा अन्य वस्तुओं के मूल्यों के बीच भी होती है। अतः कहा जा सकता है कि मांग की लोच के तीन प्रकार होते हैं- मांग की मूल्य लोच, मांग की आय लोच तथा मांग की आड़ी या तिर्यक लोच।

4.2.1 माँग की मूल्य लोच (Price Elasticity of Demand)

किसी वस्तु की मांग तथा वस्तु के मूल्य के बीच परिवर्तन का अनुपात या दर एक विशिष्ट सम्बन्ध है जिसे मांग की मूल्य लोच कहते हैं। जॉन रॉबिन्सन के अनुसार, "मांग की लोच किसी मूल्य अथवा किसी विशेष उत्पादन पर खरीदी गई वस्तु की मात्रा का वह आनुपातिक परिवर्तन है। जो मूल्य के आनुपातिक परिवर्तन से भाग देने पर प्राप्त होता है। सूत्र के रूप में इसे निम्न प्रकार व्यक्त किया जा सकता है:

$$\text{मांग की मूल्य लोच (Edp)} = \frac{\text{माँगी गई मात्रा में आनुपातिक परिवर्तन}}{\text{मूल्य में आनुपातिक परिवर्तन}}$$

$$\text{मांगी गई मात्रा में आनुपातिक परिवर्तन} = \frac{\text{मांग में परिवर्तन}}{\text{पूर्व मांग की मात्रा}}$$

$$\text{मूल्य में आनुपातिक परिवर्तन} = \frac{\text{मूल्य में परिवर्तन}}{\text{पूर्व मूल्य की मात्रा}}$$

यदि मांग को q, मूल्य को p तथा मांग परिवर्तन को Δq एवं मूल्य परिवर्तन को Δp के द्वारा व्यक्त करें तो

$$Ed_p = \frac{\Delta q}{q} \div \frac{\Delta p}{p} = \frac{\Delta q}{q} \times \frac{p}{\Delta p}$$

$$Ed_p = \left(\frac{\Delta q}{\Delta p} \times \frac{p}{q}\right)$$

विपरीत सम्बन्ध होने के कारण Δq तथा Δp में से किसी एक का मूल्य ऋणात्मक होगा तथा मांग की लोच का मान धनात्मक होगा।

वस्तु के मूल्य में होने वाले परिवर्तन के परिणामस्वरूप वस्तु की मांग में होने वाले परिवर्तन की सापेक्षता के आधार पर माँग की मूल्य लोच को पाँच भागों में बाँटा जा सकता है।

4.2.1.1 पूर्णतया लोचदार मांग (Perfectly Elastic Demand)— जब किसी वस्तु के मूल्य में अल्पवृद्धि होने से उस वस्तु की मांग शून्य हो जाये अथवा मूल्य में कमी उसकी मांग में अपरिमित वृद्धि ला दे तो उसे उस वस्तु की पूर्णतया लोचदार मांग कहते हैं। इसका स्पष्टीकरण रेखाचित्र में किया गया है।

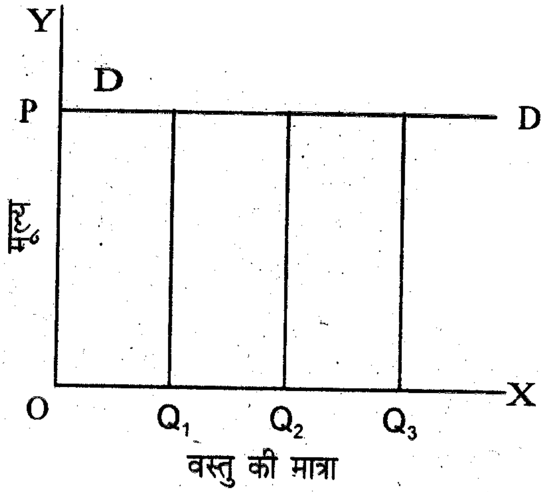

इस रेखाचित्र द्वारा मांग-वक्र DD आधार OX के समानान्तर या समतल आकार में प्रदर्शित किया गया है। इससे स्पष्ट है कि OP से अधिक मूल्य होने पर वस्तु की मांग शून्य होगी तथा मूल्य में बिना कमी के ही वस्तु की मांग में परिवर्तन हो रहा है।

किन्तु पूर्णतया लोचदार माँग की लोच का उदाहरण व्यावहारिक जीवन में नहीं मिलता है परन्तु यह मांग की लोच की ऊपरी सीमा अवश्य निश्चित करती है।

4.2.1.2 (ii) पूर्णतया बेलोचदार मांग (Perfectly Inelastic Demand)—

जब किसी वस्तु के मूल्य में परिवर्तन के बाद भी उसकी मांग स्थिर बनी रहती है तथा उसमें किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं होता है तो उसकी मांग को पूर्णतया बेलोच मांग कहते हैं। यह मांग भी केवल एक सैद्धान्तिक सत्य है, व्यावहारिक जीवन में इसका उदाहरण नहीं मिलता है। जीवन के लिए आवश्यक वस्तुओं की मांग बेलोच तो होती है परन्तु पूर्णतया बेलोच नहीं होती है।

इस प्रकार की मांग को निम्न रेखाचित्र द्वारा प्रदर्शित किया जा सकता है—

इस रेखाचित्र द्वारा स्पष्ट है कि वस्तु का मूल्य OP से चाहे OP_1 हो जाये अथवा OP_0, वस्तु की मांग OQ ही रहेगी जिसे आधार अक्ष पर दिखाया गया है। इस रेखाचित्र में लम्ब अक्ष पर मूल्य प्रदर्शित हैं।

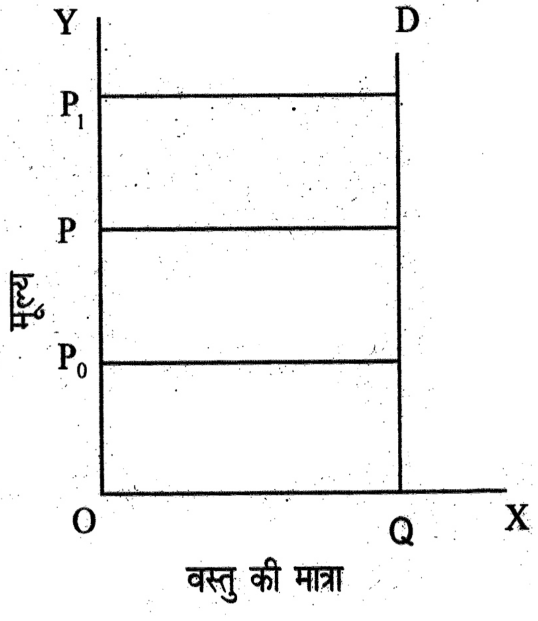

NMDC-222

4.2.1.3 (iii) समलोच मांग या इकाई मांग की लोच (Unit Elasticity)—जब किसी वस्तु के मूल्य में सापेक्षिक परिवर्तन उस वस्तु की मांग में सापेक्षिक परिवर्तन के बराबर हो तो उस वस्तु की मांग को समलोच मांग कहते हैं। जैसे—किसी वस्तु के मूल्य में 20% की वृद्धि हो और उसकी मांग में कमी भी 20% हो।

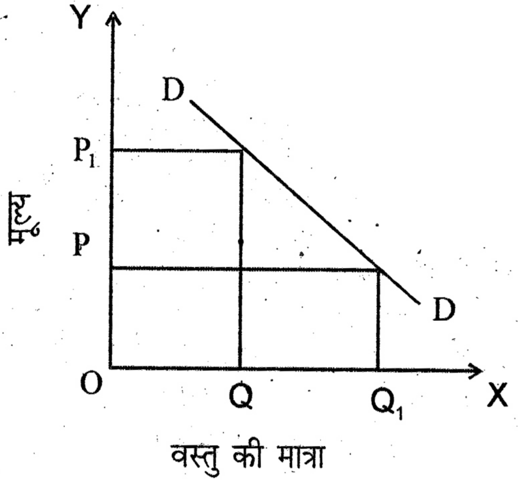

इस रेखाचित्र में DD मांग वक्र है जो यह दिखाता है कि यदि मूल्य में वृद्धि PP_1 के बराबर हो तो वस्तु की मांग घटकर OQ हो जायेगी। मूल्य तथा मांग में परिवर्तन आनुपातिक है क्योंकि जब मूल्य में दुगुनी वृद्धि होती है और यह OP से बढ़कर OP_1 हो जाता है तो वस्तु की मात्रा घटकर आधी रह जाती है। जैसे रेखाचित्र में प्रदर्शित है।

$$OQ = \frac{1}{2} OQ_1$$

4.2.1.4 (iv) अधिक लोचदार मांग (Highly Elastic Demand)—जब किसी वस्तु की मांग में होने वाला सापेक्षिक परिवर्तन उसके मूल्य के सापेक्षिक परिवर्तन से अधिक हो तो उस वस्तु की मांग अधिक लोचदार मानी जाती है। जैसे किसी वस्तु के मूल्य में 5% की वृद्धि के कारण वस्तु की मांग में 15% की कमी आ जाये।

इस रेखाचित्र में DD मांग वक्र है जो यह प्रदर्शित करता है कि जब मूल्य OP से घटकर OP_0 हो जाता है तो वस्तु की मांग OQ से बढ़कर OQ_1 हो जाती है। इस प्रकार मांग में वृद्धि मूल्य में कमी से अधिक होती है।

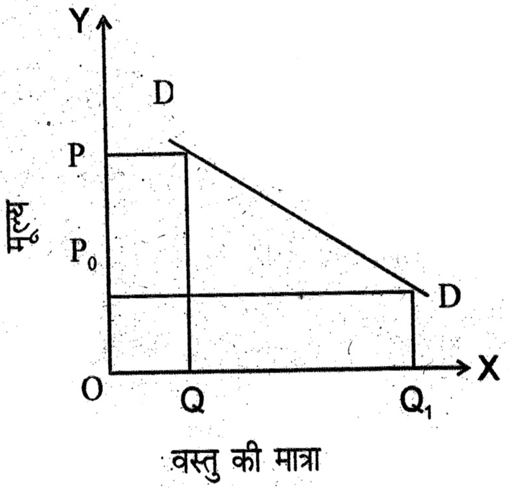

4.2.1.5 (v) बेलोच मांग (Inelastic Demand)—Edp > 0 < 1 जब किसी वस्तु की मांग में होने वाले सापेक्षिक परिवर्तन उसके मूल्य के सापेक्षिक परिवर्तन से कम हो तो उस वस्तु की मांग बेलोच कही जायेगी जैसे मूल्य में 10% की कमी मांग में 5% की वृद्धि लाये।

इस रेखाचित्र में मांगवक्र DD है जो यह दिखाता है कि जब मूल्य में कमी PP_0 के बराबर होती है तो मांग में वृद्धि QQ_1 के बराबर होती है। पदार्थ के मूल्य में जिस अनुपात में कमी हुई है उससे कम अनुपात में पदार्थ की माँगी गयी मात्रा में वृद्धि

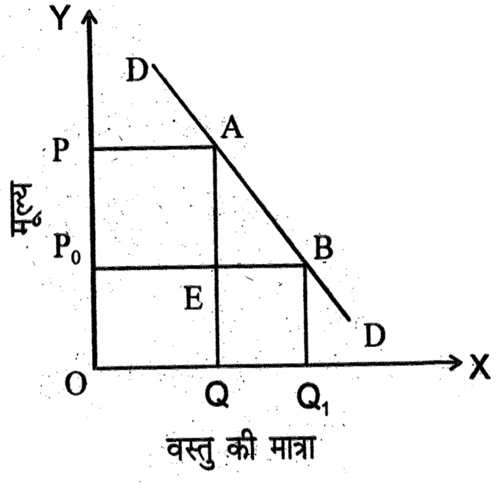

हुयी है।

4.2.1.6 मांग की लोच को प्रभावित करने वाले तत्व

किसी वस्तु की मांग की लोच को प्रभावित करने वाले अनेक तत्व पाये जाते हैं। इनमें से कुछ की प्रकृति आर्थिक तथा कुछ की अनार्थिक है। इनमें से कुछ प्रमुख तत्व निम्नलिखित हैं—

i. वस्तु की प्रकृति

सामान्यतः तीन प्रकार की वस्तुएं-अनिवार्य आवश्यकता की, आरामदायक तथा विलासिता की वस्तुएँ पायी जाती है। अनिवार्य आवश्यकता की वे वस्तुएँ होती हैं जिनके बिना व्यक्ति का काम नहीं चल सकता है, इसलिए इनकी मांग बेलोच होती है। आराम सम्बन्धी वस्तुओं की मांग न तो अधिक लोचदार और न बेलोच होती है क्योंकि इनके उपभोग को रोका जा सकता है परन्तु विलासिता की वस्तुओं की मांग अधिक लोचदार होती है।

ii. वस्तु के विभिन्न उपयोग

प्रो० मार्शल ने कहा है कि यदि किसी वस्तु के अनेक प्रयोग होते हैं तो उसकी मांग लोचदार होगी। अनेक उपयोग होने के कारण वस्तु का लोग कई जगह पर प्रयोग करते हैं।

iii. वस्तु के उपभोग को स्थगित करना

ऐसी वस्तुएँ जिनके उपभोग को स्थगित किया जा सकता है तो उनकी मांग की लोच कम होगी परन्तु यदि वस्तुएँ ऐसी

NMDC-222

हैं जिनका उपभोग स्थगित नहीं किया जा सके तो उसकी माँग बेलोच होगी।

iv. स्थानापन्न वस्तुओं की उपलब्धि

यदि किसी वस्तु की स्थानापन्न वस्तुएं उपलब्ध हैं तो उस वस्तु की मांग की लोच अधिक होगी परन्तु जिन वस्तुओं की कोई स्थान्नापन्न वस्तु उपलब्ध नहीं होती है तो उनकी मांग की लोच कम होगी। उदाहरण के लिए चाय तथा काफी। यदि चाय के दाम बढ़ जाये तो लोग चाय छोड़कर काफी का प्रयोग करने लगेंगे। अतः ऐसी वस्तु की माँग की लोच अधिक होगी।

v. उपभोक्ता की आय

उपभोक्ता की आय का मांग की लोच पर प्रभाव पड़ता है। किसी एक ही वस्तु की मांग की लोच अधिक आय तथा कम आय वाले व्यक्ति के लिए अलग-अलग होती है। मुद्रा की सीमान्त उपयोगिता कम होने के कारण धनी व्यक्ति मूल्य के बढ़ने पर अधिक रुपया खर्च करते हैं। उनके लिए वस्तु की मांग बेलोच होती है पर निर्धन व्यक्ति की मांग अधिक लोचदार होती है।

vi. वस्तु पर व्यय किया जाने वाला आय का भाग

यदि किसी वस्तु के उपभोग पर आय का अधिकांश भाग व्यय होता है तो उस वस्तु की मांग लोचदार होगी परन्तु यदि आय का अल्प भाग ही व्यय हो रहा हो तो उस वस्तु की मांग बेलोच होगी।

NMDC-222

vii. समाज में आय का वितरण

समाज में धन के असमान वितरण होने पर मांग बेलोच होती है तथा आय के समान वितरण होने पर मांग की लोच अधिक होती है। आय के समान वितरण की स्थिति में मध्यम वर्ग के लोगों की प्रधानता होती है जिससे वस्तुओं की मांग अधिक लोचदार होती है। आय के असमान वितरण की स्थिति में कम आय वाले व्यक्तियों की संख्या अधिक होती है जिससे वस्तुओं की मांग की लोच कम होती है।

viii. वस्तु के प्रयोग के सम्बन्ध में आदतें तथा रीति-रिवाज

ऐसी वस्तुएँ जिनके प्रयोग की उपभोक्ता को आदत पड़ गयी हो जैसे- सिगरेट शराब आदि तो उसकी मांग बेलोच होती है। इसी प्रकार रीति-रिवाज, के कारण अनेक वस्तुएं पारिवारिक आय-व्यय बजट का एक अभिन्न अंग बन जाती है तो उनकी मांग भी बेलोच कहलाती है।

ix. समय का प्रभाव

प्रो0 मार्शल के अनुसार समय का प्रभाव मांग की लोच पर पड़ता है। अल्पकाल की अपेक्षा दीर्घकाल में वस्तु की मांग अधिक लोचदार होती है। इसके कई कारण होते हैं जिनमें से मूल्य में परिवर्तन होने के बाद अल्पकाल में उपभोक्ता अपने उपभोग तुरन्त कम नहीं कर पाता। उपभोक्ता को मूल्य परिवर्तन का ज्ञान नहीं हो पाता तथा यदि उपभोक्ता यह उम्मीद करे कि भविष्य में उस वस्तु का मूल्य कम हो जायेगा तो वह उस वस्तु

का क्रय करना स्थगित कर देगा।

x. मूल्य स्तर

सामान्यतः महंगे मूल्य पर मांग बेलोच तथा सस्ते मूल्य पर अधिक लोचदार होती है।

xi. संयुक्त मांग की वस्तुएं

ऐसी वस्तुएं जिनकी मांग संयुक्त होती है अर्थात् जो एक-दूसरे की पूरक हैं जैसे कलम और स्याही, उसकी मांग बेलोच होती है।

xii. वस्तु के उपभोक्ताओं का वर्ग

किसी वस्तु का उपभोग करने वाले लोग यदि धनी वर्ग के हैं तो मांग की लोच अधिक होगी अन्यथा कम होगी।

xiii. सरकार द्वारा राशनिंग

यदि किसी वस्तु के वितरण पर सरकारी नियन्त्रण हो तो उसकी मांग बेलोच होगी, इसके विपरीत खुले बाजार में मिलने वाली वस्तु की मांग की लोच अधिक होती है।

4.2.1.7 माँग की लोच का महत्व

अर्थशास्त्र की अनेक समस्याओं के समाधान में माँग की लोच का अत्यन्त ही महत्वपूर्ण स्थान हैं। लार्ड कीन्स के अनुसार -प्रो० मार्शल की सबसे महत्वपूर्ण देन माँग की लोच का सिद्धान्त है तथा इसके अध्ययन के अभाव में मूल्य तथा वितरण

NMDC-222

के सिद्धान्तों की व्याख्या सम्भव नहीं है। इसके महत्व को निम्नांकित शीर्षकों के अन्तर्गत रखा जा सकता है:-

(i) मूल्य निर्धारण में

किसी वस्तु का मूल्य उस वस्तु की मांग एवं पूर्ति द्वारा निर्धारित होता है। मूल्य के बढ़ने तथा घटने पर पूर्ति में कितना परिवर्तन, होगा यह मांग की लोच पर निर्भर करेगा। यदि मांग बेलोच हुई तो मूल्य में परिवर्तन से पूर्ति की मात्रा में कम परिवर्तन होगा परन्तु माँग अधिक लोचदार होने की स्थिति में परिवर्तन अधिक होगा।

एकाधिकार में मूल्य निर्धारण वस्तु की मांग की लोच के अनुसार इस प्रकार किया जाता है कि लाभ अधिकतम हो। एकाधिकारी बेलोच मांग की वस्तु का मूल्य अधिक तथा अधिक लोचदार वस्तु का मूल्य कम रखता है क्योंकि बेलोच मांग के कारण यदि उसके मूल्य में वृद्धि हो जाये तब भी ग्राहक सामान खरीदेगे। परन्तु वह यदि अधिक लोचदार वस्तु की कीमत बढ़ा दे तो ग्राहक उस वस्तु को नहीं खरीदेंगे। इस प्रकार उसका लाभ कम हो जायेगा। मूल्य विभेद करते समय भी एकाधिकारी मांग की लोच की सहायता लेता है। इसी प्रकार राशिपातन (Dumping) के सम्बन्ध में भी माँग की लोच सहायक हो सकती है।

(ii) उत्पादन के साधनों के पारिश्रमिक-निर्धारण में

मांग की लोच का महत्व उत्पादन के साधनों के पारिश्रमिक-निर्धारण के अन्तर्गत वितरण के सन्दर्भ में देखा जाता है। किसी

NMDC-222

साधन की माँग बेलोच होने पर अधिक मूल्य देना पड़ता है। जैसे- यदि श्रमिकों की मांग बेलोच है तो श्रमिक को अधिक मजदूरी देनी पड़ती है।

(iii) सरकार की आर्थिक तथा वित्तीय नीतियों के निर्धारण में

मांग की लोच का सरकार की नीतियों के निर्धारण में भी बहुत अधिक महत्व होता है। मांग की लोच द्वारा सरकार अपनी नीतियाँ निर्धारित करती है तथा यह भी निर्णय लेती है कि किन उद्योगों को सार्वजनिक क्रियाओं के रूप में घोषित करे तथा किनका नियन्त्रण अपने हाथ में ले। बेलोच वस्तुओं के सन्दर्भ में यह उचित होगा कि वह उन्हें अपने हाथ में ले ले।

सरकार की कर-नीति के निर्धारण में भी मांग की लोच का अत्यधिक महत्व है। मांग की लोच की सहायता से कर नीति की दो प्रमुख समस्याओं का समाधान किया जा सकता है। पहली समस्या अधिक से अधिक आय प्राप्त करने की होती है जिसके लिए सरकार को बेलोच मांग वाली वस्तुओं पर कर लगाने चाहिए क्योंकि लोचदार वस्तुओं पर कर लगाया जायेगा तो उपभोक्ता उन वस्तुओं का उपभोग कम कर देगा फलस्वरूप सरकार को आय नहीं मिल पायेगी। कर के भार का निर्धारण दूसरी समस्या है सरकार द्वारा लगाये गये कर का भार किसके ऊपर पड़ता है इसका ज्ञान मांग की लोच के द्वारा हो सकता है। बेलोच मांग वाली वस्तु की स्थिति में कर का भार उपभोक्ता पर पड़ेगा क्योंकि उत्पादक वस्तु का मूल्य बढ़ा देगा। जबकि

NMDC-222

लोचदार वस्तु पर का भार उत्पादक पर ही पड़ेगा। इस प्रकार वस्तु की मांग की लोच अधिक होने की दशा में वस्तु पर कर का भार विक्रेता पर पड़ेगा।

4.2.2 माँग की आय लोच (Income Elasticity of Demand)

किसी उपभोक्ता की आय में परिवर्तन के परिणामस्वरूप वस्तु की मांग में होने वाले सापेक्ष परिवर्तन की माप या क्षमता ही मांग की आय लोच हैं, जबकि वस्तु का मूल्य अपरिवर्तित रहे। इसको इस प्रकार भी कहा जा सकता है कि यदि मूल्य तथा अन्य कारक तत्व स्थिर रहें, तो मौद्रिक आय में आनुपातिक परिवर्तन के परिणामस्वरूप माँग में जो आनुपतिक परिवर्तन होता है, या मांग में आनुपातिक परिवर्तन को मौद्रिक आय में आनुपातिक परिवर्तन से भाग देने पर जो गुणांक आता है उसे ही मांग की आय लोच कहते हैं।

किसी वस्तु की मांग आय लोच (Edy) =

$$\frac{\text{वस्तु की मांग में आनुपातिक परिवर्तन}}{\text{उपभोक्ता की आय में आनुपातिक परिवर्तन}}$$

अर्थात, $Edy = \frac{\Delta q}{q} \div \frac{\Delta y}{y}$

अथवा, $Edy = \frac{\Delta q}{\Delta y} \times \frac{y}{q}$

Ed_y = माँग की आय लोच

जहाँ Δq = मांग में होने वाला परिवर्तन

Δy = आय में होने वाला परिवर्तन

q = पूर्व मांग

y = पूर्व आय

सामान्यतया किसी वस्तु की मांग की आय लोच धनात्मक होती है अर्थात् उपभोक्ता की आय में वृद्धि वस्तु की मांग में वृद्धि करती है तथा उसकी आय में कमी, मांग में कमी करती है। इस प्रकार आय तथा मांग में होने वाले परिवर्तन एक ही दिशा में होते हैं। अतः Ed_y का मान धनात्मक होता है। परन्तु कुछ ऐसी स्थितियाँ ऐसी भी होती है जिसमें मांग एवं आय के परिवर्तन विपरीत दिशा में होते हैं। इसमें आय में वृद्धि के बाद उपभोक्ता इन वस्तुओं की कम मांग करता है अथवा इन वस्तुओं पर कम व्यय करता है।

मांग की आय लोच भी पाँच प्रकार की होती है—

(क) मांग की शून्य आय लोच (Zero Income Elasticity of Demand)—जब किसी उपभोक्ता की मौद्रिक आय में वृद्धि होने के बाद भी किसी वस्तु की क्रय की मात्रा में कोई परिवर्तन नहीं होता है तब मांग की आय लोच शून्य होती है।

(ख) माँग की ऋणात्मक आय लोच (Negative Income Elasticity of Demand) यदि किसी उपभोक्ता की मौद्रिक आय में वृद्धि होने के बाद किसी वस्तु की मांग में कमी आये तब मांग की आय लोच ऋणात्मक होगी।

(ग) माँग की इकाई आय लोच (Unit Income Elasticity of Demand)— जब किसी उपभोक्ता की मौद्रिक आय

का अनुपात जो वह किसी वस्तु पर व्यय करता है, आय की वृद्धि के बाद भी वही बना रहे जो आय की वृद्धि के पहले था तो उसे मांग की इकाई आय लोच कहते हैं। उदाहरण के लिए यदि कोई व्यक्ति अपनी आय का 20%किसी वस्तु पर व्यय करता था तथा आय में वृद्धि के बाद भी वह 20% ही उस वस्तु पर खर्च करता है तो मांग की आय लोच इकाई के बराबर होगी।

(घ) इकाई से अधिक मांग की आय लोच— जब उपभोक्ता द्वारा किसी वस्तु के क्रय पर किये जाने वाले व्यय का अनुपात उसकी आय में होने वाली वृद्धि के अनुपात से अपेक्षाकृत अधिक हो तो मांग की आय लोच इकाई से अधिक होगी। प्रायः विलासिता की वस्तुओं के सन्दर्भ में यह स्थिति पायी जाती है।

(ङ) इकाई से कम मांग की आय लोच— जब उपभोक्ता मौद्रिक आय में वृद्धि के बाद अपनी मौद्रिक आय का कम अनुपात किसी वस्तु के ऊपर व्यय करता है तब मांग की आय लोच इकाई से कम होगी।

4.2.3 माँग की आड़ी लोच (Cross Elasticity of Demand)—सामान्यतः दो प्रकार की वस्तुएँ पायी जाती हैं- अनाश्रित तथा आश्रित वस्तुएं। आश्रित वस्तुओं को पूरक अथवा स्थानापन्न में विभाजित किया जाता है। किसी वस्तु के मूल्य में परिवर्तन के कारण दूसरी वस्तु की मांग परिवर्तित होती है तो वस्तुएँ परस्पर सम्बन्धित होती है। सम्बन्धित वस्तुएं दो प्रकार की होती हैं- स्थानापन्न व पूरक। यदि किसी वस्तु का मूल्य

बढ़ने (घटने) पर किसी अन्य वस्तु की मांग बढ़ती (घटती) है तो वस्तुएँ एक-दूसरे की स्थानाम्पन्न होगी। इस प्रकार किसी वस्तु के मूल्य तथा स्थानापन्न वस्तु की मांग में धनात्मक सम्बन्ध होता है।

इसके विपरीत यदि किसी वस्तु का मूल्य घटने-बढ़ने पर किसी अन्य वस्तु की मांग बढ़ती-घटती है तो वस्तुएं परस्पर पूरक कहलायेंगी। किसी वस्तु के मूल्य एवम् इसके पूरक वस्तु की मांग के बीच ऋणात्मक सम्बन्ध होता है। मांग की आड़ी लोच इस प्रकार की वस्तुओं की सापेक्षिक सम्बद्धता की माप है।

किसी सम्बन्धित वस्तु के मूल्य में होने वाले परिवर्तन के फलस्वरूप किसी दी हुई वस्तु की माँगी गई मात्रा में जो सापेक्षिक परिवर्तन होता है, उसकी माप ही माँग की आड़ी लोच है। इस प्रकार

$$\text{मांग की आड़ी लोच } (Ed_{AB}) = \frac{\text{A वस्तु की मांग में आनुपातिक परिवर्तन}}{\text{B वस्तु के मूल्य में आनुपातिक परिवर्तन}}$$

$$Ed_{AB} = \frac{\Delta q_A}{q_A} \div \frac{\Delta P_B}{P_B}$$

$$Ed_{AB} = \frac{\Delta q_A}{\Delta P_B} \times \frac{P_B}{q_A}$$

माँग मूल्य लोच की तरह इसके सम्बन्ध में भी औसत विधि का प्रयोग किया जाता है। इस स्थिति में मांग की आड़ी लोच का सूत्र इस प्रकार होगाः-

$$Ed_{AB} =$$

NMDC-222

$$\frac{q_2 - q_1}{2} \Big/ \frac{(q_2 + q_1)}{2} \div \frac{p_2 - p_1}{2} \Big/ \frac{(p_2 + p_1)}{2}$$

$$= \left(\frac{q_2 - q_1}{q_2 + q_1}\right) \times \left(\frac{p_2 + p_1}{p_2 - p_1}\right)$$

$$= \left(\frac{q_2 - q_1}{p_2 - p_1}\right) \times \left(\frac{p_2 + p_1}{q_2 + q_1}\right)$$

$$Ed_{AB} = \frac{\Delta q}{\Delta p} \times \left(\frac{p_2 + p_1}{q_1 + q_2}\right)$$

इस प्रकार स्पष्ट है कि यदि A तथा B दोनों परस्पर स्थानापन्न हैं तो मांग की आड़ी लोच धनात्मक होगी। परन्तु यदि A तथा B एक दूसरे की पूरक वस्तुएँ हैं तो मांग की आड़ी लोच ऋणात्मक होगी।

मांग की आड़ी लोच से निम्न निष्कर्ष प्राप्त किये जा सकते हैं :-

i. यदि मांग की आड़ी लोच का मान शून्य है अर्थात् ($Ed_{AB} = 0$) तो इस स्थिति में वस्तुएं न तो पूरक होगी और न स्थानापन्न बल्कि अनाश्रित या स्वतंत्र होगी।

ii. यदि मांग की आड़ी लोच का मान ऋणात्मक हो अर्थात् ($Ed_{AB} < 0$) तो दोनों वस्तुएं परस्पर पूरक वस्तुएं होगी।

iii. यदि मांग की आड़ी लोच का मान धनात्मक हो तो $Ed_{AB} > 0$, तो दोनों वस्तुएँ स्थानापन्न होगी।

NMDC-222

iv. इसी प्रकार यदि Ed_{AB} का मान बहुत अधिक धनात्मक हो तो दोनों वस्तुएँ परस्पर निकटतम स्थानापन्न होंगी और यदि आड़ी लोच कम धनात्मक हुई तो परस्पर कम स्थानानपन्न होगी।

4.3 सारांश

मांग के नियम के अनुसार मूल्य में परिवर्तन के फलस्वरूप उसकी मांग में परिवर्तन होता है। यह परिवर्तन कितना एवं किस अनुपात में होगा, यह विभिन्न मूल्यों पर मांग के बदलने की क्षमता पर निर्भर करता है। यह क्षमता ही मांग की मूल्य लोच है। इसी प्रकार की क्षमता मांग तथा उपभोक्ता की आय, तथा मांग एवं अन्य वस्तुओं के मूल्यों के बीच होती है। इस प्रकार मांग की लोच तीन प्रकार की होती है - मूल्य माँग की लोच, मांग की आय लोच तथा मांग की आड़ी लोच। वस्तु के मूल्य में होने वाले परिवर्तन के फलस्वरूप वस्तु की मांग की मूल्य लोच को पाँच भागों में विभाजित किया जा सकता है। इसी प्रकार मांग की आय लोच के भी पाँच प्रकार होते हैं। मांग की आय लोच के अन्तर्गत उपभोक्ता की आय में परिवर्तन के फलस्वरूप मांग में होने वाले परिवर्तन का अध्ययन किया जाता है जबकि मांग की आड़ी लोच के अन्तर्गत किसी एक वस्तु के मूल्य में होने वाले परिवर्तन के फलस्वरूप किसी दूसरी वस्तु की मांगी गई मात्रा में होने वाली सापेक्षिक परिवर्तन की माप की जाती है मांग की लोच का महत्व मूल्य निर्धारण, उत्पादन के साधनों के पारिश्रमिक निर्धारण तथा सरकार की आर्थिक तथा वित्तीय नीतियों के निर्धारण में होता है।

NMDC-222

4.4 बोध प्रश्न

1. मांग की लोच से आप क्या समझते हैं ?
2. मांग की लोच को प्रभावित करने वाले तत्त्वों को बताइये।
3. मांग की आय लोच् को विश्लेषित करें।

4.5 सन्दर्भ ग्रन्थ

1. जे०सी० पंत, व्यष्टि अर्थशास्त्र, साहित्य भवन पब्लिकेशनस, आगरा, 2005
2. Ahuja, H.L.; Advanced Economic Theory, S. Chand & Company Ltd. 2001.
3. एम० एल० झिंगन, उच्च आर्थिक सिद्धान्त, वृंदा पब्लिकेशन्स प्रा० लि०, 1947

इकाई-5- तटस्थता वक्र विश्लेषण (Indifference Curve Analysis)

संरचना

5.0 उद्देश्य

5.1 प्रस्तावना

5.2 तटस्थता वक्र

5.2.1 परिभाषाएं

5.2.2 तटस्थता तालिका

5.2.3 तटस्थता वक्र

5.2.4 तटस्थता मानचित्र

5.2.5 तटस्थता वक्रों की विशेषताएं

5.3 सारांश

5.4 अवबोधात्मक प्रश्न

5.5 सन्दर्भ ग्रन्थ

5.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप सक्षम होंगे :

- तटस्थता वक्र का अर्थ समझने में,
- तटस्थता वक्रों की विशेषताओं के विश्लेषण में,
- ह्रासमान सीमान्त प्रतिस्थापन दर के नियम की व्याख्या करने में, तथा
- ह्रासमान सीमान्त प्रतिस्थापन दर के नियम के वर्णन में।

NDC-222

5.1 प्रस्तावना

मांग के नियम तथा मांग की लोच जिनका इस इकाई के पूर्व में अध्ययन एवं विश्लेषण किया गया है, को और अधिक स्पष्ट करने के लिए तटस्थता वक्र विश्लेषण की सहायता लिया जाता है। इसके अनुसार उपभोक्ता वस्तुओं को खरीदते समय केवल उपयोगिता क्रम को ही ध्यान में रखता है। उसके लिए वस्तु संयोग अधिक महत्व का होता है। अतः उपभोक्ता उस संयोग को ऊंचा क्रम देता है जो उसके लिए अधिक महत्व का होता है और कम महत्व के संयोग को नीचा क्रम प्रदान करता है। तटस्थता अथवा उदासीनता वक्र विश्लेषण ह्रासमान सीमान्त प्रतिस्थापन दर के नियम की मान्यता पर आधारित होता है। इसके अन्तर्गत एक उपभोक्ता अपने सन्तोष को समान रखने के लिए एक वस्तु के उपभोग को बढ़ाता है तो दूसरी वस्तु के उपभोग को घटाता है।

5.2 तटस्थता वक्र

तटस्थता वक्र वस्तुओं की मात्राओं के उन संयोगों का बिन्दु पथ है जिनके बीच व्यक्ति उदासीन रहता है और इसलिए इसे तटस्थता वक्र कहते हैं। तटस्थता वक्र विश्लेषण का प्रारम्भ 1881 ई० में अंग्रेज अर्थशास्त्री एजवर्थ (Edgeworth) ने किया था। बाद में 1906 में इटेलियन अर्थशास्त्री पेरेटो (Pareto) ने एजवर्थ की रीति को अपनाकर मांग की विवेचना की। पेरेटो ऐसा प्रथम अर्थशास्त्री था जिसने उपयोगिता को एक मानसिक तत्व स्वीकार किया जिसे केवल वस्तु का उपभोग करने वाला व्यक्ति ही महसूस

कर सकता है। यह स्थिर नहीं रहता फलस्वरूप इसका संख्यात्मक माप भी नहीं हो सकता है।

रूसी अर्थशास्त्री स्लूटस्का (Slutsky) ने 1915 में पेरेटो की इस विधि की व्याख्या की थी, परन्तु रूसी भाषा में होने तथा प्रथम विश्व युद्ध की उथल-पुथल के कारण उस व्याख्या को विशेष महत्व नहीं मिल पाया। प्रो0 हिक्स ने 1939 में अपनी पुस्तक **Value and Capital** में तटस्थता विश्लेषण की विस्तार से व्याख्या दी। इसमें प्रो0हिक्स ने 'सीमान्त उपयोगिता' के स्थान पर 'स्थानापन्न दर' शब्दावली का प्रयोग किया। उनके अनुसार सीमान्त उपयोगिता का कोई निश्चित अर्थ नहीं है। प्रो0 हिक्स के अनुसार— उपयोगिता ह्रास नियम के स्थान पर प्रतिस्थापन की घटती सीमान्त दर का सिद्धान्त प्रयोग करना केवल भाषान्तर नहीं वरन् इस सिद्धान्त की नींव में एक धनात्मक या ठोस परिवर्तन है।

5.2.1 तटस्थता अर्थात् उदासीनता वक्र की परिभाषाएं

तटस्थता वक्र की परिभाषा अनेक विद्वानों द्वारा दी गई है। कुछ प्रमुख विद्वानों द्वारा दी गई परिभाषाएँ निम्नलिखित हैं।

जे0के0 ईस्थम (J.K. Eastham) के अनुसार— यह वस्तुओं की मात्राओं के उन संयोगों का विन्दुपथ है जिसके बीच व्यक्ति तटस्थ रहता है और इसलिए इसे तटस्थता वक्र कहते हैं।

के0ई0 बोल्डिंग (K.E. Boulding) के अनुसार—

"समान अनुराग दिखाने वाली वक्र रेखाएँ तटस्थ वक्र कहलाती हैं, क्योंकि वे वस्तुओं के ऐसे संयोगों को व्यक्त करती

हैं जो एक-दूसरे से न तो अच्छे होते हैं और न ही बुरे।"

ए० एल० मेयर्स (A.L. Meyers) के अनुसार—

"अधिमान सारिणी वह तालिका है जो वस्तुओं के ऐसे विभिन्न संयोगों को बताती है जिनसे किसी व्यक्ति को समान सन्तोष प्राप्त होता है। यदि हम इसे एक वक्र के रूप में प्रदर्शित करें, तो हमें अधिमान वक्र प्राप्त हो जायेगा।"

उपरोक्त परिभाषाओं से यह स्पष्ट है कि तटस्थता वक्र उपभोक्ता की ऐसी स्थिति है जिसमें वह तटस्थ रहता है तथा उपभोग के लिए वस्तुओं के ऐसे संयोगों को चुनता है जिनसे उसे समान संतोष प्राप्त होता है।

5.2.2 तटस्थता तालिका (Indifference Schedule)

तटस्थता तालिका का निर्माण वस्तुओं के अनेक संयोगों से होता है। प्रत्येक संयोग से समान महत्व की उपयोगिता मिलती है अतः तालिका में निहित संयोगों में चुनाव के प्रति उपभोक्ता सदैव उदासीन रहता है। **मेयर्स** के शब्दों में, "तटस्थता तालिका दो वस्तुओं के ऐसे विभिन्न संयोगों की सूची होती है जो किसी व्यक्ति को समान रूप से सन्तोषजनक प्रतीत होते हैं।"

प्रो० हिक्स के अनुसार,"यदि उपभोक्ता की मांग स्थिर रहती है तथा उपभोग की जाने वाली वस्तुओं के मूल्यों में परिवर्तन नहीं हो पा रहा है, तो एक वस्तु का उपभोग बढ़ाने के लिए उपभोक्ता को दूसरे वस्तु के उपभोग का त्याग करना पड़ेगा। "तालिका संख्या

NMDC-222

1 में x तथा y वस्तुओं के विभिन्न संयोगों को दिखाया गया है जिनसे उपभोक्ता को समान संतुष्टि प्राप्त होती है।"

तालिका- 1

तटस्थता तालिका

संयोग	x वस्तु की मात्रा	y वस्तु की मात्रा	संयोग से प्राप्त कुल उपयोगिता	प्रतिस्थापन दर
I	1	6	A	x = 3y
II	2	3	A	x = 1y
III	3	2	A	x = 5y
IV	4	1.5	A	

इस तालिका से यह स्पष्ट है कि उपभोक्ता के लिए पहले संयोग में x वस्तु की एक इकाई तथा y वस्तु की 6 इकाइयाँ हैं। इससे उपभोक्ता को A के बराबर कुल उपयोगिता प्राप्त होती है। इसके पश्चात् यदि उपभोक्ता x वस्तु की मात्रा बढ़ाना चाहता है तथा कुल उपयोगिता को भी A के बराबर ही रखना चाहता है तो उसे y वस्तु की कुछ इकाइयां इस प्रकार त्यागनी पड़ेगी कि x वस्तु के समान उपयोगिता प्राप्त हो। अतः इस रेखा का हर बिन्दु तटस्थता वक्र का एक अभिन्न हिस्सा है।

5.2.3 तटस्थता मानचित्र (Indifference Map)

तटस्थता वक्र पर x तथा y वस्तु के ऐसे अनेक संयोग होते हैं जिनसे उपभोक्ता को समान संतोष प्राप्त होता है। इसके पश्चात् यदि x तथा y वस्तु के ऐसे विभिन्न संयोग लिये जाये जिनकी उपयोगिता पिछले संयोगों से कम या अधिक हो तो उनके लिए दूसरे तटस्थता वक्रों का निर्माण करना पड़ेगा। अतः विभिन्न संयोग

होने से विभिन्न तालिकाएं और उनके फलस्वरूप विभिन्न तटस्थता वक्र बनेंगे। ऐसा रेखाचित्र जो एक से अधिक तटस्थता वक्रों को प्रदर्शित करता है तटस्थता मानचित्र कहलाता है।

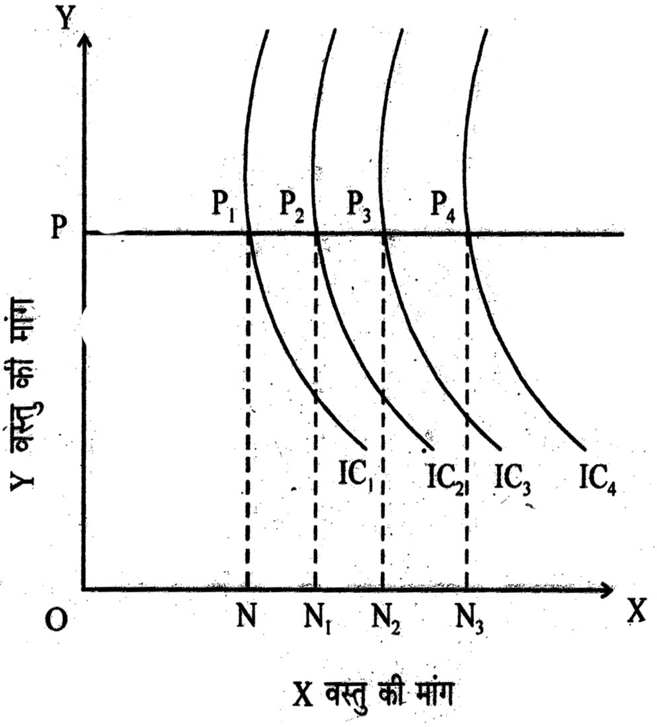

इस चित्र में x अक्ष पर x तथा y अक्ष पर y वस्तु को रखा गया है। IC_1, IC_2, IC_3 तथा IC_4 तटस्थता रेखाएं विभिन्न प्रकार की संतुष्टियों के क्रम को व्यक्त करती है। इसमें Y की मात्रा को स्थिर रखते हुए X की मात्रा को लगातार बढ़ाया जा रहा है, जिसके परिणामस्वरूप पहले संयोग की अपेक्षा दूसरे, तीसरे और चौथे संयोग से बढ़ती दर पर उपयोगिता मिलती है। इसी कारण प्रत्येक दाईं ओर बनने वाला तटस्थता वक्र बाएं वक्र से अधिक संतोष प्रदान करता है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि जो तटस्थता वक्र मूल बिन्दु से जितनी दूर होगा उससे प्राप्त संतुष्टि उतनी अधिक होगी। तटस्थता वक्र मानचित्र का प्रयोग उपभोक्ता के साम्य स्थिति के निर्धारण के लिए किया जाता है।इसके द्वारा यह स्पष्ट है कि जो तटस्थता वक्र मूल बिन्दु से जितनी अधिक दूरी पर स्थित होगा उसका प्रत्येक संयोग शेष वक्रों के संयोग से अधिक संतुष्टि देने वाला होगा। चित्र में पहले तटस्थता वक्र की अपेक्षा दूसरे, दूसरे से तीसरा व तीसरे से चौथा वक्र अधिक संतुष्टि स्तर को प्रदर्शित करता है। इसका कारण है कि जैसे-जैसे उपभोक्ता

NMDC-222

ऊँचे तटस्थता वक्र पर पहुंचता है, वैसे-वैसे दो वस्तुओं की मात्राओं में वृद्धि होती जाती है जिसके कारण उपभोक्ता का संतुलन स्तर भी बढ़ता है।

बढ़ने से जितनी उपयोगिता की प्राप्ति हो उतनी ही उपयोगिता की हानि 4 की इकाइयाँ घटाने से हो। इस उदाहरण में दूसरा संयोग x वस्तु की 2 इकाइयों व y- वस्तु की 3 इकाइयों का है। इसकी कुल उपयोगिता A के बराबर है। इन वस्तुओं के अन्य संयोग 3x, 2y तथा 4x, 1.5y हैं। चूँकि इन संयोगों से उपभोक्ता को कुल एक सी उपयोगिता प्राप्त हो रही है इसलिए इनमें से किसी एक के चुनाव के बारे में उपभोक्ता उदासीन या बेफिक्र हो जाता है। इसलिए यह तटस्थता तालिका कहलाती है।

5.2.4 तटस्थता वक्र (Indifference Curve)

तटस्थता वक्र की परिभाषाओं से स्पष्ट है कि यह वस्तुओं की मात्राओं के विभिन्न संयोगों का बिन्दु-पथ है जिनसे समान उपयोगिता प्राप्त होती है, अतः उपभोक्ता उनके बीच चुनाव करने में तटस्थ रहता है। इस प्रकार तटस्थता तालिका में प्रदर्शित विभिन्न संयोगों में x व y की मात्राओं को ग्राफ पेपर पर अंकित करके एक तटस्थता वक्र बनाया जा सकता है।

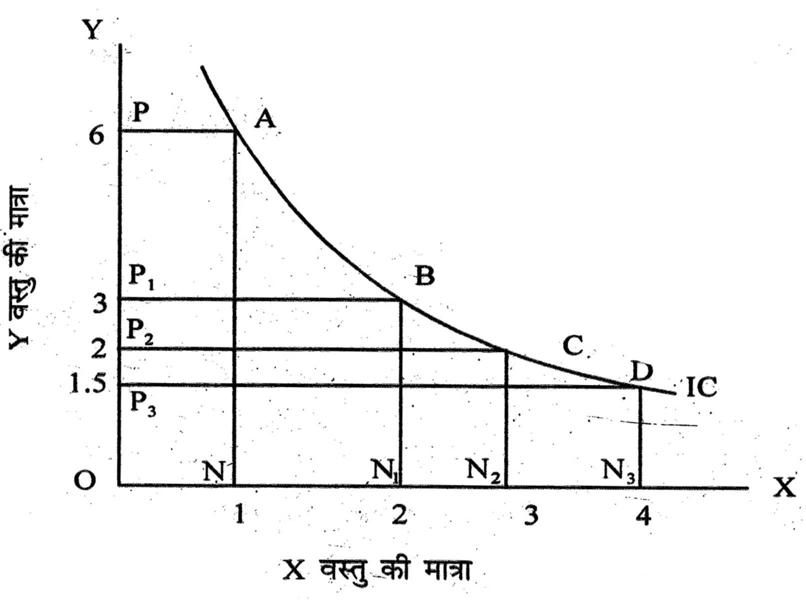

NIOC-222

चित्र में x अक्ष पर x वस्तु को तथा y अक्ष पर y वस्तु को दिखाया गया है। IC वक्र इन दोनों वस्तुओं के विभिन्न संयोगों को दिखाने वाला तटस्थता वक्र है जिससे उपभोक्ता को समान उपयोगिता प्राप्त होती है। इन वस्तुओं के संयोगों को A, B, C तथा D बिन्दुओं द्वारा दिखाया गया है, जिनमें x तथा y वस्तुओं की मात्राएं क्रमशः ON + OP अर्थात् (1X + 6Y), ON_1 + OP_1 अर्थात् (2X + 3Y), OP_2 + ON_2 अर्थात् (3X + 2Y) तथा OP_3 + ON_3 अर्थात् (4X + 1.5Y) है।

इस वक्र पर इन चार बिन्दुओं से ही उपभोक्ता को समान उपयोगिता प्राप्त नहीं होती वरन् इस रेखा पर बन सकने वाले सभी बिन्दुओं से निर्मित वस्तुओं के हर संयोग से भी कुल उपयोगिता समान रहती है। चित्र में प्रत्येक तटस्थता वक्र पर P, P_1, P_2, तथा P_3 बिन्दु दिखाए गये हैं तथा इनके समकक्ष Y-अक्ष पर N, N_1, N_2 तथा N_3 बिन्दु दिखाये गये हैं। ये बिन्दु X तथा Y वस्तुओं के संयोगों को व्यक्त करते हैं। A बिन्दु IC पर स्थित है जो OP मात्रा में Y तथा ON मात्रा में x वस्तु के संयोग को प्रदर्शित करता है। इसी प्रकार IC वक्र पर B बिन्दु OP_1(Y) तथा ON_1(X) की मात्रा को बताता है। IC पर बिन्दु C बिन्दु OP_2 (Y) और ON_2 (X) की मात्रा को बताता है। IC वक्र पर D बिन्दु में OP_3(Y) तथा ON_3(X) की मात्रा का संयोग है।

5.2.5 तटस्थता वक्रों की विशेषताएँ (Characteristics of indifference curves)

तटस्थता वक्रों की प्रमुख विशेषताएँ निम्न हैं।

1. तटस्थता वक्र बाईं से दाईं ओर गिरता है—तटस्थता वक्र की आकृति लगभग मांग वक्र से मिलती-जुलती है जिसका ढाल ऋणात्मक होता है। इसका प्रमुख कारण यह है कि जब उपभोक्ता

NMDC-222

एक वस्तु की मात्रा में कमी करता है तब दूसरी वस्तु की मात्रा को बढ़ाता है क्योंकि यह शर्त समान संतुष्टि के लिए आवश्यक है।

उपरोक्त चित्र से स्पष्ट है कि तटस्थता वक्र पर A तथा B दो संयोग दिये हुए हैं जब उपभोक्ता A संयोग से B संयोग की ओर बढ़ता है तब वह Y वस्तु की मात्रा में P_1P के बराबर कमी करके X वस्तु की NN_1 मात्रा में वृद्धि कर देता है। बिन्दु A तथा B दोनों एक ही तटस्थता वक्र पर स्थित हैं जिनके कारण उपभोक्ता को दोनों संयोगों से समान संतुष्टि मिलती है।

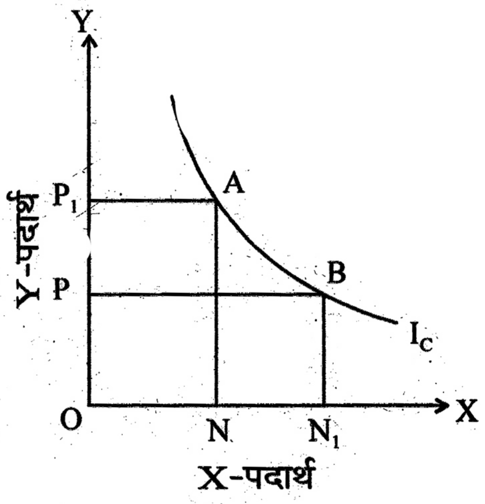

तटस्थता वक्र की इस विशेषता से यह प्रकट होता है कि एक सामान्य तटस्थता वक्र—

(i) ऊपर उठता हुआ नहीं हो सकता है।

(ii) तटस्थता वक्र लम्बवत् नहीं हो सकता है।

(iii) तटस्थता वक्र क्षैतिजीय नहीं हो सकता है।

2. तटस्थता वक्र मूल बिन्दु की ओर उन्नतोदर होता है— तटस्थता वक्र मूल बिन्दु की ओर उन्नतोदर होता है। इसका प्रमुख कारण प्रतिस्थापन की घटती हुई सीमान्त दर है। उपभोक्ता जैसे-जैसे किसी वस्तु की उत्तरोत्तर इकाइयों को क्रय करता है वैसे-वैसे उसे दूसरी वस्तु की कम इकाइयों का त्याग करना पड़ता है।

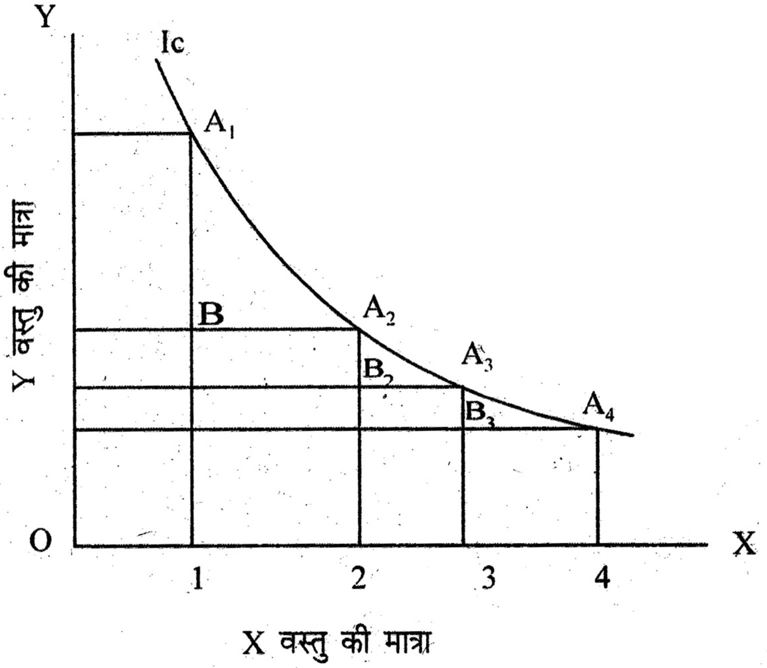

चित्र में Ic एक तटस्थता वक्र है जिसमें X तथा Y वस्तुओं के विभिन्न संयोग निहित है, इसमें प्रत्येक संयोग समान उपयोगिता व्यक्त करता है। इस वक्र पर चार संयोग A_1, A_2, A_3 और A_4 है। जब उपभोक्ता A_1 संयोग से A_2 पर, A_2 से A_3 पर तथा A_3 से A_4 पर आता है, तब X वस्तु की वृद्धि बढ़ी हुई दरों से की जाती है, जबकि Y वस्तु की मात्रा क्रमशः घटायी जा रही है। चित्र से स्पष्ट है Y की A_1 B मात्रा को त्यागने पर x की B A_2 मात्रा को लिया जाता है, फिर Y वस्तु की A_2 B_2 मात्रा का त्याग किया गया है। अन्त में Y वस्तु की A_3 B_3 मात्रा त्यागी गई है और इसके बदले में X वस्तु की B_3 A_4 मात्रा का प्रतिस्थापन किया गया है। अब चूंकि X वस्तु की बढ़ाई गयी मात्रा हर परिवर्तन पर एक जैसी है, इसलिये Y वस्तु की घटाई गई मात्रा उत्तरोत्तर कम होती जा रही है। इस प्रकार प्रतिस्थापन दर कम होती चली जा रही है। इस कारण से तटस्थता वक्र मूल बिन्दु के प्रति उन्नतोदर होता है।

उपरोक्त विशेषता को स्वीकार करने के पश्चात् स्वाभाविक तौर पर यह कहा जा सकता है कि तटस्थता वक्र न तो एक सीधी रेखा में हो सकता है और न ही मूल बिन्दु के प्रति नतोदर हो सकता है।

NMDC-222

तटस्थता वक्र एक दूसरे को नहीं काटते

प्रत्येक तटस्थता वक्र संतुष्टि के अलग स्तर को प्रकट करता है अतः किन्हीं दो तटस्थता रेखाओं से एक-दूसरे को काटना सम्भव नहीं है। इसे स्पष्ट करने के लिए चित्र में दो तटस्थता वक्रों IC_1 व IC_2 को एक-दूसरे को P बिन्दु पर काटते हुए दिखाया गया है।

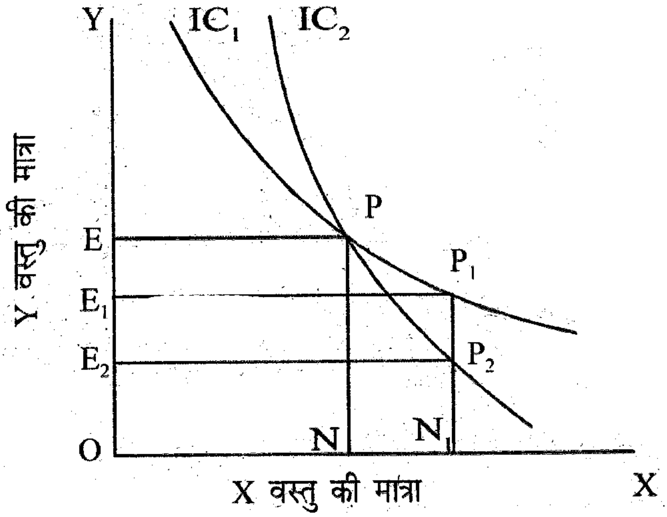

चित्र में IC_1 तटस्थता वक्र पर P तथा P_1 बिन्दु समान संतोष को प्रकट कर रहे हैं अर्थात् संतोष की दृष्टि से बिन्दु P = बिन्दु P_1 इसी प्रकार IC_2 तटस्थता वक्र पर बिन्दु P = बिन्दु P_2। इस प्रकार यदि $P = P_1$ तथा $P = P_2$ है तो $P_1 = P_2$ होना चाहिए, परन्तु यह सम्भव नहीं है। P_1 तथा P_2 बिन्दुओं पर X वस्तु की मात्रा तो ON_1 के रूप में समान है लेकिन P_1 पर P_2 की अपेक्षा Y वस्तु की मात्रा अधिक है। अतः OE OE_2 के बराबर न होने से इनका संतोष भी बराबर नहीं हो सकता। वास्तव में तटस्थता वक्रों के काटने के कारण ही यह निष्कर्ष निकलता है कि OE_1 तथा OE_2 बिन्दुओं की संतुष्टि बराबर है, जबकि Y वस्तु की मात्रा के अन्तर के कारण OE_1 का संतोष OE_2 के संतोष से अधिक होगा।

iv. विभिन्न तटस्थता वक्रों का समानान्तर होना आवश्यक नहीं—

तटस्थता वक्र एक दूसरे के समानान्तर हो सकते हैं अथवा नहीं भी हो सकते हैं। यह बात तटस्थता मानचित्र पर दर्शाए गए तटस्थता वक्रों की सीमान्त प्रतिस्थापन दर पर निर्भर करती है। दो तटस्थता वक्रों के विभिन्न बिन्दुओं पर प्रतिस्थापन की सीमान्त दर समान होने पर वे एक-दूसरे के समानान्तर होंगे। जबकि इस दर के असमान होने पर वे एक-दूसरे के समानान्तर नहीं होगे।

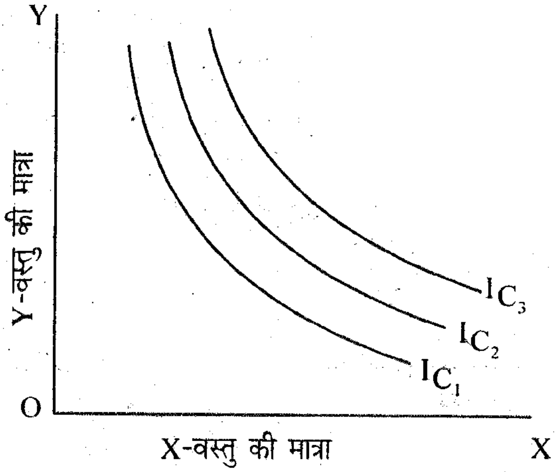

v. ऊँचा तटस्थता वक्र अधिक संतोष देगा— कोई तटस्थता मानचित्र जितना ही ऊंचा होगा वह उतना ही अधिक संतोष प्रदान करेगा।

vi. तटस्थता वक्र अक्षांशों को नहीं छूते— इसका प्रमुख कारण यह है कि यदि तटस्थता वक्र किसी भी अक्षांश को छुएगा तो वहां यह मान्यता समाप्त हो जायेगी कि तटस्थता वक्र

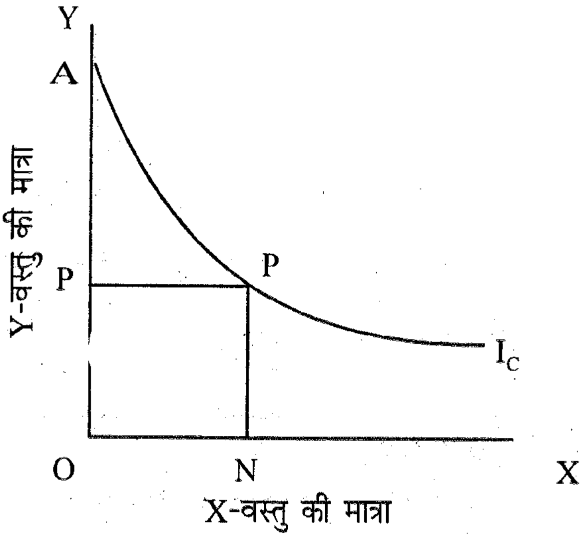

पर प्रत्येक बिन्दु दो वस्तुओं के विभिन्न संयोगों को प्रक़ट करते

है। इस स्थिति को चित्र द्वारा समझा जा

सकता है। जिसमें तटस्थता वक्र द्वारा Y-आक्षांश के A बिन्दु पर Y वस्तु की OA मात्रा तथा X-वस्तु की शून्य मात्रा है अतः यहां दो वस्तु का संयोग नहीं बना है। P बिन्दु एक संयोग को प्रकट करता है जिसमें X-वस्तु की ON तथा Y वस्तु की OP मात्रा है।

5.3 सारांश

तटस्थता वक्र वस्तुओं की मात्राओं के उन संभागों का बिन्दुपथ है जिनके बीच व्यक्ति उदासीन रहता है और इसलिए इसको तटस्थता या उदासीनता वक्र कहते हैं। वस्तुओं के अनेक संयोगों से तटस्थता तालिका का निर्माण होता है। यह तालिका दो वस्तुओं के ऐसे विभिन्न संयोगों की सूची होती है जो किसी व्यक्ति को समान रूप से संतुष्टि प्रदान करती है। एक से अधिक तटस्थत वक्रों को प्रदर्शित करने वाला रेखाचित्र तटस्थता मानचित्र कहलाता है। तटस्थता वक्रों की अनेक विशेषताएँ पायी जाती हैं जिनमें से कुछ प्रमुख विशेषताओं के अन्तर्गत यह वक्र बाईं से दायीं ओर गिरता है, यह मूल बिन्दू की ओर उन्नतोदर होता है, तटस्थता वक्र एक-दूसरे को नहीं काटते हैं, तटस्थता वक्रों का समान्तर होना आवश्यक नहीं होता, ऊँचा तटस्थता वक्र अधिक सन्तोष देता है तथा तटस्थता वक्र अक्षांशों को नहीं छूते हैं।

5.4 बोध प्रश्न

1. तटस्थता वक्र का आशय स्पष्ट करें तथा इसकी मान्यताओं का वर्णन करें।

NODC-222

2. तटस्थता वक्रों की विशेषताओं को समझाइये।

5.5 सन्दर्भ ग्रन्थ

1. जे0सी0 पंत, व्यष्टि अर्थशास्त्र, साहित्य भवन पब्लिकेशनस, आगरा, 2005

2. Ahuja, H.L.; Advanced Economic Theory, S. Chand & Company Ltd. 2001.

3. एम0 एल0 झिंगन, उच्च आर्थिक सिद्धान्त, वृंदा पब्लिकेशन्स प्रा0 लि0, 1947

इकाई- 6 मांग पूर्वाभास

संरचना

6.0 उद्देश्य

6.1 प्रस्तावना

6.2 मांगपूर्वाभास का अर्थ

6.3 मांग पूर्वाभास का क्षेत्र

6.4 मांग पूर्वाभास की विधियां

6.4.1 विद्यमान वस्तुओं का पूर्वाभास

6.4.2 नई वस्तुओं का पूर्वाभास

6.5 मांग पूर्वाभास का महत्व

6.6 सारांश

6.7 बोध प्रश्न

6.8 सन्दर्भ ग्रन्थ

6.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप सक्षम होंगे :

- मांग पूर्वाभास को समझने में,
- मांग पूर्वाभास की विधियों को जानने में, तथा
- मांग पूर्वाभास का महत्व समझने में।

6.1 प्रस्तावना

मांग पूर्वाभास किसी भी फर्म के लिए अति आवश्यक होता है। इसके द्वारा ही उत्पादन के साधनों को यथोचित रूप में जुटाना

N-ADC-222

सुविधाजनक होता है। विक्रय मांग के अनुसार हो, इसके लिए आवश्यक है कि पूर्वाभास ठीक- ठाक हो। पूर्वाभास सही होने की स्थिति में अति उत्पादन एवं अल्प उत्पादन की समस्या से बचा जा सकता है। इस प्रकार फर्म को होने वाली हानियों से मुक्त रखा जा सकता है। जब उत्पादन भविष्य में विक्रय के लिए किया जा रहा हो तो उस स्थिति में मांग पूर्वाभास का अत्यन्त महत्व होता है। विद्यमान एवं नयी वस्तुओं को पूर्वाभास के लिये प्रबन्धक अपनी सुविधा एवं वांछित परिणामों को ध्यान में रखकर माँग-पूर्वाभास की विधियों का प्रयोग करते हैं।

6.2 मांग पूर्वाभास का अर्थ (Meaning of Demand Forecasting)

मांग पूर्वाभास शब्द दो शब्दों मांग एवं पूर्वाभास से मिलकर बना है। मांग का विस्तृत अध्ययन पिछली इकाईयों में किया जा चुका है। पूर्वाभास या भविष्यवाणी का सामान्य अर्थ होता है कि कोई काम कब, कहाँ, कैसे और कितना होगा? इस प्रकार दोनों शब्दों को मिलाने पर कह सकते हैं कि मांग पूर्वाभास आगामी समय में कब, कहां, कैसे और कितनी मांग होगी का निर्धारण करना है। यह विक्रय पूर्वाभास का पर्याय भी माना जाता है। कुछ प्रमुख विद्वानों द्वारा विक्रय पूर्वाभास की परिभाषाएं निम्न हैं—

फिलिप कोटलर के अनुसार, "कम्पनी का पूर्वानुमान एक चुनी हुई बाजार योजना एवं दिए गए बाजार सम्बन्धी वातावरण पर आधारित कम्पनी के विक्रय का आशान्वित स्तर है।"

कण्डिफ एवं स्टिल के शब्दों में, "विक्रय पूर्वाभास किसी दिये हुए भविष्य कालीन समय में विक्रय का अनुमान होता है जो कि

प्रस्तावित बाजार योजना से सम्बद्ध होता है जिसमें अनियमित एवं प्रतियोगी शक्तियों का एकसमूह विशेष सम्मिलित होता है।''

अमेरिकन मार्केटिंग एसोसिएशन के विचार से, ''विक्रय पूर्वाभास इकाई के विक्रय का डॉलर या भौतिक इकाइयों के रूप में दी हुई बाजार योजना या आयोजन एवं आर्थिक और अन्य बाह्य शक्तियों की मान्यता के अन्तर्गत भविष्यकाल के बारे में अनुमान होता है।''

इन परिभाषाओं के आधार पर मांग पूर्वाभास की निम्नलिखित विशेषताएँ सामने आती हैं :-

i. यह भविष्य के विक्रय का अनुमान होता है।
ii. भूतकाल के आँकड़े व परिस्थितियाँ पूर्वाभास का आधार होती है।
iii. यह योजना का आधार होता है।
iv. पूर्वाभास मुद्रा एवं वस्तु की इकाई के रूप में हो सकता है।
v. पूर्वाभास एक निश्चित समय के लिए होता है।
vi. बाजार सम्बन्धी योजना, आर्थिक तथा अन्य तत्वों पर पूर्वानुमान निर्भर करता है।

6.3 मांग पूर्वाभास का क्षेत्र (Scope of Demand Forecasting)

मांग पूर्वाभास समय की दृष्टि से अल्प या दीर्घकालीन हो सकता है। अल्पकाल में जहां एक वर्ष तक का अनुमान होता है वहीं दीर्घकालीन पूर्वाभास 5, 10 या 20 वर्ष तक का होता

है। यह फर्म की आवश्यकता अथवा परिस्थिति पर निर्भर करता है।

स्तर की दृष्टि से मांग पूर्वाभास तीन प्रकार से हो सकता है—

i. व्यापक स्तर ii. उद्योग स्तर, तथा iii. फर्म स्तर

व्यापक स्तर का सम्पूर्ण आर्थिक व्यवस्था की परिस्थिति से सम्बन्ध होता है। यह पूर्वाभ्यास औद्योगिक उत्पादन सूचकांक, राष्ट्रीय आय अथवा व्यय द्वारा होता है जिसका आधार बाहरी आँकड़े हैं। **उद्योग स्तर** पर मांग पूर्वाभास विभिन्न व्यापार संघों द्वारा किये जाते हैं। **फर्म स्तर,** जो कि प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र की दृष्टि से महत्वपूर्ण है, मांग पूर्वाभास के क्षेत्र में शामिल होता है।

मांग पूर्वाभास सामान्य अथवा विशिष्ट हो सकता है। सामान्य पूर्वाभास तो फर्म को लाभदायक बना सकता है, लेकिन कभी-कभी विक्रय के क्षेत्रों के दृष्टिकोण से अलग-अलग वस्तुओं का पूर्वाभास करना पड़ता है। मांग पूर्वानुमान का क्षेत्र इस बात पर भी निर्भर करता है कि यह पूर्वानुमान विद्यमान वस्तुओं का है अथवा नई वस्तुओं का।

6.4 मांग पूर्वाभास की विधियाँ (Methods of Demand Forecasting)

पूर्वाभास की समस्या के समाधान के लिए इसे दो भागों में बांटा जाता है—

(क) विद्यमान वस्तुओं का पूर्वाभास

(ख) नई वस्तुओं का पूर्वाभास

6.4.1 (क) विद्यमान वस्तुओं का मांग-पूर्वाभास (Forecasting the Demand for Established Produets)—

स्थापित वस्तुओं का मांग पूर्वाभास एक सामान्य प्रक्रिया है। यह वर्तमान बाजारों से प्राप्त सूचनाओं तथा भूतकालीन विक्रय के स्वभाव से तैयार किया जाता है। मांग के तत्व अल्पकाल में कम परिवर्तनशील होते हैं अतः अनुमान का कार्य सरल हो जाता है।

विद्यमान वस्तुओं की अनुमान विधियों के कई रूप हो सकते हैं, जिनमें कुछ व्यक्तिगत विवेक तथा अनुभव पर निर्भर करते हैं जबकि अन्य दैनिक क्रिया के रूप में अपनाए जाते हैं। पूर्वाभास की विभिन्न विधियाँ एक-दूसरे से मिलती-जुलती तथा सामूहिक रूप से काम करती हैं। मांग पूर्वाभास की निम्नलिखित विधियाँ हैं—

(i) क्रेताओं की इच्छाओं का सर्वेक्षण
(ii) जानकार व्यक्तियों का सर्वेक्षण
(iii) भूतकालीन प्रवृत्तियों का प्रदर्शन
(iv) सह-सम्बन्ध विश्लेषण
(v) नियन्त्रित प्रयोग
(vi) आर्थिक संकेतकों की विधि

(i) **क्रेताओं की इच्छाओं का सर्वेक्षण**— मांग के अनुमान की सबसे सरल विधि ग्राहकों से यह पूछने की होती है कि वे क्या खरीदने की योजना बना रहे है ? सभी ग्राहकों से यह पूछना सम्भव नहीं है। अतः नमूने के तौर पर कुछ ऐसे ग्राहकों से पूछा जा सकता है, जो सभी ग्राहकों का प्रतिनिधित्व करते हैं। औद्योगिक उत्पादनों के विक्रय की स्थिति में पूर्वानुमान का भार ग्राहक पर होता है। औद्योगिक क्रेता का अनुमान विक्रेता के अनुमान को ठीक बना सकता है। क्रेता निश्चित अनुमान के आधार पर अपनी आवश्कताओं का पूर्वानुमान करता है, परन्तु वस्तु का भन्डार उसकी

वास्तविक मांग में कुछ नरमी बरतता है। इस प्रकार मूल्य दृष्टि में थोड़ा भी परिवर्तन उसके वस्तु के भण्डार के दृष्टिकोण में बहुत कुछ परिवर्तन ला देता है। अतः औद्योगिक क्रेताओं के क्रय की अन्य इच्छाओं को जानने के मार्ग में अनेक बाधाएं आती हैं।

(ii) जानकार व्यक्तियों का सर्वेक्षण— यह एक प्रभावपूर्ण विधि है जिसमें उन व्यक्तियों के विचारों को जाना जाता है जिन्हें क्रेताओं के बारे में पूर्ण जानकारी होती है। अनेक कम्पनियां अपने पूर्वाभांस सीधे अपने विक्रयकर्ताओं से लेती है जो ग्राहकों से सीधे सम्बन्धित होते हैं तथा जिन्हें बाजार की स्थिति का पूर्ण ज्ञान होता है। अनुमानों को जोड़कर कुल अनुमान किया जाता है, जिसके पश्चात् आशा सम्बन्धी त्रुटियों को कम करने के लिए उच्च अधिकारियों द्वारा इसकी जांच की जाती है। यद्यपि यह विधि बहुत अनौपचारिक है फिर भी अधिकांश कम्पनियां इसे अपनाती हैं।

iii. भूतकालीन प्रवृत्तियों का प्रदर्शन— सांख्यिकीय विधियों द्वारा काल श्रेणियों का विश्लेषण कर विक्रय के भूतकालीन स्वभाव को दीर्घकालीन प्रवृत्ति, व्यावसायिक चक्र सम्बन्धी उच्चावचनों के वक्र के समूह तथा ऋतुगत ढाँचे जैसे कई भागों में विभक्त कर दिया जाता है।

$$O = TSCI$$

O = परीक्षित आँकड़े

T = दीर्घकालीन प्रवृत्ति

S = ऋतुगत तत्व

C = चक्रीय तत्व

I = अनियमित परिवर्तन

इस विधि में सर्वप्रथम आँकड़ों की प्रवृत्ति निकाली जाती है जिसे परीक्षित आंकड़ों से घटा दिया जाता है। इसके पश्चात् दूसरा

पद ऋतुगत सूचकांक बनाया जाता है, जिससे ऋतुगत प्रभाव को घटा दिया जाता है तब चक्र को बाकी बचे हुए चक्रीय तत्व तथा अनियमित परिवर्तन में समायोजित कर दिया जाता है।

(iv) सह-सम्बन्ध विश्लेषण— सह-सम्बन्ध का प्रयोग मांग के पूर्वानुमान में होता है जिसमें दो या उससे अधिक चरों के बीच सम्बन्ध की सीमा की माप को सह-सम्बन्ध विश्लेषण कहते हैं। यह सम्बन्ध दो चरों के बीच जितना अधिक होता है, अनुमान उतने ही ठीक होते हैं। सह-सम्बन्ध विश्लेषण मांग-फलन, विक्रय, राष्ट्रीय आय, मूल्य और मौसम जैसे तत्वों को भी बताता है। इसका प्रमुख लक्ष्य मांग निर्धारक तत्वों तथा विक्रय में परिवर्तन के बीच के सम्बन्ध को अलग करना तथा मापना है। गणितीय रूप में प्रस्तुत किये गये ये तत्व यह बताते हैं कि किस प्रकार स्वतंत्र तत्व में परिवर्तन से विक्रय में परिवर्तन होता है। अतः इस विधि द्वारा मांग-पूर्वाभास को निर्धारित किया जा सकता है।

(v) नियन्त्रित प्रयोग— नियन्त्रित बाजार प्रयोग द्वारा वस्तु के विक्रय की सम्भावना इस विधि द्वारा जानी जाती है। गृहणियों द्वारा चुनाव हेतु कुछ वस्तुओं को विक्रय के लिए किसीं दुकान पर रखा जाता है। इन नमूनों पर गृहणी ग्राहकों की मांग का अध्ययन किया जाता है कि वे प्रयोग की जा रही वस्तुओं को कितना चाहती हैं। उनके चयन, पसन्द एवं वार्तालाप को लिखा जाता है। वस्तु के मूल्य, लेबल आदि में परिवर्तन ग्राहकों के क्रय में परिवर्तन को देखते हुए लाया जाता है। इस विधि की सफलता वस्तुओं को दुकानों पर निःशुल्क भेजने से होती है। यह एक खर्चीली विधि होती है।

(vi) आर्थिक संकेतकों की विधि—इस विधि द्वारा मांग का पूर्वाभास कुछ आर्थिक संकेतकों के आधार पर किया जाता है। ये संकेत परिस्थिति विशेष के अनुसार भिन्न-भिन्न होते हैं तथा इनकी

NMDC-222

मात्रा और सही जानकारी प्राप्त करना एक कठिन समस्या होती है। सामान्य स्थितियों में इस विधि को अपनाना आसान होता है।

6.4.2 (ख) नई वस्तुओं का मांग पूर्वाभास (Forecasting the Demand for New Products)

विद्यमान वस्तुओं से नई वस्तुओं के मांग पूर्वाभास की विधियाँ भिन्न होती है। फर्म के मांग पूर्वाभास की विधियों से भिन्न नई वस्तु की माँग पूर्वाभास विधि होती है। वस्तु का फर्म तथा अर्थव्यवस्था दोनों के लिए नई होना इसका प्रमुख कारण होता है। इस कारण इसकी आर्थिक तथा प्रतिद्वन्दी विशेषताओं का अध्ययन कठिन होता है। सामान्यतः पूर्वाभास की विधियाँ आवश्यकता के अनुसार होनी चाहिए। प्रमुख प्रणालियाँ निम्न है—

(i) विकासगत प्रणाली (Evolutionary Method)—नई वस्तु की मांग का विद्यमान वस्तु के विकास अथवा आविष्कार के परिणाम के रूप में अनुमान करना चाहिए। यह प्रणाली उस स्थिति में उपयोगी होती है जब नई वस्तु पुरानी वस्तु का इतना निकटतम विकल्प हो कि इसकी मांग विद्यमान वस्तु की सम्भावित प्रगति या सुधार के फलस्वरूप बढ़ी हुई मांग के बराबर हो। इस प्रणाली की प्रमुख समस्या यह है कि इसमें नई मांग के ढांचे तथा पुरानी वस्तुओं की मांग के बीच में अन्तर करना कठिन होता है।

(ii) वैकल्पिक प्रणाली (Substitute Method)—यह प्रणाली अत्यधिक उपयोगी होती है क्योंकि अधिकांश वस्तुएं विकल्प ही होती हैं। कभी-कभी पुरानी वस्तु नई वस्तु के संभावित बाजार की अधिकतम सीमा निश्चित करती है। इसके अतिरिक्त वस्तु का विस्थापन दर नियम भी नई वस्तु के विक्रय के विस्तार के लिए यह बताता है कि किस तरह से सुधार अथवा मूल्य निर्धारण किया जाए।

विकल्प की अधिकतम सीमा नहीं बल्कि भेद्य-दर (Rate of Penetration) कई व्यावहारिक समस्याओं के लिए महत्वपूर्ण होता है अर्थात् कितनी तेजी से नई वस्तु पुरानी वस्तु को विस्थापित कर देगी। प्रत्येक प्रयोग अलग-अलग विस्थापन की योग्यता की समस्या पैदा करता है। अतः विद्यमान वस्तुओं का विस्थापन नई वस्तु की सम्भावित मांग के एक अंश तक ही सीमित रहता है।

(iii) विकास वक्र प्रणाली (Growth Curve Method)— नई वस्तु की मांग की विकास दर तथा अन्तिम स्तर का अनुमान दूसरे प्रणाली में लगाया जाता है जिसके पश्चात् यह सुनिश्चित किया जाता है कि अनुमान स्थापित वस्तुओं के विकास के ढाँचे के आधार पर होना चाहिए। इस प्रणाली की उपयोगिता सीमित होती है तथा बाद वाले मांग अनुमानों में इसके प्रयोग होते हैं। इस प्रणाली का उपयोग नए वायु-मार्ग तथा नए स्थल यातायात के सम्भावित विकास के अनुमान के लिए किया जाता है।

(iv) मतदान प्रणाली (Opinion Poll Method)—इस प्रणाली में अन्तिम क्रेताओं से पूछकर मांग की गणना की जाती है तथा अनुमान लगाया जाता है। मतदान भी व्यक्तिगत साक्षात्कार द्वारा नई वस्तुओं की मांग की खोज में सहायता पहुंचाता है। परन्तु इस प्रणाली में नमूने वास्तविक इच्छाओं को जानने में विविध विकल्प चयन की जटिलता तथा स्थापित वस्तुएं जैसी समस्याएं होती है। इसमें अभिमन्त्रणा परीक्षणों द्वारा अच्छे परिणाम मिल सकते हैं।

(v) विक्रय अनुभव प्रणाली (Sales Experience Approach)—इस प्रणाली के अन्तर्गत नई वस्तु को नमूने अथवा किसी श्रृंखला भण्डार में भेजा जाता है और इससे सभी माँगों तथा बाजार की कुल मांग का अनुमान किया जाता है नमूने के आधार पर नई वस्तु के विक्रय का आधार नियन्त्रित होता है तथा मांग का अनुमान ठीक-ठीक हो पाता है। परन्तु वस्तु की

अपरिपक्वता तथा विशिष्टताओं के लिए छूट निर्धारित करने में कठिनाई होती है। कम पूंजी से पैदा होने वाली कम मूल्य की वस्तुओं को छोड़कर यह प्रणाली अनुसंधान के विक्रय में देर से आती है।

(vi) पर उत्तरदायित्व प्रणाली (Vecarious Method)— अप्रत्यक्ष रूप से विशिष्ट विक्रेताओं द्वारा नई वस्तु के प्रति उपभोक्ताओं की प्रतिक्रिया जानना चाहिए। उपभोक्ता की आवश्यकताओं तथा वैकल्पिक अवसरों के बारे में इन विक्रेताओं को पता होता है। यद्यपि यह एक आसान प्रणाली होती है परन्तु निश्चित नहीं होती है। विक्रेताओं की ओर से मांग सम्बन्धी गणना की पुनः जांच की जानी चाहिए। इस प्रणाली द्वारा प्राप्त अनुमान विक्रेता की अनुमान सम्बन्धी क्षमता से अधिक अच्छे नहीं होते हैं। कभी-कभी विक्रेता सूचना भी बिना मन के देते हैं।

श्रेष्ठ पूर्वाभास प्रणाली (A Good Forecasting Method)— भविष्य के विक्रय का अनुमान करने के सम्बन्ध में अनेक श्रेष्ठ विधियां हैं, जिनमें लागत की लोच तथा कौशल सम्बन्धी भिन्नता पाई जाती है। किसी विशेष मांग परिस्थिति के लिए सर्वश्रेष्ठ प्रणाली चुनते समय निम्न बातों का होना आवश्यक होता है—

(अ) शुद्धता

(ब) सम्भाव्यता

(स) टिकाऊपन

(द) लोच

(ङ) उपादेयता

6.5 मांग पूर्वाभास का महत्व (Importance of Demand Forecasting)

आधुनिक व्यवसाय में मांग पूर्वाभास का बहुत महत्व है। प्रत्येक

फर्म को यह जानना पड़ता है कि उसकी वस्तु का कब एवं कितना विक्रय होगा? यह मांग पूर्वाभास द्वारा सम्भव है। यह फर्म को समायोचित जानकारी देकर भविष्य के जोखिमों से बचाता है तथा फर्म अनुमानों के आधार पर अपनी योजनाओं, उत्पादन एवं विक्रय सम्बन्धी लक्ष्य को समायोजित करता है। पूर्वाभास की शुद्धता एवं सत्यता पर व्यवसाय की सफलता निर्भर करती है। इसके द्वारा व्यवसाय में किये गये सभी कार्य सही ढंग से होंगे तथा फर्म लाभ कमाने की स्थिति में होगा। मांग के पूर्वानुमान के आधार पर ही मशीन, श्रम, कच्ची सामग्री, आदि साधन उचित मात्रा एवं समय पर जुटाए जाते हैं। इस प्रकार मांग के अनुरूप समय पर उत्पादित वस्तुएं उत्पादन के कुप्रभावों से बच जाती हैं। अनेक उद्योगों में मौसम का बहुत महत्त्व होता है। अतः ऐसी स्थिति में मांग पूर्वानुमान का महत्व बढ़ जाता है।

6.6 सारांश

मांग पूर्वाभास आधुनिक व्यावसायिक संगठनों के लिए अत्यन्त आवश्यक होते है। क्योंकि यह युग प्रतियोगिता का युग है जिसमें सही समय पर सही चीजों की आवश्यकता होती है। मांग पूर्वाभास द्वारा प्रबन्ध को काफी हद तक सही चीजों का पूर्वाभास हो पाता है जिससे व्यवसाय की गतिविधियां सुचारू ढंग से सम्पन्न हो पाती है। इसके द्वारा साधनों का अधिकतम एवं यथोचित उपयोग सम्भव हो पाता है। यह योजनाओं को आधार प्रदान करता है जो एक निश्चित समय के लिए होता है। मांग पूर्वाभास की सामान्यतः दो विधियां—विद्यमान वस्तुओं का पूर्वाभास तथा नई वस्तुओं का पूर्वाभास पायी जाती है। इन विधियों का प्रयोग फर्म द्वारा अपनी सुविधा के अनुसार किया जाता है। मांग पूर्वाभास का महत्व आधुनिक व्यवसाय में अत्यधिक होता है क्योंकि मांग पूर्वाभास के द्वारा न तो कम उत्पादन द्वारा व्यवसाय हानि को उठाता है और

न ही अत्यधिक उत्पादन द्वारा साधनों की बर्बादी के द्वारा हानि उठाता है। इस प्रकार फर्म को लाभदायक स्थिति में बनाये रखने के लिए मांग पूर्वाभास का अत्यधिक महत्व होता है।

6.7 बोध प्रश्न

1. मांग पूर्वाभास के क्षेत्र को समझाइए।
2. मांग पूर्वाभास के महत्व को बताइये।
3. मांग पूर्वाभास की विधियों को समझाइये।

6.8 सन्दर्भ ग्रन्थ

- शर्मा एम0एल, प्रबंधकीय अर्थशास्त्र, साहित्य भवन, आगरा 2004
- पन्त जे0सी0 व्यष्टि अर्थशास्त्र, साहित्य भवन, आगरा 2005
- जे0सी0 पंत, व्यष्टि अर्थशास्त्र, साहित्य भवन पब्लिकेशनस, आगरा 2005
- Ahuja, H.L.; Advanced Economic Theory, S. Chand & Company Ltd. 2001.
- एम0 एल0 झिंगन, उच्च आर्थिक सिद्धान्त, वृंदा पब्लिकेशन्स प्रा0 लि0, 1947

इकाई-7 फर्म का सिद्धान्त-लाभ एवं विक्रय अधिकतमकरण (Theory of Firm-Profit and Sales maximization)

संरचना

7.0 उद्देश्य

7.1 प्रस्तावना

7.2 लाभ अधिकतमकरण

7.2.1 पूर्ण प्रतियोगिता में लाभ अधिकतमकरण

7.2.2 एकाधिकार में लाभ अधिकतमकरण

7.3 बॉमल का विक्रय अधिकतम सिद्धान्त

7.3.1 एकल वस्तु के साथ मॉडल

7.3.2 स्थिर लागतों के साथ मॉडल

7.3.3 वहुवस्तु मॉडल

7.4 वॉमल माडल की कमियां

7.5 सारांश

7.6 बोध प्रश्न

7.7 सन्दर्भ ग्रन्थ

7.0 उद्देश्य—

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप सक्षम होंगेः

- लाभ अधिकतमकरण को समझने में,
- विभिन्न स्थितियों में लाभ अधिकतमकरण को समझने में,
- विक्रय अधिकतमकरण को समझने में, तथा

- वॉमल के माडलों को विश्लेषित करने में।

7.1 प्रस्तावना

फर्म का संचालन अनेक सिद्धान्तों के आधार पर होता है। इन सिद्धान्तों के अन्तर्गत लाभ अधिकतमकरण, उत्पादन अधिकतमकरण, उपयोगिता अधिकतमकरण, तथा संतुष्टि एवं विक्रय अधिकतमकरण जैसे सिद्धान्त पाये जाते हैं। लाभ अधिकतमकरण से तात्पर्य मुद्रा लाभ से है जो औसत लागत से ऊपर या अधिक्य शुद्ध लाभ होता है। इसके अतिरिक्त फर्म अपने उत्पादन अधिकतमकरण को भी महत्व प्रदान करते हैं क्योंकि उत्पादन अधिकतमकरण होने से स्वतः ही अनेक वांछित परिणाम फर्म को प्राप्त होने लगते हैं। अतः फर्म लाभ एवं विक्रय अधिकतमकरण पर केन्द्रित करके कार्य करते हैं।

7.2 लाभ अधिकतमकरण (Profit Maximization)

किसी भी व्यावसायिक फर्म के कई उद्देश्य हो सकते हैं जैसे—लाभ अधिकतमकरण, उत्पादन अधिकतमकरण, उपयोगिता अधिकतमकरण, संतुष्टि अधिकतमकरण, संयुक्त लाभ अधिकतमकरण आदि।

लाभ अधिकतमकरण से तात्पर्य- मुद्रा लाभ (Money profit) से है। अन्य शब्दों में यह औसत लागत (Average cost) के ऊपर आधिक्य (Surplus) अर्थात् शुद्ध लाभ है।

किसी फर्म के लाभ अधिकतमकरण का नियम

पूर्ण एवं एकाधिकार स्थिति में—

(i) सीमान्त लागत = सीमान्त आगम (MC = MR) अर्थात् कुल आगम (Total Revenue) तथा कुल लागत (Total Cost) के मध्य अनुकूलतम अन्तर (Optimum Difference) होना चाहिए।

ii. सीमान्त आगम (MR) वक्र को सीमान्त लागत (MC) वक्र नीचे से काटे।

Maximise π (Q) — π (Q) – Profit

जहाँ $\pi (Q) = R (Q) - C (Q)$ — R (Q) – Revenue

C(Q) – Cost

मान्यताएँ (Assumptions)

1. फर्म का मुख्य उद्देश्य लाभ अधिकतमकरण है।
2. उपभोक्ताओं की रुचि एवं आदतें दी हुई हैं
3. उत्पादन तकनीक दी हुई है।
4. फर्म एक अकेली (Single), विभाज्य (Divisible), प्रमापित (Standard) वस्तु का उत्पादन करती है।
5. फर्म को अपनी मांग वक्र तथा लागत वक्रों का पूर्ण ज्ञान है।
6. नई फर्मों का प्रवेश केवल दीर्घकाल में संभव है, अल्पकाल में संभव नहीं।
7. लाभ अधिकतमकरण कुल काल-क्षितिज (Time Horizon) में करती है।

7.2.1 पूर्ण प्रतियोगिता में लाभ अधिकतमकरण (Profit maximisation under perfect competition)

पूर्ण प्रतियोगिता में फर्म अनेक उत्पादकों में एक है। वस्तु की बाजार कीमत को फर्म प्रभावित नहीं कर सकती है। फर्म केवल Price taker तथा Quantity adjustive होती है अर्थात् बाजार द्वारा निर्धारित मूल्य पर फर्म केवल अपनी विक्रय मात्रा में ही समायोजन करके लाभ को अधिकतम बना सकती है। इसलिए इस स्थिति में फर्म का औसत आगम वक्र तथा सीमान्त आगम वक्र समान होते हैं।

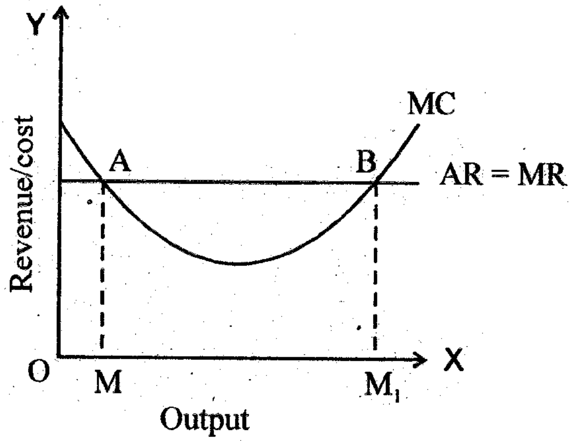

चित्र में A बिन्दु पर MR वक्र MC वक्र को काटता है। किन्तु बिन्दु A पर MR = MC होने पर भी यह संतुलन का बिन्दु नहीं है। इस बिन्दु के बाद MC, MR से नीचे है तथा न्यूनतम उत्पादन स्तर OM, अधिकतम लाभ का उत्पादन स्तर नहीं है। बिन्दु B पर संतुलन की दोनों शर्तों की पूर्ति होती है। MR = MC तथा MR को MC नीचे से काट रहा है। सीमान्त लागत का ढाल धनात्मक (MC has positive slope) है। OM अधिकतम लाभ

NMDC-222

का उत्पादन स्तर है किन्तु यह अनुकूलतम लाभ का उत्पादन स्तर नहीं है।

7.2.2 एकाधिकार के अन्तर्गत लाभ अधिकतमकरण (Profit Maximisation under Monopoly)—

मांग वक्र का ढाल नीचे होने के कारण एकाधिकार में फर्म को कुछ अधिकार कीमत तथा उत्पादन के निर्धारण के लिए प्राप्त होते हैं।

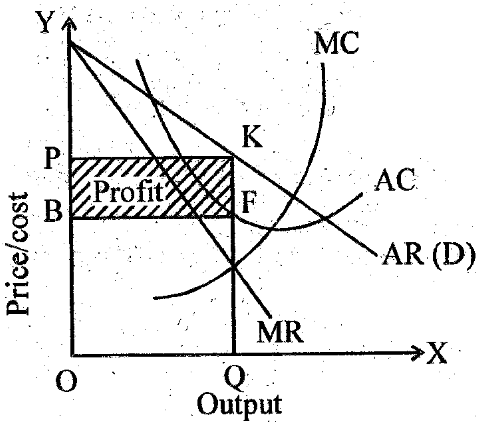

सीमान्त आगम तथा सीमान्त लागत MR & MC पर आधारित साम्यता (equilibrium) या अधिकतम लाभ के निर्धारण का दृष्टिकोण सर्वप्रथम Mrs Jhon Robinson ने दिया था।

सन्तुलन उत्पादन स्तर वहाँ होता है जहाँ MR = MC होता है। इस प्रकार उपरोक्त चित्र में,

संस्थिति उत्पादन	=	OQ
प्रति इकाई मूल्य (AR)	=	QK या OP
औसत लागत (AC)	=	QF या OB
लाभ प्रति इकाई	=	QK – QF = FK or OP-OB = PB
कुल लाभ	=	FK × OQ = or PB × OQ = } PKFB

MR = MC होना फर्म की संस्थिति की आवश्यक दशा अवश्य है पर पर्याप्त दशा नहीं।

NMDC-222

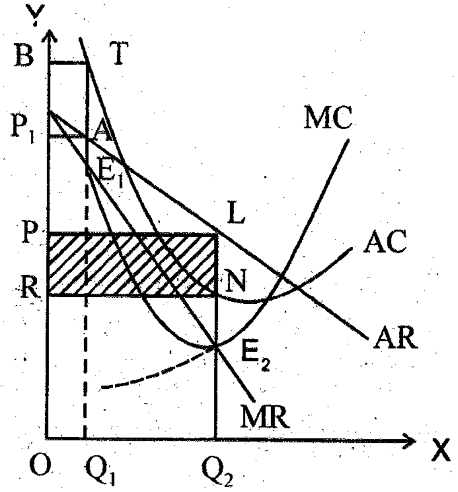

उपरोक्त चित्र में सीमान्त लागत वक्र (MC Curve) सीमान्त आगम (MR) को दो बिन्दुओं E_1 और E_2 पर काट रही है। परन्तु E_1 सन्तुलन का बिन्दु नहीं होगा। $BTAP_1$ फर्म की हानि की दशा है।

संतुलन E_2 पर होगा तथा PLNR फर्म का अधिकतम लाभ है।

इस चित्र में, TR = फर्म की कुल आगम वक्र (Total Revenue Curve)

TC = कुल लागत वक्र (Total Cost Curve)

TR इस मान्यता पर खींचा गया है कि वस्तु की बेची गई मात्रा में वृद्धि के साथ मूल्य में कमी हो रही

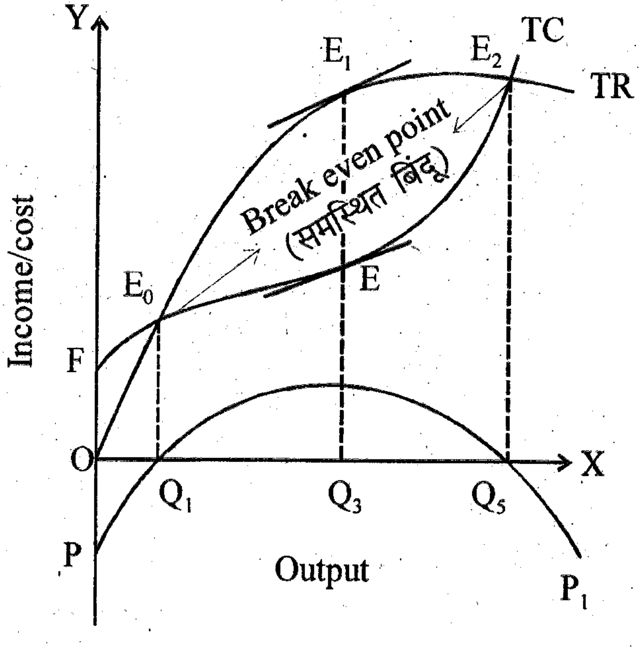

NMDC-222

है।

OF = स्थिर

लागत (Fixed cost)

TC = Fixed Cost + Variable Cost

साम्य स्तर वहां होगा जहां कुल लागत तथा कुल आगम TC & TR का अंतर अधिकतम होगा। इसलिए दोनों वक्र पर स्पर्श रेखा चित्रित करेंगे, जो TR और TC के ढाल को बताती है।

बिन्दु E_0 संतुलन बिन्दु नहीं हो सकता क्योंकि इस बिन्दु से पूर्व लागत, आगम से ज्यादा है। बिन्दु E_2 के बाद भी लागत, आगम से अधिक हो जायेगी। अतः E_0 से लेकर E_2 के बीच ही लाभ अधिकतम होगा। बिन्दु E_0 तथा E_2 को सम-विच्छेद बिन्दु भी कहते हैं।

PP_1 कुल लाभ वक्र है।

शून्य उत्पादन स्तर पर OF लागत तथा OP हानि है। अधिकतम उत्पादन स्तर OQ_5 होगा, क्योंकि OQ_5 के बाद फर्म उत्पादन नहीं करेगी। इस प्रकार अधिकतम लाभ OQ_1 और OQ_5 मध्य उत्पादन स्तर रखने पर अर्थात् OQ_3 पर होगा।

फर्म के संतुलन का गणितीय निरूपण (Mathematical derivation of the equilibrium of the firm)

$\pi = R - C$ π = लाभ (Profit)

R = आगम (Revenue)

C = लागत (Cost)

$$\frac{\partial \pi}{\partial X} = \frac{\partial R}{\partial X} - \frac{\partial C}{\partial X} = 0$$

NMDC-222

... (i)

$$\frac{\partial R}{\partial X} = \frac{\partial C}{\partial X}$$

$$MR = MC$$

$$\frac{\partial^2 \pi}{\partial X^2} = \frac{\partial^2 R}{\partial X^2} - \frac{\partial^2 C}{\partial X^2}$$

$$\frac{\partial^2 R}{\partial X^2} - \frac{\partial^2 C}{\partial X^2} < 0$$

.. ii)

$$\frac{\partial^2 R}{\partial X^2} < \frac{\partial^2 C}{\partial X^2}$$

(Slope of MR) < (slope of MC)

$$0 < \frac{\partial^2 C}{\partial X^2}$$

MC curves must have a positive

slope, or the MC must be rising

बॉमल का विक्रय अधिकतम सिद्धान्त

(Baumol's Theory of Sales Revenue Maximisation)

बॉमल ने अमेरिका में फर्मों की जांच में पाया कि वे विक्रय अधिकतमीकरण के उद्देश्य का पालन करती है। आधुनिक निगमों में स्वामित्व से नियंत्रण के अलग हो जाने के कारण, लाभों की लागत पर भी, कंपनी के विक्रय को बढ़ाकर, प्रबंधक प्रतिष्ठा हेतु ऊंचे वेतन चाहते हैं। जब व्यवसायी प्रबंधकों से पूछा गया कि उनका व्यवसाय पिछले वर्ष कैसा रहा, तो उत्तर रहा—"हमारे विक्रय 3 मिलियन बढ़ गए हैं।" लाभ के ऊपर वे बात करते हैं तो केवल विचार के रूप में।

आगम या विक्रय अधिकतमकरण, न कि लाभ अधिकतमकरण,

NMDC-222

फर्मों के वास्तविक व्यवहार से मेल खाता है। अल्पकालीन एवं दीर्घकालीन लक्ष्य बिक्री अधिकतमकरण ही है।

- एक फर्म अपने बिक्री के आकार को बहुत महत्त्व देती है तथा बिक्री कम होने पर चिन्तित होती है। कारण बिक्री कम होने पर बैंक, ऋणदाता तथा पूंजी बाजार उसे वित्त प्रदान करने को तैयार नहीं होते। इसके अपने वितरक एवं व्यापारी इसकी वस्तुओं में दिलचस्पी लेना बंद कर देते हैं तथा उपभोक्ता भी इसकी वस्तुओं को नहीं खरीदते फलस्वरूप यह घाटे में जा रही होती है। परन्तु यदि फर्म की बिक्री अधिक हो तो फर्म का आकार बढ़ता है जिसका अभिप्राय उसके अधिक लाभ से लिया जाता है।

7.3.1 एकल वस्तु के साथ मॉडल (Model with Single Product)—

अधिकतम विक्रय से बॉमल का अभिप्राय अधिकतम कुल आगम है। इसका अर्थ उत्पादन की अधिक मात्राओं का विक्रय नहीं बल्कि मौद्रिक विक्रय (रुपये, डालर, आदि) में वृद्धि है। विक्रय अधिकतम लाभ के बिन्दु तक बढ़ सकता है जहाँ सीमान्त लागत और सीमान्त आगम बराबर होते हैं। परन्तु यदि इससे आगे बढ़ा दिया जाए तो लाभ कम करके मौद्रिक आय बढ़ सकती है परन्तु अल्पाधिकारी फर्म यह चाहती है

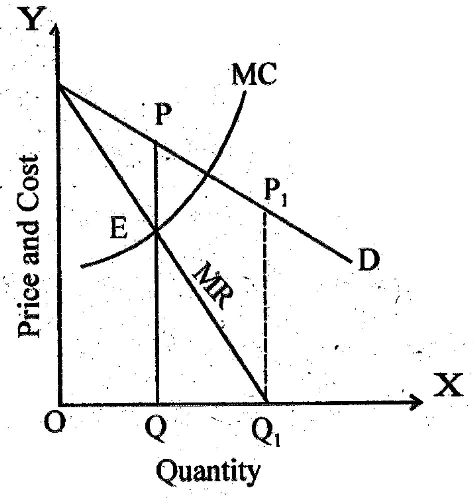

कि उसके मौद्रिक विक्रय बढ़ें

चाहे

उसे न्यूनतम लाभ हो। न्यूनतम लाभों से अभिप्राय अधिकतम लाभों से कम लाभ है। न्यूनतम लाभ फर्म की विक्रय अधिकतम करने की आवश्यकता द्वारा निर्धारित होते हैं और बिक्री में हो रही वृद्धि को कायम रखने के लिए हैं। यह भविष्य की बिक्री में रुपया लगाने के लिए भी आवश्यक होते हैं। फिर, वे फर्म की अन्य वित्तीय आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए तथा शेयर पूंजी पर लाभाँश देने के लिए भी जरूरी होते हैं। अतः न्यूनतम लाभ एक फर्म के अधिकतम लाभ के प्रतिबंध का कार्य करते हैं। बॉमल के अनुसार, "अधिकतम आगम केवल उस उत्पादन पर प्राप्त होगा जहाँ माँग की लोच इकाई के बराबर होगी अर्थात् यहाँ सीमान्त आगम शून्य होगा। यही शर्त है जो अधिकतम लाभ नियम की सीमान्त लागत सीमान्त आगम समान होने की शर्त का स्थान लेती है।" यह चित्र में दिखाया गया है जहाँ अधिकतम लाभ प्राप्त करके फर्म OQ मात्रा उत्पादित करती है। इस स्थिति में MC तथा MR वक्र E बिन्दु पर मिलते हैं। परन्तु विक्रय-अधिकतम करने वाली फर्म OQ मात्रा उत्पादित करेगी जहाँ MR वक्र शून्य है।

बॉमल के मॉडल को चित्र में दिखाया गया है। इस चित्र में TC कुल लागत वक्र है, TR कुल आगम वक्र, TP कुल लाभ वक्र तथा MP न्यूनतम लाभ अथवा लाभ प्रतिबंध रेखा है। फर्म TP वक्र के सबसे ऊँचे बिन्दु B के अनुरूप उत्पादन के OQ स्तर पर अपने लाभ को अधिकमत करती है। परन्तु फर्म का उद्देश्य अपने विक्रय को अधिकतम करना होता है, न कि लाभों को। इसका विक्रय-अधिकतम उत्पादन OK है, जहाँ TR वक्र के सबसे ऊँचे बिन्दु पर कुल आगम KL अधिकतम है। यह

NMDC-222

विक्रय अधिकतम उत्पादन OK, लाभ अधिकतम उत्पादन OQ से अधिक है परन्तु विक्रय अधिकतम, न्यूतम लाभ प्रतिबन्ध द्वारा बाध्य होती है (Sales maximisaton is subject to minimum profit constraint)। मान लीजिए कि न्यूनतम लाभ स्तर MP रेखा द्वारा दर्शाया गया है। OK उत्पादन विक्रय अधिकतम नहीं करेगा क्योंकि न्यूनतम लाभ OM की शर्त कुल लाभ KS द्वारा पूरी नही की जा रही है। विक्रय अधिकतम के लिए फर्म को उत्पादन का वह स्तर उत्पादित करना चाहिए जो केवल न्यूनतम लाभ की शर्त ही पूरा नहीं करता बल्कि इसके अनुरूप अधिकतम आगम भी प्रदान करता है। यह OD उत्पादन का स्तर है, जहाँ न्यूनतम लाभ DC (= OM) कुल आगम की DE मात्रा के कीमत DE/OD (कुल आगम/कुल उत्पादन) के अनुरूप है।

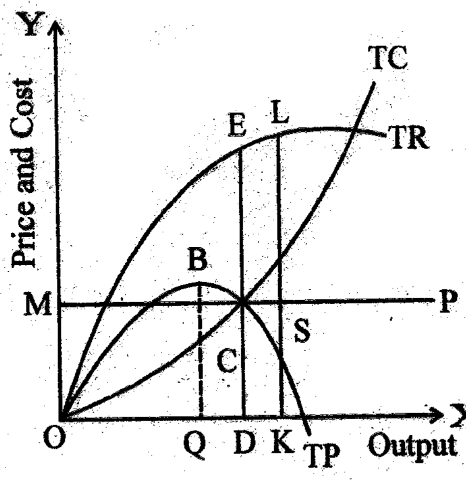

अल्पाधिकार का बॉमल मॉडल यह बताता है कि अधिकतम विक्रय-उत्पादन OD से अधिकतम लाभ-उत्पादन OQ थोड़ा होगा और कीमत अधिक होगी। विक्रय अधिकतम में कीमत कम होने का कारण यह है कि कुल आगम तथा कुल उत्पादन दोनों ही ऊँचे हैं, जबकि लाभ अधिकतम में कुल उत्पादन कुल आगम की अपेक्षा बहुत कम है। मान लीजिए कि चित्र में QB को TR के साथ रेखा द्वारा जोड़ दिया जाय। बॉमल के अनुसार, "यदि न्यूनतम लाभ के बिन्दु पर फर्म आवश्यक न्यूनतम से अधिक लाभ कमाती है, विक्रय अधिकतम करने वाले को अपनी कीमत कम करने तथा

भौतिक उत्पादन बढ़ाने से लाभ होगा।”

विज्ञापन के साथ मॉडल (Model with Advertising)— आगे बॉमल ने यह दर्शाया है कि विक्रय अधिकतमकरण के अन्तर्गत लाभ प्रतिबंध भी विज्ञापन में प्रभावशाली होता है और इस प्रकार फर्म के आगम को बढ़ाता है। चित्र में विज्ञापन पर व्यय में क्षैतिज अक्ष पर और कुल आगम, लागतें और लाभ अनुलम्ब अक्ष पर लिए गये हैं। TR कुल आगम वक्र है। 45° रेखा AC विज्ञापन लागत वक्र है। OC के बराबर अन्य लागतों की एक स्थिर राशि को AC वक्र में जोड़ देने से हमें कुल लाभ वक्र TP प्राप्त होता है, जो TR वक्र और TC वक्र के बीच का अन्तर है। MP न्यूनतम लाभ प्रतिबंध रेखा है। लाभ अधिकतमकरण फर्म OQ विज्ञापन पर खर्च करेगी और इसका कुल आगम OS(=QA) होगा। दूसरी ओर, लाभ प्रतिबंध MP दिया होने पर, विक्रय अधिकतमकरण फर्म OD विज्ञापन पर व्यय करेगी और कुल आगम OT(= DE) प्राप्त करेगी। इस प्रकार, विक्रय अधिकतमकरण फर्म विज्ञापन पर लाभ-अधिकतमकरण फर्म से अधिक व्यय करती है (OD-OQ), और उससे अधिक आगम प्राप्त करती है जो (DE - QA) के बराबर है। लाभ प्रतिबंध स्तर MP की शर्त दोनों ही स्थितियों में पूरी होती है। अतः विक्रय अधिकतम करने वाली फर्म को अपने विज्ञापन व्यय को बढ़ाने में सदैव लाभ होगा जब तक कि लाभ प्रतिबंध उसे रोक नहीं देता है।

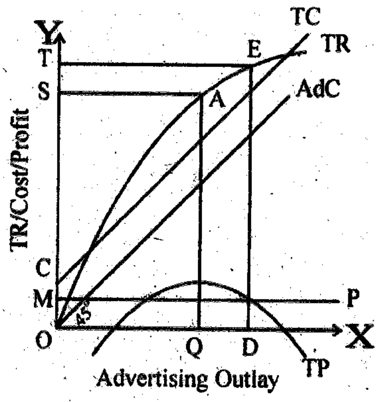

NMDC-222

7.3.2 स्थिर लागतों के साथ मॉडल (Model with Fixed Costs)—

बोमल की विक्रय-अधिकतमकरण फर्म लाभ-अधिकतमकरण फर्म से अधिक वास्तविक है, क्योंकि यह स्थिर लागतों में परिवर्तनों से प्रभावित होती है, जैसा कि वास्तविक व्यवसायिक फर्मों के बारे में पाया जाता है। नव-क्लासिकी लाभ-अधिकतमकरण सिद्धांत यह मानता है कि अल्पकाल में स्थिर लागतों में परिवर्तन से उत्पादन प्रभावित नहीं होता है। उदाहरणार्थ, ऐसी फर्म पर एकमुश्त (Iumpsum) कर लगाने से उसकी कीमत और उत्पादन प्रभावित नहीं होंगे।

बल्कि यह एकमुश्त कर का सारा भार उठा लेगी। परन्तु बोमल यह बल देकर कहते है कि यदि एकमुश्त कर लगाने से स्थिर लागतें अल्पकाल में बढ़ती हैं तो विक्रय अधिकतमकरण फर्म अपनी वस्तु की कीमत बढ़ाएगी और उत्पादन कम कर देगी। इसे चित्र में समझाया

गया है जहां TP फर्म का कुल लाभ वक्र है। न्यूनतम लाभ प्रतिबंध रेखा

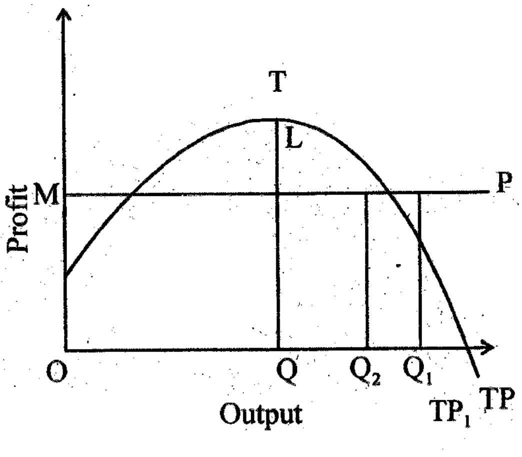

MP है जो यह व्यक्त करती है कि OQ_1 उत्पादन बेचकर फर्म को न्यूनतम लाभ OM अवश्य चाहिए। मान लीजिए कि सरकार LT राशि के बराबर फर्म पर एकमुश्त कर लगाती है, जिससे इसका लाभ वक्र TP नीचे की ओर

TP_1 पर चला जाता है और फर्म अपना उत्पादन OQ_1 से कम कर OQ_2 कर देती है। फर्म अपनी वस्तु की कीमत बढ़ा देगी और

NMDC-222

कर को उपभोक्ताओं को हस्तांतरित कर देगी लेकिन एकमुश्त कर के कारण स्थिर लागतें बढ़ने

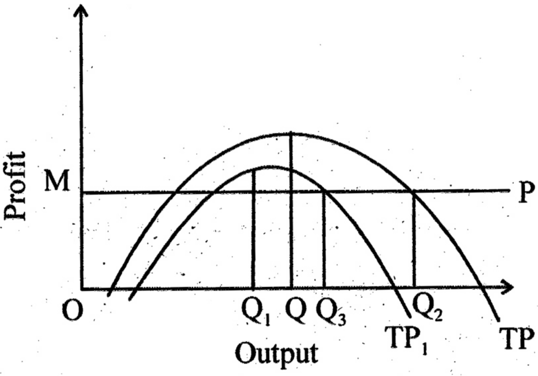

से लाभ अधिकतमकरण उत्पादन OQ में कोई परिवर्तन नहीं होता है।

दूसरी ओर, बिक्री कर जैसा विशिष्ट कर (specific tax) लगाने से लाभ वक्र नीचे बाईं ओर शिफ्ट कर जाएगा,

जैसा कि चित्र में दर्शाया गया है। लाभ प्रतिबंध रेखा MP दी होने पर विक्रय अधिकतमकरण फर्म अपने उत्पादन को OQ_2 से कम कर OQ_3 कर देगी। यह कीमत बढ़ा देगी और कर को उपभोक्ताओं को हस्तांतरित कर देगी। लाभ-अधिकतमकरण फर्म भी अपने उत्पादन को OQ से कम करके OQ_1 कर देगी और उसकी कीमत बढ़ा देगी। परन्तु विक्रय अधिकतमकरण फर्म के उत्पादन में कमी लाभ-अधिकतमकरण फर्म की अपेक्षा अधिक होगी, $Q_2Q_3 > QQ_1$।

7.3.3. बहु वस्तु मॉडल (Model with Multiproducts)—

बॉमल ने दर्शाया है कि जहां फर्में बहुत वस्तुएं उत्पादित करती हैं, विक्रय अधिकतमकरण फर्म अलाभदायक आगतों और निर्गतों से बच सकती है। इसे चित्र में व्यक्त किया गया है, जहां वस्तु X को क्षैतिज अक्ष पर और वस्तु Y को अनुलम्ब अक्ष पर मापा गया है। PP_1 वक्र X और Y के सभी

संयोगों को व्यक्त करता है जो एक स्थिर व्यय अथवा कुल लागतों से उत्पादित की जा सकती है। वक्र R_1, R_2 और R_3 सम-आगम वक्र हैं जो प्रत्येक वक्र पर X और Y के

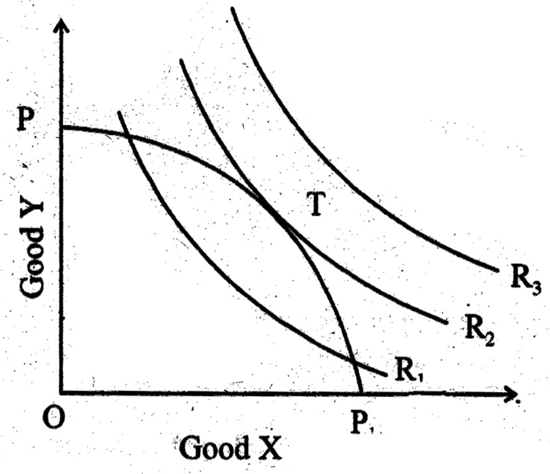

सभी संयोगों से एक स्थिर आगम देते हैं। PP_1 और R_2 वक्रों का स्पर्श बिन्दु T लाभ अधिकतमकरण का बिन्दु है। यही आगम अधिकतमकरण का बिन्दुं है क्योंकि यह उच्चतम प्राप्य सम-आगम वक्र R_2 पर स्थित है जो PP_1 द्वारा व्यक्त किये हुए व्यय के साथ मेल खाता है। इस प्रकार, दोनों प्रकार की फर्में एक ही परिणाम देती हैं जब वे एक जैसी आगतें समान मात्राओं में प्रयोग करती हैं और उन्हें बिल्कुल एक जैसे ही ढंग से नियुक्त करती हैं।

लेकिन बॉमल के अनुसार, विक्रय अधिकतमकरण फर्म अपने आगम को बढ़ाने के लिए लाभों के अधिकतम स्तर और लाभों के न्यूनतम स्तर (अर्थात् लाभ प्रतिबंध) के बीच अन्तर को "त्यागने-योग्य लाभों का फंड" कहता है। "अतः प्रत्येक समय फर्म अपने कुल आगम को बढ़ाने के लिए किसी वस्तु के उत्पादन को बढ़ाती है, तो फर्म को त्यागने-योग्य लाभों की अपनी निधियों को अधिक मात्रा में इस्तेमाल करना आवश्यक होता है। इस त्यागने-योग्य लाभों के फंड को विभिन्न निर्मातों, बाजारों, आगतों आदि के बीच इस तरह अवश्य आवंटित किया जाना चाहिए, जिससे कुल डॉलर विक्रय अधिकतम होते हैं। यह संबंध संकेत करता है कि विक्रय

NMDC-222

अधिकतमकरण फर्म में भी सापेक्षतया अलाभदायक आगतों और निगतों से बचना चाहिए, चाहे कुल व्यय और कुल आगम का स्तर कुछ भी हो।"

7.4 कमियाँ

बॉमल के विक्रय-अधिकतमकरण मॉडल की कुछ कमियां हैं :-

1. **रोसनबर्ग (Rosenberg)** ने बॉमल द्वारा विक्रय अधिकतम के लिए लाभ प्रतिबन्ध की आलोचना की है। रोसनबर्ग ने सिद्ध किया है कि एक फर्म के लाभ प्रतिबन्ध को निश्चित रूप से दिखाना कठिन है। इसे रोसनबर्ग के कुछ परिवर्तित चित्र द्वारा दिखाया है। अनुलम्ब अक्ष पर लाभ लिए गए हैं। R लाभ प्रतिबन्ध है। लाभ प्रतिबन्ध से नीचे कोई भी दो संयोगों में से अधिक लाभ वाला चुना

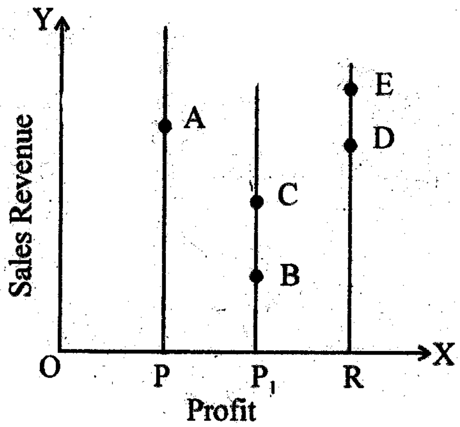

जाएगा। उदाहरण के तौर पर, लाभ स्तर P पर A की अपेक्षा लाभ स्तर P_1 पर B को अधिमान दिया जाएगा। फिर, एक ही लाभ रेखा P_1 पर दो संयोगों B और C में से B की अपेक्षा C को अधिमान दिया जाएगा क्योंकि C पर बिक्री अधिक होती है। इसी प्रकार, प्रतिबन्ध रेखा R पर D तथा E बिन्दुओं में से E को D की अपेक्षा अधिमान दिया जाएगा जो अधिक बिक्री का स्तर है। अतः बॉमल के मॉडल में विक्रय अधिकतम तथा न्यूनतम लाभ संयोग को चुनना बहुत कठिन है। जब तक लाभ प्रतिबन्ध

NMDC-222

से अधिक होते है वे सदैव बिक्री को बढ़ाने के लिए विज्ञापन पर खर्च कर दिये जाएँगे।

2. **शेफर्ड (Shepherd)** के अनुसार एक अल्पाधिकार फर्म को किंकित मांगवक्र का सामना करना पड़ता है। यदि किंक काफी बड़ा हो तो कुल आगम और लाभ एक ही उत्पादन स्तर पर अधिकतम होंगे। इसलिए, विक्रय अधिकतम करने वाली और लाभ अधिकतम करने वाली दोनों फर्में उत्पादन के भिन्न स्तरों पर उत्पादित नहीं कर रही होंगी। परन्तु हाकिन्स ने दर्शाया है कि यदि फर्म किसी भी प्रकार की गैर-कीमत प्रतियोगिता जैसे अच्छी पैकिंग, फ्री-सर्विस, विज्ञापन, आदि में व्यस्त होती है तो शेफर्ड के निष्कर्ष अमान्य हो जाते हैं। उदाहरणार्थ, जब विक्रय-अधिकतमकरण फर्म विज्ञापन पर अधिक खर्च करती है, तो उसका उत्पादन लाभ-अधिकतमकरण फर्म से अधिक होगा। ऐसा इसलिए कि विक्रय-अधिकतमकरण फर्म के मांग वक्र का किंक लाभ-अधिकतमकरण फर्म के किंक की दाईं ओर होगा।

3. **हाकिन्स** ने यह दर्शाया है कि बॉमल का निष्कर्ष कि एक विक्रय अधिकतमकर्त्ता एक लाभ अधिकतमकर्त्ता से सामान्तया अधिक उत्पादित और विज्ञापित करेगा, अमान्य है। हाकिन्स के अनुसार, एक विक्रय अधिकतमकर्त्ता अधिक, कम या समान उत्पादन और अधिक, कम अथवा समान विज्ञापन बजट चुन सकता है। यह कीमत कटौतियों पर निर्भर न होकर मांग की विज्ञापन के साथ अनुक्रियाशीलता (responsiveness) पर निर्भर करता है। यह निष्कर्ष फर्मों द्वारा केवल एक वस्तु अथवा वस्तुओं के एक ग्रुप के उत्पादन के लिए है।

4. बहु-वस्तुओं के लिए, बॉमल तर्क देता है कि आगम और लाभ अधिकतमकरण के समान परिणाम होते हैं। परन्तु विलियमसन

NMDC-222

ने यह दर्शाया है कि विक्रय अधिकतमकरण के लाभ अधिकतमकरण से परिणाम भिन्न होते हैं।

5. बॉमल के मॉडल की एक अन्य त्रुटि यह है कि यह अल्पाधिकारी फर्मों की कीमतों की परस्पर निर्भरता की उपेक्षा करता है।

6. **कोटसियानिस** के अनुसार, बॉमल का यह मॉडल अवलोकित बाजार अवस्थाओं, जिनमें कीमत को काफी समय अवधियों के लिए बेलोच मांग की रेंज में रखा जाता है, की व्याख्या करने में सफल होता है।

7. यह मॉडल न केवल वास्तविक प्रतियोगिता बल्कि विरोधी अल्पाधिकारात्मक फर्मों से संभावित प्रतियोगिता के भय की उपेक्षा करता है।

8. कोटसियानिस के अनुसार, मॉडल यह नहीं दर्शाता है कि एक उद्योग जिसमें सभी फर्में विक्रय अधिकतमकर्ता हैं, कैसे संतुलन प्राप्त करेगा। बोमल फर्म और उद्योग के बीच संबंध स्थापित नहीं करता है।

इन कमियों के बावजूद , इसमें कोई संशय नहीं कि विक्रय अधिकतमकरण आधुनिक व्यवसायिक विश्व में फर्मों का एक महत्वपूर्ण उद्देश्य है।

7.5 सारांश

किसी फर्म का संचालन अनेक सिद्धान्तों के आधार पर किया जाता है, जिनमें लाभ अधिकतमकरण एवं विक्रय अधिकतमकरण प्रमुख सिद्धान्त के रूप में जाने जाते हैं। ये सिद्धान्त अनेक मान्यताओं पर आधारित हैं। पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत लाभ अधिकतमकरण की स्थिति में औसत आगम तथा सीमान्त आगम वक्र समान होते हैं। इसी प्रकार एकाधिकार की स्थिति में MR = MC होता है। बॉमल ने अमेरिका में फर्मों की जांच में पाया कि वे विक्रय अधिकतमीकरण से सम्बन्धित अनेक माडलों का प्रयोग करते हैं जिसमें एकल वस्तु का मॉडल, विज्ञापन के साथ

मॉडल, स्थिर लागतों के साथ मॉडल तथा बहु-वस्तु मॉडल
बामल द्वारा प्रस्तुत मॉडल में भी अनेक कमियाँ पायी जाती

7.6 बोध प्रश्न

1. लाभ अधिकतमकरण से आप क्या समझते हैं तथा इस
मान्यताएँ बताइये।
2. पूर्ण प्रतियोगिता एवं एकाधिकार में लाभ अधिकतमकरण
समझाइये।
3. बॉमल का विक्रय अधिकतमकरण सिद्धान्त को बताइये।

7.7 सन्दर्भ ग्रन्थ

- शर्मा एम0एल, प्रबंधकीय अर्थशास्त्र, साहित्य भवन, आग
2004
- पन्त जे0सी0 व्यष्टि अर्थशास्त्र, साहित्य भवन, आगरा 20
- जे0सी0 पंत, व्यष्टि अर्थशास्त्र, साहित्य भवन पब्लिकेशन
आगरा, 2005
- Ahuja, H.L.; Advanced Economic Theory, S. Chand & Company I
2001.
- एम0 एल0 झिंगन, उच्च आर्थिक सिद्धान्त, वृंदा पब्लिकेश
प्रा0 लि0, 1947

NMDC-222

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय

M.Com-106

प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र

Managerial Economics

खण्ड

2

उत्पादन फलन

इकाई -1	उत्पादन फलन एवं प्रतिफल के नियम	5
इकाई -2	न्यूनतम लागत संयोग	19
इकाई -3	लागत के सिद्धान्त (Cost Concepts)	28
इकाई -4	लागत वर्गीकरण (Cost Classification)	34
इकाई -5	अनुमाप की मितव्ययिता और अमितव्ययिता	46
इकाई -6	लागत प्रतिफल सम्बन्ध	54

परामर्श-समिति

प्रो0 नागेश्वर राव	कुलपति - अध्यक्ष
डॉ0 हरीशचन्द्र जायसवाल	वरिष्ठ परामर्शदाता - कार्यक्रम संयोजक
श्री एम0 एल0 कनौजिया	कुलसचिव - सचिव

संरचनात्मक सम्पादन

डॉ0 मंजूलिका श्रीवास्तव	निदेशक, दूरस्थ शिक्षा परिषद्, नई दिल्ली

विषयगत सम्पादन

प्रो0 मूल मोतिहार	प्रोफेसर, मोनिरबा, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

लेखक

डॉ0 नागेन्द्र यादव,	एसोसिएट प्रोफेसर, प्रबन्धन अध्ययन विद्या शाखा, उ0 प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

© उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

सर्वाधिकार सुरक्षित। इस पाठ्य-सामग्री का कोई भी अंश उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय की लिखित अनुमति लिए बिना, मिमियोग्राफ अथवा किसी अन्य साधन से पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

खण्ड- 2 परिचय

इस खण्ड में उत्पादन फलन की व्याख्या कुल छः इकाइयों के द्वारा की गयी है। प्रथम इकाई में उत्पादन फलन एवं प्रतिफल के नियमों की व्याख्या की गयी है। प्रतिफल के नियमों को पैमाने के स्थिर प्रतिफल, वृद्धिमान प्रतिफल एवं ह्रासमान प्रतिफल के द्वारा समझाया गया है।

द्वितीय इकाई में न्यूनतम लागत संयोग को लागत व्यय की एक निर्दिष्ट मात्रा से अधिकतम उत्पादन एवं दो पदार्थों के अनुकूलतम संयोग के द्वारा समझाया गया है।

तृतीय इकाई में लागत के विभिन्न सिद्धान्तों की चर्चा की गयी है तथा इसमें उत्पादन मात्रा एवं लागतें, उत्पादन साधनों की उत्पादकताएं एवं लागतें तथा तकनीक एवं लागतों के द्वारा समझाने का प्रयत्न किया गया है।

चतुर्थ इकाई में लागतों के विभिन्न प्रकारों को लागत के वर्गीकरण के द्वारा समझाने का प्रयत्न किया है।

पंचम इकाई में अनुमान की मितव्ययिता एवं अमितव्ययिता की चर्चा की गयी है। जबकि षष्ठम इकाई में लागत प्रतिफल सम्बन्धों को स्थिर लागत एवं उत्पादन, कुल लागत एवं उत्पादन जैसे लघुकालीन लागत प्रतिफल सम्बन्धों के द्वारा तथा दीर्घकालीन लागत उत्पादन सम्बंधों को तथा इसके मूल्यांकन को लेखा विधि, अभिव्यान्त्रिक विधि एवं इकोनोमेट्रिक विधि के द्वारा समझाने का प्रयत्न किया गया है।

NMDC-222

इकाई –01 उत्पादन फलन एवं प्रतिफल के नियम

इकाई की रूपरेखा

1.0 उद्देश्य

1.1 प्रस्तावना

1.2 आइसोक्वाण्ट

1.3 उत्पादन फलन

1.4 प्रतिफल के नियम

1.4.1 पैमाने के स्थिर प्रतिफल

1.4.2 पैमाने के वृद्धिमान प्रतिफल

1.4.3 पैमाने के ह्रासमान प्रतिफल

1.5 सारांश

1.6 बोध प्रश्न

1.7 अन्य चयनित पाठन

1.8 सन्दर्भ पुस्तकें

1.0 उद्देश्य

इस इकाई के पठन के पश्चात शिक्षार्थी निम्नांकित उद्देश्यों की पूर्ति करने में सक्षम होंगे –

– उत्पाद फलन के विभिन्न कारकों को समझने में,

– आइसोक्वाण्ट के द्वारा विभिन्न संयोजनों के परीक्षण में

– प्रतिफल के विभिन्न नियमों का विश्लेषण करने में

1.1 प्रस्तावना (Introduction)

उत्पाद फलन किसी भी फर्म के द्वारा उत्पाद एवं सेवाओं के उत्पादन की प्रक्रिया में आने वाली लागत निर्ण लेने की क्षमता के लिए महत्वपूर्ण घटक होते हैं। कुल लागत एवं कुल आय मिलाकर एक फर्म के लाभ को सुनिश्चित करते हैं। अपने लाभांश को बनाने के लिए कोई भी फर्म उत्पादन में आने वाली लागत को कम करना चाहती है तथा अपनी आय को बढ़ाना चाहती है। इस दशा को पाने के लिए प्रबन्धक सबसे अनुकूलतम स्तर तक उत्पादन करना चाहते हैं उत्पादकता को बढ़ाने का प्रयास करते हैं, न्यूनतम लागत संयोजन

के घटकों का प्रयोग करते हैं तथा संगठन की प्रभाविकता को बढ़ाने का प्रयास करते हैं। यदि किसी उत्पाद को बढ़ाने में कोई अतिरिक्त लागत नहीं आती है तो फर्म अपने उत्पादन की वृद्धि करके सदैव ही लाभ उठाना चाहेगी। परन्तु यदि लागत निषेधकारी है अर्थात दाम इतने ऊँचे हैं कि वस्तु खरीदी ही न जा सके तो उत्पादन करना लाभकारी नहीं समझेगी। इसी प्रकार अन्य परिस्थितियों में भी उत्पादन की लागत, उत्पाद के अन्य घटकों पर निर्भर करेगी।

यह उत्पादन की लागत ही होती है जो किसी उत्पाद के मूल्य को निर्धारित करने का आधार देती है। उत्पादन की लागत के द्वारा ही कोई उत्पादक अपने संभावित उपभोक्ताओं के क्रय शक्ति के अनुसार मूल्य निर्धारण कर उनके अनुसार उत्पाद की स्वीकृति अथवा अस्वीकृति को बना सकता है। इस प्रकार की स्थितियों के लिए कोई सीध प्रक्रिया एवं नियम नहीं है अपितु हमें लागत के सिद्धान्तों के तथा उत्पादन के फलन को जानने की आवश्यकता होगी। आइये हम पहले उत्पादन के फलन को जानने का प्रयास करते हैं।

कोई उत्पादन फलन किसी वस्तु के उत्पादन एवं लागत के मध्य तकनीकी एंव अभियांत्रिक सम्बन्ध को प्रदर्शित करता है अर्थात किसी वस्तु के उत्पादन के घटकों एवं लागत के घटकों पर तकनीकी एवं अभियांत्रिक कारकों का क्या प्रभाव हो सकता है जो कि उत्पादन की लागत एवं कम्पनी के लाभांश को प्रभावित कर सकते हैं। उदाहरणार्थ परम्परागत आर्थिक सिद्धान्त के अनुसार उत्पादन के चार प्रमुख लागत घटक होते हैं: भूमि, श्रम, पूॅंजी एवं संगठन या प्रबन्धन। साथ ही तकनीक भी उत्पादन के वृद्धि को प्रभावित करती है और इसके उत्पादन का अतिरिक्त निर्धारक कहा गया है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि किसी भी कम्पनी या उद्योग का उत्पादन भूमि, श्रम, पूँजी, प्रबन्धन एवं तकनीकी स्तर के मात्राओं का एक धनात्मक फलन है जो कि उत्पादन की प्रक्रिया में लगाया जाता है। इस को हम निम्न समीकरण के द्वारा समझ सकते हैं ।

$$X = f\ (Ld\ L\ K\ M\ T)$$

$$f_1, f_2, f_3, f_4, > 0$$

जहॉ $X =$ किसी वस्तु X का उत्पादन (output)

$Ld =$ X के उत्पादन में लगी भूमि

$L =$ X के उत्पादन में लगा श्रम

K = X के उत्पादन में लगी पूँजी

M = X के उत्पादन में लगा प्रबन्धन

T = X के उत्पादन में लगी तकनीकी

f = अनुल्लिखित फलन (Unspecified function)

f_1 = f के सापेक्ष 1 के स्वतंत्र घटक का आंशिक फलन

उपर्युक्त फलन एक साधारण उत्पादन फलन को दर्शाता है। किसी विशेष परिस्थिति में एक अथवा एक से अधिक लागत का गुणांक इतना अधिक महत्वपूर्ण नहीं हो सकता है एवं एक उत्पाद से दूसरे उत्पाद के सापेक्ष लागत के विभिन्न गुणांक को अथवा अवयवों को महत्व भिन्न होता हैं। उदाहरणार्थ कृषि योग्य उत्पादन में भूमि अधिक होना सबसे अधिक महत्वपूर्ण होता है जबकि किसी उत्पाद के निर्माण में भूमि का होना एक कम आवश्यकता का विषय होता है। इसी प्रकार खाद्य फसलों के उत्पादन में यदि अच्छी गुणवत्ता का खाद एवं बीजों का प्रयोग करें तो उत्पादन को बढ़ाया जा सकता हैं परन्तु एक सीमा के पश्चात हमें भूमि को अधिक आवश्यकता होगी जिससे कि उक्त सीमा के बाद भी अधिक अन्न का उत्पादन किया जा सके। इसी के सापेक्ष यदि हम किसी अन्य वस्तु उदाहरणार्थ कार, साइकिल की उत्पादन को बढ़ाना चाहें तो हमें उत्पादन के अनुपात में अतिरिक्त भूमि की आवश्यकता नहीं होगी वरन अच्छी तकनीकि, अधिक श्रम आदि की आवश्यकता होगी। इसी प्रकार यदि हम उपर्युक्त उदाहरणों में उत्पादन लागत (Cost of Production) में भूमि की भूमिका देखें तो फसलों की उत्पादन वृद्धि में भूमि की लागत को अधिक बढ़ाएगी जबकि कार अथवा मोटर साइकिल के अधिक उत्पादन में भूमि की लागत, कुल उत्पादन लागत (Cost of Production) को कम प्रभावित करेगी। इसी प्रकार कार एवं मोटर साइकिल के उत्पादन में तकनीकी एवं प्रबन्धन की अधिक महत्वपूर्ण भूमिका हो सकती हैं। यदि हम उत्पादन के निर्णय की समस्याओं की व्याख्या करें तो उत्पादन के लिए केवल दो लागत को लेकर समझना आसान होगा। यदि श्रम एवं पूँजी दो महत्वपूर्ण लागत संघटक में तो उत्पादन फलन निम्न प्रकार से प्रदर्शित किया जा सकता है।

$$X = f(L K)$$

उपर्युक्त फलन में मुख्यतः 3 घटक हैं : वस्तु का उत्पादन (Output of commodity) X, श्रम की इकाइयॉ (L) तथा पूँजी की इकाइयां (K) x को किसी दिये गये मूल्य पर L (श्रम) एवं K (पूंजी) के विभिन्न वैकल्पिक

आयोजन हो सकते हैं। L एवं K के संयोजन x से भिन्न होंगे। साधारणतया श्रम एवं पूँजी दोनों ही किसी वस्तु के उत्पादन में महत्वपूर्ण होते हैं। तथा एक दूसरे के स्थानापन्न होते हैं। इस प्रकार कोई भी उत्पादक दोनों ही लागत घटकों को उत्पादन हेतु खरीदेगा या भाड़े पर लेना एवं उनको विभिन्न सम्भावित संयोजकों में से एक संयोजन के रूप प्रयोग करेंगा। वैकल्पिक संयोजनों के घटकों का प्रयोग किसी उत्पादन के स्तर पर करने पर इस प्रकार होता है कि यदि एक लागत घटक (Input factor) का प्रयोग बढ़ता है तो दूसरे लागत धटक (input factor) का प्रयोग कम हो जाता है। यदि हम इसका एक उदाहरण लेना चाहें तो यदि कोई व्यवसायी जूते बनवाना चाहता है तो उसे मोची (Cobber), चमड़ा, धागा, सिलाई यन्त्र, इत्यादि एवं कुछ पूँजी की आवश्यकता होगी। किसी एक दी गयी मात्रा मे जूते बनवाने के लिए उपर्युक्त उल्लिखित लागत घटक, श्रमिक (मोची), सामान (चमड़ा, सिलाई यन्त्र आदि) एवं पूँजी को विभिन्न संयोजन में प्रयोग करना होगा जो कि एक सीमा तक एक दूसरे से स्थानापन्न हैं। उदाहरणार्थ यदि एक मोची के पास बहुत से सीमित एवं अप्रभावी सिलाई संयंत्र हो तो एक दिन वह मोची मुश्किल से एक जोड़ी जूता बना पायेगा जबकि दूसरा मोची जिसके पास अधिक प्रभावी एवं अच्छे संयंत्र हो तो वह दो जोड़ी या अधिक जूतों की जोड़ी बना सकता है। निम्न तालिका में हम श्रम एवं पूंजी के विभिन्न वैकल्पिक संयोजनों को एक दिन में बने जूतों की संख्या के द्वारा समझने का प्रयत्न करेंगें।

लागत उत्पादन सम्बन्ध (Input-Output relationship)

X=2		X = 5		X =9		X=12		X=14	
L	K	L	K	L	K	L	K	L	K
1	20	2	20	3	20	4	20	5	20
2	12	3	14	4	13	5	15	6	17
3	8	4	10	5	10	6	12	7	15
4	6	5	7	6	8	7	10	8	13
5	4	6	5	7	6	8	8	9	11
6	3	7	4	8	5	9	7	10	10

1.3 आइसोक्वाण्ट (Isoquant)

´एक आइसोक्वाण्ट परिभाषा के रूप में वह स्थित है जहॉ श्रम एवं पूॅजी के सभी संयोजन समान उत्पादन को दर्शाते हैं। उपर्युक्त दी गयी तालिका के उदाहरण में व्यापारी 1 मोची एवं 20 इकाई पूंजी को लगा सकता है, 2 मोची 12 इकाई पूंजी लगा सकता है, 3 मोची तथा 8 इकाई पूंजी को लगा सकता है। अथवा 6 मोची एवं 3 इकाई पूंजी को 2 जोड़ी जूते बनाने में लगा सकता है। इसी प्रकार जब व्यापारी का उद्देश्य 5 जोड़ी जूते बनाने का है तो 2 मोची तथा 20 इकाई पूंजी लगाता है या 3 मोची 14 इकाई पूंजी लगाता हैं । यदि तालिका में दिये गये संयोजनों को इस वक्र अथवा ग्राफ के द्वारा समझें तो हमें आइसोक्वाण्ट वक्र प्राप्त होगें।

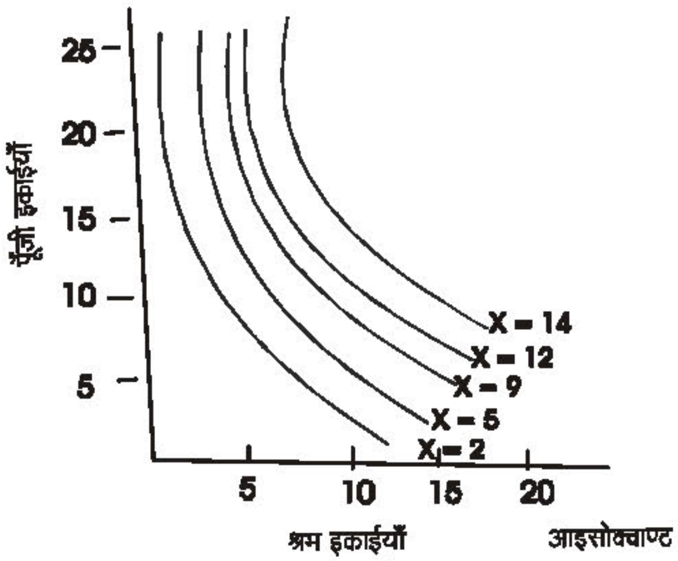

चित्र – 1 आइसोक्वाण्ट

आइसोक्वाण्ट या आइसो प्रोडक्ट के परिवार के वक्र श्रम एवं पूंजी के सभी सम्भावित संयोजनों को बनाते हैं जिनका प्रयोग किसी वस्तु के विभिन्न उत्पादन स्तरों पर उत्पादित करने में किया जा सकता है। इस प्रकार से ये उत्पादन फलन के ज्यामितीय रेखांकन को प्रदर्शित करते हैं। उपर्युक्त वक्र का तालिका में दिये गये उदाहरण की सहायता से यदि हम अध्ययन करेंगे तो हमें ज्ञात होगा कि –

(क) ये वक्र गिर रहे हैं ।

(ख) आइसोक्वाण्ट जितना उच्च होगा उतना ही उत्पादन (output) भी उच्च होगा।

(ग) ये वक्र आपस में एक दूसरे को काटते नही हैं।

एक आइसोक्वाण्ट वक्र गिर रहा है क्योंकि न तो यह बढ़ रहा है और न ही स्थिर अथवा अटल होता है। एक ऊपर बढ़ते हुए आइसोक्वाण्ट का तात्पर्य ये है कि लागत के तत्व उदाहरणार्थ श्रम एवं पूंजी के बढ़ने पर आउटपुट बढ़ता नहीं है जो कि वास्तविक रूप से सत्य नहीं होता है। एक क्षैतिज (Horizontal) अथवा स्तम्भ (Vertical) आइसोक्वाण्ट का तात्पर्य यह होता है कि उत्पादन (output) किसी भी एक लागत (input) मे किये गये बदलाव से प्रभावित नहीं होता है जबकि अन्य लागत (input) तत्व समान रहें। ये भी सत्य नहीं हो सकता है क्योंकि लागत (input) के किसी भी एक अवयव में वृद्धि करने से उत्पादन (output) में वृद्धि अवश्य ही होती है जबकि अन्य लागत अवयव (Input factors) समान हों। इसी कारण से उच्चतर आइसोक्वाण्ट उच्च उत्पादन (Output) स्तर को दर्शाते है।

एक आइसोक्वाण्ट दूसरे आइसोक्वाण्ट को परस्पर नहीं काटता है। चूँकि यदि ऐसा होता तो इसका तात्पर्य यह होता कि समान लागत अवयवों के प्रयोग से दो भिन्न उत्पादन स्तर प्राप्त हो सकते हैं। परन्तु यह संभव नहीं हैं।

आइसोक्वाण्ट वक्र नीचे से उत्तल होते है क्योंकि श्रम का पूंजी से स्थानापन्न करना अत्यन्त ही कठिन होता है। चूँकि अधिक श्रम के लिए अधिक पूँजी की आवश्यकता होती है। हमारे द्वारा पूर्व में लिए गये उदाहरण में आइसोक्वाण्ट x=2 पर ये नीचे से उत्तल है क्योंकि जब श्रम को 1 से 2 बढ़ा दिया गया है तब पूँजी इकाई 20 से घटकर 12 इकाई रह गयी है।। अर्थात 8 इकाई पूंजी की गिरावट होती है। पुनः जब श्रम इकाईयों को बढ़ाकर 3 यूनिट कर दिया गया है तब पुनः पूंजी इकाई घटकर 8 हो जाती है अर्थात 4 और पूंजी की गिरावट होती है । इस प्रकार हम देखते हैं कि स्थानापन्न की दर 1 इकाई श्रम पर 8 इकाई पूंजी की है तथा बाद में अगली 1 इकाई श्रम पर यह 4 इकाई पूंजी की है। यह इसलिए है क्योंकि स्थानापन्न होने में बहुत ही ज्यादा कठिनाई होती है।

यदि श्रम एवं पूंजी पूर्ण रूप से एक दूसरे के स्थानापन्न होते तो आइसोक्वाण्ट वक्र सीधी रेखाओं के रूप में नीचे गिरते हुए प्रतीत होते।

NMDC-222

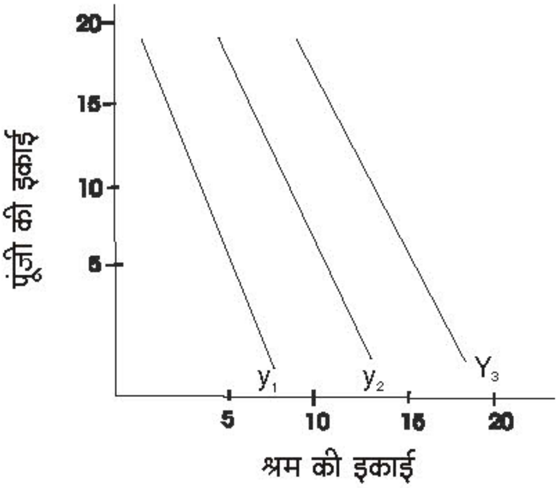

चित्र – 2 पूर्ण स्थानापन्न की स्थिति में आइसोक्वाण्ट

(Isoquants when factors are perfect substitute)

यदि हम इसके दूसरी ओर देखें तो यदि उत्पादन के एक लागत घटक (Input factor) को दूसरे लागत घटक (Input factor) से स्थानापन्न नहीं कर पाते हैं तो आइसोक्वाण्ट आयताकार रूप में प्रदर्शित होता हैं ।

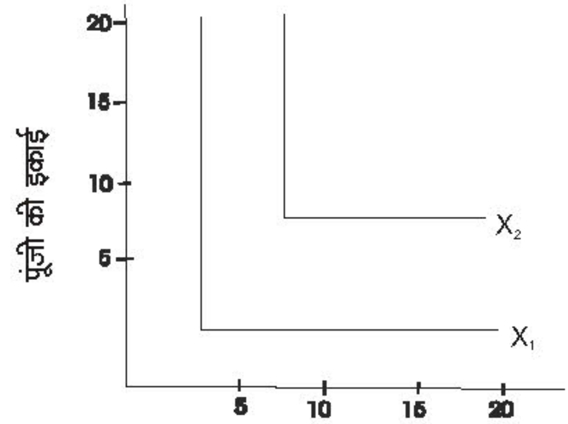

चित्र – 3 घटकों के पूर्ण स्थानापन्न न होने की स्थिति में आइसोक्वाण्ट

(Isoquants when factors are perfect non substitute)

चूॅकि श्रम एवं पूंजी पूर्णरूप से स्थानापन्न (Substitute) नहीं हैं तथा उनको स्थानापन्न करने की क्षमता भी अधिक से अधिक मुश्किल हो जाती है। अत : आइसोक्वाण्ट नीचे से समतल है अतः आयताकार रूप में होते हैं।

1.3 उत्पादन फलन (Production function) का प्रबन्धकीय उपयोग

उत्पादन फलन के विभिन्न प्रबन्धकीय उपयोग हैं। इनका प्रयोग किसी दिये हुए आउटपुट पर हम न्यूनतम लागत संयोजन (Least cost combination) को जानने में कर सकते हैं जिनका अध्ययन हम आगे की

NMDC-222

इकाइयों में करेंगे। इसके अतिरिक्त हम किसी दी गयी लागत पर अधिकतम उत्पादन लागत संयोजन (Maximum output-input combination) को जानने में भी कर सकते हैं। उत्पादन फलन के द्वारा विभिन्न लागत संघटकों के संभाव्य संयोजनों के प्रयोग से निर्णय क्षमता को बढ़ाने में प्रयोग किया जा सकता है। उत्पादन फलन के कम होने पर हम उत्पादन प्रक्रिया के अन्तर्गत किस लागत घटक (input factor) जो परिवर्तनशील हो, को सही रूप से उपयोग करने में सक्षम हो सकते है।। वास्तव में उत्पादन फलन एक महत्वपूर्ण निर्णय क्षमता का आधार होता है। आय के बढ़ने पर घटने पर, अटल रहने पर परिवर्तनशील लागत घटकों (Variable input factors) को प्रयोग करने की क्षमता को उत्पादन फलन के द्वारा जाना जा सकता हैं।

1.4 प्रतिफल के नियम (Returns to scale)

पिछले बिन्दुओं के अन्तर्गत हमने आइसोक्वाण्ट का अध्ययन किया जो कि विश्लेषण एक महत्वपूर्ण यन्त्र है। अब हम प्रतिफल के नियमों को जानने का प्रयास करेंगे। प्रतिफल के नियम किसी लागत (Input)में होने वाले अनुपातिक एवं युगपत (Proportional and simultaneous) परिवर्तन के फलस्वरूप उत्पादन (output) में आये बदलाव की व्याख्या करता है। लागत (input) में अनुपातिक एवं युगपत वृद्धि वास्तविकता में उत्पादन (Production) स्तर की वृद्धि का द्योतक होता है।

जब कोई फर्म अपने स्तर में वृद्धि करती है अर्थात यह अपने दोनों लागतों को अनुपातिक रूप में वृद्धि करती है तो निम्न तीन तकनीकि सम्भावनाएं हो सकती हैं।

1. कुल उत्पादन मात्रा अनुपात से अधिक बढ़ जाएगी।
2. कुल उत्पादन मात्रा अनुपात में बढ़ेगी।
3. कुल उत्पादन मात्रा अनुपात से कम बढ़ेगी।

इसी प्रकार निम्न तीन प्रकार के प्रतिफल हो सकते हैं ।

1. पैमाने के स्थिर अथवा समान प्रतिफल (Constant Returns to scale)
2. पैमाने के वृद्धिमान प्रतिफल (Increasing Returns to scale)
3. पैमाने के ह्रासमान प्रतिफल (Decreasing Returns to scale)

जब किसी वस्तु के उत्पादन में प्रयोग होने वाले सभी साधनों को बढ़ाया जाए तो इसका उत्पादन पर क्या प्रभाव पडता है। पैमाने के प्रतिफल स्थिर हो सकते हैं, वृद्धिमान हो सकते हैं अथवा ह्रासमान भी हो सकते हैं। यदि सभी साधनों को एक विशेष अनुपात में बढ़ाया जाता हो तथा परिणाम स्वरूप उत्पादन भी उसी अनुपात से ही बढ़े तो पैमाने के स्थिर प्रतिफल प्राप्त होंगे। अतः यदि सभी साधनों को दोगुना करने से उत्पादन भी दुगुना हो जाता है पैमाने के प्रतिफल स्थिर होंगे परन्तु यदि सभी साधनों के बढ़ने से उत्पादन में अधिक अनुपात से वृद्धि होती है तो पैमाने के वृद्धिमान प्रतिफल प्राप्त होंगे। अतः यदि सभी साधनों की मात्रा को दुगना किया जाता है तथा फलस्वरूप उत्पादन दुगने से अधिक बढ़ता है तो पैमाने के प्रतिफल वृद्धिमान होंगे। इसके विपरीत यदि सभी साधनों की मात्रा को बढ़ाने से उत्पादन में अनुपात से कम वृद्धि होती हैं तो पैमाने के ह्रासमान प्रतिफल प्राप्त होंगे।

1.5.1 पैमाने के स्थिर प्रतिफल (Constant Return to Scale)

समोत्पाद चित्र से यह पता चलता है कि क्या पैमाने के प्रतिफल स्थिर हैं वर्धमान हैं अथवा ह्रासमान हैं यदि विभिन्न समोत्पाद वक्र जो उत्पादन के समान वृद्धि को दर्शाते हैं एक दूसरे के समान दूरी पर स्थित हों तो इसका अर्थ होता है कि पैमाने का प्रतिफल स्थिर है, जैसा कि रेखाचित्र में दिखाया गया है। इस दशा में सीधी रेखाएं जो मूल बिन्दु 0 से खींची जाएं तो उन पर समुत्पाद वक्रों के बीच का अन्तर समान होगा।

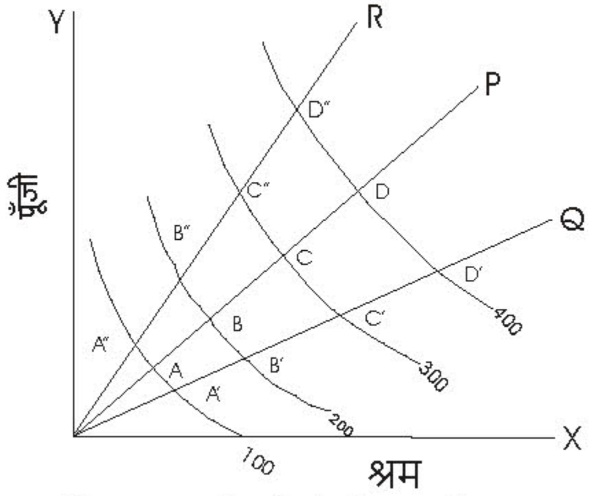

चित्र – 4 पैमाने के स्थिर प्रतिफल

रेखाचित्र में तीन सीधी रेखाएं OP, OR, OQ मूल बिन्दु 0 से निकलती हुई खीची गयी हैं। पैमाने के लिए स्थिर प्रतिफल की दशायें रेखा OP पर OA = AB = BC = CD, रेखा OQ पर OA' = A'B' = B'C' = C'D' तथा रेखा OR पर OA" = A"B" = B"C" = C"D" विभिन्न समोत्पाद वक्रों के बीच की

NMDC-222

दूरी का समान होना यह बताता है कि साधनों को एक अनुपात में बढ़ाने से उत्पादन में भी उसी अनुपात में वृद्धि होती है। अतः रेखाचित्र पैमाने के स्थिर प्रतिफल को दर्शाती है। कई अर्थशास्त्रियों के मतानुसार उत्पदन फलन अनिवार्य रूप से पैमाने के स्थिर प्रतिफल के प्रकार का होता है। उनका तर्क है कि यदि सभी साधनों की मात्राओं को दोगुना कर दिया जाए तो कोई कारण नहीं कि उत्पादन दुगना न हो। यदि हम तीन समान प्रकार की फैक्ट्रियॉ बनाएं जिनमें समान पूंजी, साज समान, कच्चा माल तथा श्रमिक लगे हों तो क्या वे समान प्रकार की एक फैक्ट्री की तुलना में तीन गुना उत्पादन नही करेगी? इस प्रकार के विचार वाले अर्थशास्त्रियों के अनुसार यदि सभी साधनों को आवश्यक भाग में बढ़ाना अथवा घटाना सम्भव होता तो तब अवश्य ही पैमाने के स्थिर प्रतिफल प्राप्त होते। उनका कहना है कि कुछ उद्योगों में यदि पैमाने के स्थिर प्रतिफल प्राप्त नहीं होते तो इसका कारण उसमें प्रयोग होने वाले कुछ साधनों के समान अनुपात से बढ़ाया घटाया नहीं जा सकता। वे साधनों की मात्राओं के समान अनुपात से परिवर्तन न कर सकने के दो कारण बताते हैं।

प्रथम, कुछ साधन ऐसे होते हैं जिनकी मात्रा इसलिए नहीं बढ़ायी जा सकती क्योंकि उनकी पूर्ति न्यून अथवा दुर्लभ होती है। अतः पैमान के स्थिर प्रतिफल प्राप्त न होने का प्रथम कारण साधनों की दुर्लभता है।

दूसरे, यह बताया जाता है कि कुछ साधन अविभाज्य होते हैं तथा उनका पूर्ण उपयोग तभी संभव होता है जब उत्पादन बड़े पैमाने पर किया जाय। अविभाज्यता के कारण उनको वस्तु की कम मात्रा उत्पादित करने के लिए भी प्रयोग करना पड़ता है। इसलिए जब आरम्भ में उत्पादन बढ़ाया जाता है तो इन अविभाज्य साधनों की मात्रा को बढ़ाया नहीं जाता क्योंकि उनका पहले पूर्ण उपयोग नहीं हो रहा होता है। अतः उत्पादन बढ़ाने पर अविभाज्य साधनों के अधिक गहन एवं पूर्णरूप से प्रयोग होने से परिवर्तनशीलत साधनों से वर्धमान प्रतिफल प्राप्त होता है। साधनों की अविभाज्यताएं बढ़े पैमाने के उत्पादन की अधिकांश बचतों की उत्पत्ति का कारण है। अतः स्पष्ट है कि कई साधनों के अविभाज्य होने के कारण उनकी मात्रा को आवश्यक अनुपात से बढ़ाया या घटाया नहीं जा सकता है। अतः इस मतानुसार यदि कुछ साधनों की पूर्ति सीमित या न्यून न होती और न ही साधन अविभाज्य होते तो तब सभी साधनों को समान मात्रा से बढ़ाया जा सकना सम्भव होता और फलस्वरूप पैमाने के स्थिर प्रतिफल प्राप्त होते।

1.5.2 पैमाने के वर्धमान प्रतिफल (Increasing Returns to Scale)

पैमाने के वर्धमान (बढ़ते) प्रतिफल का अर्थ है कि साधन में वृद्धि की तुलना में उत्पादन में अधिक अनुपात से वृद्धि होती है। उदाहरणतः यदि सभी साधनों में 25 प्रतिशत वृद्धि कर दी जाए तथा इसके परिणामस्वरूप उत्पादन 40 प्रतिशत बढ़ जाए तो यह पैमाने के वर्धमान प्रतिफल की दशा होगी। बढ़ते प्रतिफल के दो कारण हो सकते हैं – प्रथम पैमाना बढ़ाने पर श्रमिकों में अधि ाक विशेषीकरण हो सकते हैं – प्रथम पैमाना बढ़ाने पर श्रमिकों में अधिक विशेषीकरण या श्रम विभाजन सम्भव होता है जिससे श्रमिकों की उत्पादकता बढ़ जाती है। द्वितीय उत्पादन के बढ़े पैमाने पर तकनीकी दृष्टि से अधिक उन्नत तथा विशिष्ट प्रकार की मशीनों का प्रयोग करना सम्भव एवं लाभकारी हो जाता है जिससे उत्पादन में अधिक वृद्धि की दर प्राप्त होती है। यदि उत्पादन के साधन पूर्णतया विभाज्य भी होते तो भी पैमाने वृद्धि दर पर प्राप्त होते हैं, क्योंकि फर्म बड़े पैमाने पर साधनों की मात्रा अधिक हो जाने के कारण श्रमिकों में विशेषीकरण तथा उन्नत एवं विशिष्ट प्रकार की मशीनों का प्रयोग करके उत्पादन में अधिक तेज गति से वृद्धि कर सकती है।

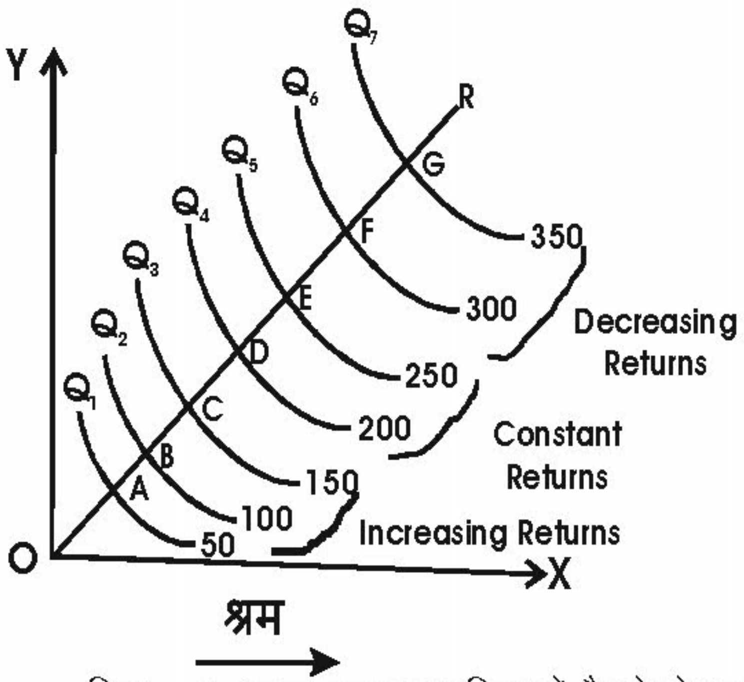

चित्र – 5 एकल उत्पादन प्रक्रिया में पैमाने के बदलते प्रतिफल

पैमाने के बढ़ते प्रतिफल को समोत्पाद चित्र के द्वारा दर्शाया जा सकता है। जब पैमाने के बढ़ते प्रतिफल प्राप्त होते हैं तो विभिन्न समोत्पाद वक्र मूल बिन्दुओं से खीची गयी रेखा पर क्रमशः बढ़ती हुई दूरी पर स्थित होंगे।

रेखाचित्र बिन्दु C तक अथवा समोत्पाद वक्र Q_3 तक पैमाने के बढ़ते प्रतिफल प्राप्त होते है। क्योंकि BC < AB अर्थात उत्पादन की समान वृद्धियाँ साधनों में क्रमशः कम वृद्धियों से प्राप्त होती है।

1.5.3 पैमाने के ह्रासमान प्रतिफल (Decreasing Returns to Scale)

अब तक हमने देखा कि जब साधनों में वृद्धि की तुलना में उत्पादन मे कम अनुपात से वृद्धि होती है तो पैमाने के घटते प्रतिफल प्राप्त होते हैं। जब कोई फर्म साधनों की अधिक मात्रा प्रयोग करके अपने उत्पादन का विस्तार करती है तो अन्ततः पैमाने के घटते प्रतिफल प्राप्त होंगे। परन्तु अर्थशास्त्रियों में पैमाने के घटते प्रतिफल के कारण अथवा कारणों के बारे में सहमति नहीं है। कुछ अर्थशास्त्रियों का मत है कि उद्यमकर्ता एक स्थिर साधन है। जहां अन्य साधनों को बढ़ाया जा सकना सम्भव है। उद्यमकर्ता को बढ़ाया जाना असम्भव है क्योंकि वह तो एक ही रहता है इस विचार के अनुसार पैमाने के बढ़ते प्रतिफल परिवर्तनशील अनुपात के नियम का एक विशेष प्रकार है। अतः इस स्थिति में एक बिन्दु के पश्चात पैमाने के घटते प्रतिफल इसलिए प्राप्त होते हैं क्योंकि अन्य साधनों की बढ़ती हुयी मात्राएं एक स्थिर उद्यमकर्ता द्वारा प्रयोग की जाती है। किन्तु अन्य अर्थशास्त्री पैमाने के घटते प्रतिफल को परिवर्तनशील अनुपात के नियम की विशेष प्रकार नहीं मानते। उनका मत हैं कि अन्ततः पैमाने के घटते प्रतिफल के कारण बड़े पैमाने के उत्पादन में प्रबन्ध, समन्वय तथा नियन्त्रण सम्बन्धी बड़ी कठिनाइयां उत्पन्न हो जाती हैं जब फर्म का आकार अत्यधिक बढ़ जाता है तो उसका प्रबन्ध इतनी कुशलता से नहीं हो सकता जितना कि कम आकार पर सम्भव होता है।

पैमाने के घटते प्रतिफल की दशा को भी समोत्पाद वक्रों द्वारा व्यक्त किया जा सकता है। जब विभिन्न समोत्पाद वक्र मूल बिन्दु से खींची गयी सीधी रेखा पर क्रमशः बढ़ती दूरी पर स्थित होते हैं तो वे पैमाने के घटते प्रतिफल को व्यक्त करते हैं इसका अर्थ यह है कि उत्पादन में समान वृद्धि को प्राप्त करने के लिए क्रमशः अधिकाधिक साधनों की आवश्यकता होती है।

रेखा चित्र 5 में बिन्दु E के पश्चात पैमाने के घटते प्रतिफल प्राप्त होते हैं क्योंकि EF > DE तथा FG > EF

यह उल्लेखनीय है कि अलग अलग उत्पादन फलन सदा विभिन्न प्रकार के पैमाने के प्रतिफल को प्रकट नहीं करते। प्रायः एक ही उत्पादन फलन में पैमाने को बढ़ते, स्थिर तथा घटते प्रतिफल की तीन अवस्थाएं होती हैं। आरम्भ में जब पैमाना बढ़ाया जाता है तो श्रम के विशिष्टिकरण तथा

NBPC-222

अधिक उन्नत एवं विशिष्ट प्रकार की मशीनों का प्रयोग सम्भव हो जाने के कारण बढ़ते प्रतिफल प्राप्त होते हैं। एक बिन्दु के बाद पैमाने के स्थिर प्रतिफल की अवस्था आती है जिसमें उत्पादन उसी अनुपात से बढ़ता है जितने अनुपात से सधनों की मात्रा बढ़ती है। वास्तविक अनुभव से पता चलता है कि पैमाने के स्थिर प्रतिफल की अवस्था काफी लम्बी होती हैं। यदि फर्म अपने पैमाने अथवा आकार का विस्तार करती जाएं तो अन्ततः घटते प्रतिफल प्राप्त होने लगते हैं अतः एक ही उत्पादन फलन में पैमाने के बदलते प्रतिफल पाये गये हैं। एक उत्पादन फलन में ये बदलते हुए प्रतिफल रेखाकृति में प्रदर्शित किये गये हैं इस रेखाकृति में प्रारम्भ में A से C तक पैमाने के वृद्धिमान (Increasing) प्रतिफल , C और E के बीच पैमाने के स्थिर प्रतिफल तथा के पश्चात पैमाने के ह्रासमान प्रतिफल प्राप्त होते हैं।

1.5 सारांश (Summary)

इस प्रकार इस इकाई को पढ़ने के पश्चात हम यह देखते हैं कि उत्पादन को बढ़ाने में विभिन्न कारकों का योगदान होता है। तथा उत्पादन फलन किसी भी वस्तु के उत्पादन एवं लागत के मध्य भूमि, श्रम, पूँजी, प्रबन्धन, तकनीकि आदि से सम्बन्धित हो सकता है। इनके प्रभावों को हमने आइसोक्वाण्ट की सहायता से पढ़ा। इसके अतिरिक्त प्रतिफल के नियमों को स्थिर, वृद्धिमान एवं ह्रासमान स्थितियों में विभाजित किया जा सकता है। तथा इसकी सहायता से कोई भी उत्पादक अपने उत्पादन में लाभ को स्थिति के अनुसार नियंत्रित कर सकता है।

1.6 स्वपरख प्रश्नावली

प्र.1 उत्पादन फलन क्या है? उत्पादन फलन की विशेषताओं को बताइये।

प्र.2 आइसोक्वाण्ट से आप क्या समझते हैं? उदाहरण सहित समझाइये।

प्र.3 परिवर्तनशील अनुपातों के नियम को समझाइये। इस नियम के लागू होने के क्या कारण या शर्तें हैं?

प्र.4 प्रतिफल के नियम से आप क्या समझते हैं? इसके तीनों प्रतिफलों को समझाइये।

प्र.5 उत्पादन फलन पर एक संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।

प्र.6 निम्नलिखित को समझाइये –

1. पैमाने के बढ़ते प्रतिफल की अवस्था

2. पैमाने के समान प्रतिफल की अवस्था

3. पैमाने के घटते प्रतिफल की अवस्था

प्र.7 पैमाने के वर्धमान प्रतिफल एवं ह्रासमान प्रतिफल में अन्तर बताइये।

1.7 अन्य चयनित पाठन

1. Managerial Economics by Maheshwari.

2. Text Book of Economics by Boyes

3. Managerial Economics by Dean

4. भारतीय अर्थव्यवस्था विकास एवंआयोजन द्वारा एं.के. अग्रवाल

1.8 सन्दर्भ पुस्तकें

1. Managerial Economics by Mote, Paul and Gupta

2. उच्चतर आर्थिक सिद्धान्त द्वारा एच.एल. आहूजा

3. Managerial Economics by Thomas Maurice

NMDC-222

इकाई–2 न्यूनतम लागत संयोग

इकाई की संरचना

2.0 उद्देश्य

2.1 प्रस्तावना

2.2 लागत व्यय की एक निर्दिष्ट मात्रा से अधिकतम उत्पादन

2.3 दो पदार्थों का अनुकूलतम संयोग

2.4 सारांश

2.5 बोध प्रश्न

2.6 अन्य चयनित पाठन

2.7 संदर्भ पुस्तकें

2.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के पश्चात शिक्षार्थी निम्न उद्देश्यों की पूर्ति करने में सक्षम होंगे –

– न्यूनतम लागत संयोग के विश्लेषण में

– दो पदार्थों के अनुकूलतम संयोग के परीक्षण में।

2.1 प्रस्तावना

समोत्पाद वक्र साधनों के उन सभी संयोगों को बताता है जिनसे उत्पादन की समान मात्रा उत्पादित होती है। अतः समोत्पाद वक्र तकनीकी दशाओ को प्रकट करता है । इसके विपरीत समलागत वक्र साधनों पर किये जाने वाले कुल व्यय और साधनों की कीमतों के अनुपात को प्रकट करता है। यदि वस्तु की किसी विशेष मात्रा का उत्पादन करने के लिए उत्पादक साधनों के कौन से संयोग को चुनेगा अथवा वस्तु की किसी विशेष मात्रा को उत्पादित करना हो तो समोत्पाद वक्र कौन से बिन्दु पर साधनों के संयोग के विषय में सन्तुलन की स्थिति में होगा?

निम्न रेखाचित्र के द्वारा इसे समझने का प्रयास करते हैं।

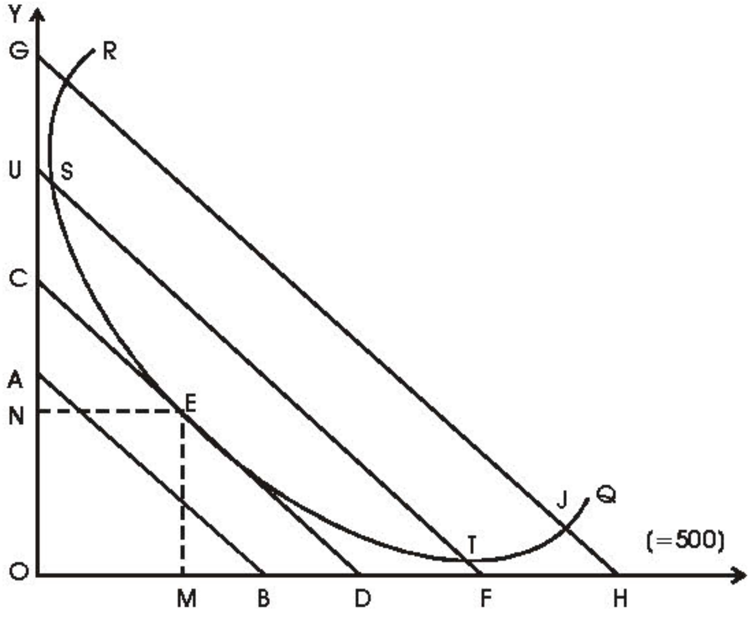

चित्र 1 : साधनों का न्यूनतम संयोग

हम यह मानते हैं कि उत्पादक वस्तु की एक विशेष मात्रा को कम से कम लागत पर उत्पादित करने का प्रयास करेगा। वस्तु की एक विशेष मात्रा को न्यूनम लागत पर उत्पादित करने से ही उसका लाभ अधिकतम होगा जो कि सभी विवेकशील उत्पादकों का लक्ष्य होता है। उदाहरण के रूप में किसी वस्तु की 500 इकाइयों उत्पादित करने के लिए चित्र में समोत्पाद वक्र Q पर स्थित किसी भी साधनों के संयोग जैसे कि RSETJ आदि द्वारा उत्पादित की जा सकती है। वह इस समोत्पाद वक्र पर स्थित साधनों के उस संयोग को उत्पादन करने के लिए चयन करेगा जिससे उत्पादन लागत न्यूनतम हो।

चित्र 1 में उत्पादक साधनों के संयोग E को चुनेगा जहॉ पर समोत्पाद वक्र Q समलागत रेखा CD को स्पर्श करती है । वस्तु की 500 इकाइयों को उत्पादित करने के लिए साधनों के E संयोग प्रयोग से लागत न्यूनतम होगी। उत्पादक वक्र Q पर स्थित किसी अन्य संयोग जैसे R तथा S को उत्पादित करने के लिए नहीं चुनेगा क्योंकि ये सभी CD से ऊँचे सम–लागत वक्रों पर स्थित होंगे एवं परिणाम स्वरूप उत्पादक को वस्तु की 500 इकाइयॉ उत्पादित करने के लिए अधिक लागत उठानी पड़ेगी। यदि वह संयोग R अथवा S को चुनता है तो उसे वस्तु की 500 इकाइयॉ उत्पादित करने के लिए अधिक लागत उठानी पड़ेगी क्योंकि R और S ऊँचे सम लागत वक्र क्रमशः GH तथा UF पर स्थित है। इसी प्रकार समोत्पाद वक्र Q पर स्थित T तथा J बिन्दुओं द्वारा व्यक्त साधनों (श्रम एवं पूॅजी के संयोगों को भी उत्पादक नहीं चुनेगा क्योंकि ये संयोग भी सम लागत वक्र CD की अपेक्षा ऊँचे सम लागत वक्रों

क्रमशः UF तथा GH पर स्थित हैं। इसी प्रकार E से भिन्न साधनों के किसी भी अन्य संयोग की लागत की तुलना में अधिक होगी अर्थात उत्पादक वस्तु की 500 इकाइयाँ उत्पादित करने के लिए साधनों के संयोग E को चुनेगा जिस पर समोत्पाद वक्र Q समलागत रेखा CD को स्पर्श करता है। श्रम तथा पूँजी का E संयोग वस्तु की 500 इकाइयाँ उत्पादित करने के लिए अनुकूलतम हैं इससे लागत न्यूनतम होती है।

बिन्दु E पर तकनीकी प्रतिस्थापन की सीमान्त दर श्रम और पूँजी की कीमतों के अनुपात के बराबर है। समोत्पाद वक्र की ढाल प्रतिस्पथापन की सीमान्त दर को प्रकट करती है तथा सम लागत वक्र की ढाल साधनों की कीमतों के अनुसार दर्शाती है। समोत्पाद वक्र तथा सम लागत वक्र CD की ढालें बिन्दु E पर बराबर है। क्योंकि बिन्दु E पर वे परस्पर स्पर्श कर रही हैं अतः बिन्दु E पर प्रतिस्थापन की सीमान्त दर श्रम एवं पूँजी की कीमतों के अनुपात के समक्ष हैं।

अतः सन्तुलन बिन्दु पर

तकनीकी प्रतिस्थापन की सीमान्त दर (Marginal rate of Technical Substitution)

$$MRTS_{LK} = \frac{\text{श्रम की कीमत}}{\text{श्रम की कीमत}} = \frac{W}{r}$$

w = श्रम की मजदूरी दर r = पूँजी की कीमत दर

चूँकि MRTS दो साधनों को सीमान्त भौतिक उत्पादों (Marginal Physical Product) के अनुपात के बराबर होती है। अतः

$$MRTS_{LK} = \frac{MP_L}{MP_K} = \frac{W}{r}$$

अर्थात सन्तुलन की अवस्था में $\frac{MP_L}{MP_K} = \frac{W}{r}$

अर्थात $\frac{MP_L}{W} = \frac{MP_K}{r}$

अतः दो साधनों के संयोग के विषय में हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि उद्यमकर्ता दो साधनों की इतनी इतनी मात्राओं का प्रयोग करेगा जिससे उन साधनों के सीमान्त भौतिक उत्पादों में अनुपात उनकी कीमतों के अनुपात के बराबर होगा। साधनों के प्रयोग के विषय में उत्पादक संतुलन की शर्त को दो साधनों से अधिक से अधिक साधनों की अवस्था में विस्तृत रूप में भी लिख सकते हैं। अतः उत्पादन प्रक्रिया में तीन साधनों श्रम, पूँजी तथा भूमि

के प्रयोग होने की स्थिति में उत्पादक अपने लागत व्यय को इन साधनों में इस प्रकार खर्च करेंगा कि निम्न शर्त की पूर्ति होती है।

$$\frac{MP_L}{W} = \frac{MP_K}{r} = \frac{MP_D}{t}$$

जहॉ MP_D भूमि की सीमान्त उत्पाद है तथा **t** भूमि की कीमत अर्थत उस पर **tax** (लगान) को दर्शाता है।

उत्पादक द्वारा विभिन्न साधनों के संयोग का चयन करने के बारे में व्यवहार, उपभोक्ता द्वारा वस्तुओं के संयोग के चयन सम्बन्धी व्यवहार के बिल्कुल समान हैं। दोनों उत्पादक तथा उपभोक्ता वस्तुओं की उतनी मात्रा खरीदते है ताकि उनमें प्रतिस्थापन की सीमान्त दर उनकी कीमतों के अनुपात के समान हो। सन्तुलन स्थिति को प्राप्त करने के लिए उपभोक्ता वस्तुओं की प्रतिस्थापन की सीमान्त दर उन वस्तुओं की कीमतों के अनुपात को बराबर करता है। इसी तरह उत्पादक द्वारा वस्तु की एक दी हुई मात्रा को न्यूनतम लागत पर उत्पादित करने के लिए साधनों की तकनीकि प्रतिस्थापन की सीमान्त दर उनकी कीमतों के अनुपात में बराबर करता है।

2.2 लागत व्यय की एक निर्दिष्ट मात्रा से अधिकतम उत्पादन (Maximum Outpupt from a given level of outlay)

लागतों को न्यूनतम करने की समस्या एक दी हुयी लागत व्यय के वस्तु उत्पादन को अधिकतम करना है। यदि किसी वस्तु के उत्पादन पर कुल कितना निवेश करना है यह निर्णय पहले ही लिया जा चुका है तो कुल व्यय की एक निदिष्ट मात्रा तथा साधनों की कीमतें दी होने पर एक सम लागत रेखा बनती है।

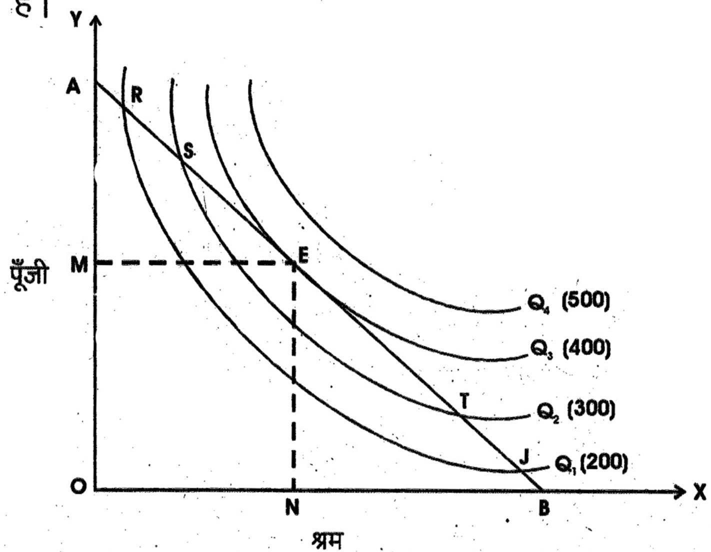

चित्र–2: कुल व्यय की एक दी हुई मात्रा से उत्पादन अधिकतम करना।

उपर्युक्त चित्रानुसार यदि किसी उत्पादक के पास 5000 रूपये हैं जिन्हें वह श्रम तथा पूँजी पर व्यय करके किसी वस्तु का उत्पादन करता है तो 5000 रूपये के कुल व्यय तथा श्रम व पूँजी को दी हुई कीमतों के आधार पर समलागत रेखा AB प्राप्त होती है। उत्पादक को इस सम लागत रेखा AB पर स्थित श्रम तथा पूँजी के विभिन्न संयोगों जैसे कि R.S.E.T. और J में से किसी संयोग को चुनना होगा। चित्र में समोत्पाद वक्रों का एक मानचित्र दर्शित है जिसमें विभिन्न समोत्पाद वक्र उत्पादन के विभिन्न स्तरों (200, 300, 400, 500 इकाइयॉ) को दर्शाते हैं। समलागत रेखा पर स्थित श्रम तथा पूँजी के संयोगों में से उत्पादक बिन्दु E द्वारा व्यक्त श्रम तथा पूँजी के संयोग को उत्पादन के लिए चयन करेगा अर्थात उत्पादक का सन्तुलन बिन्दु E पर होगा जिसके अनुसार वह श्रम की ON मात्रा तथा पूँजी की OM मात्रा का वस्तु उत्पादन के लिए प्रयोग करेगा। इस संयोग विशेष के चयन का कारण यह भी है कि दी हुयी सम लागत रेखा पर स्थित श्रम तथा पूंजी के सभी संयोगों में से संयोग E जो श्रम की ON मात्रा तथा पूँजी की OM मात्रा का संयोग है। वक्र का अधिकतम सम्भव उत्पादन (400 इकाई) प्राप्त कर सकते हैं। साधन लागत पर स्थित शेष सभी संयोग जैसे कि R.S.T. तथा J अपेक्षाकृत कम वस्तु उत्पादन के समोत्वाद वक्रों पर स्थित हैं जिनसे वस्तु की 400 इकाइयों की तुलना में कम उत्पादन सम्भव होता है।

सन्तुलन बिन्दु E पर सम लागत रेखा समोत्पाद वक्र Q_3 (उत्पादन की 400 इकाइयॉ) को स्पर्श कर रही हैं। अतः साधन संयोग के चयन की दृष्टि से संतुलन की स्थिति में साधनों की कीमतों का अनुपात (w/r) तकनीकि प्रतिस्थापन की सीमान्त दर ($MRTS_{LK}$) के समान होगा।

अतः अनुकूलतमक साधन संयोग E पर –

$$MRTS_{LK} = \frac{W}{r}$$

चूँकि तकनीकि प्रतस्थापन की सीमान्त दर ($MRTS_{LK}$) साधनों के सीमान्त उत्पादों (MP) के अनुपात के समान होती है। अतः

$$MRTS_{LK} = \frac{W}{r}$$

केन्तु $$MRTS_{LK} = \frac{MP_L}{MP_K}$$

अतः $$\frac{MP_L}{MP_K} = \frac{W}{r}$$

अतः यह स्पष्ट है कि दिये हुए कुल व्यय से उत्पादन को अधिकतम करना तथा वस्तु की उत्पादन मात्रा दी हुई होने पर लागत न्यूनतम करने के विषय

में हम उत्पादन के सन्तुलन की समान शर्तों पर पहुँचते हैं।

2.3 दो पदार्थों का अनुकूलतम संयोग (Optimum Combination of two Products)

कोई भी फर्म किन्हीं दो पदार्थों के कौन से संयोग का चुनाव करेगी, इससे पूर्व सम आय रेखाओं के सिद्धान्त को जानना आवश्यक है। एक सम आय रेखा को उन पदार्थों संयोगों के बिन्दु पथ के रूप में परिभाषित किया जा सकता है जिनसे समान आय अर्जित होगी? यह हम निम्नलिखित की सहायता से जानने का प्रयास करेंगे।

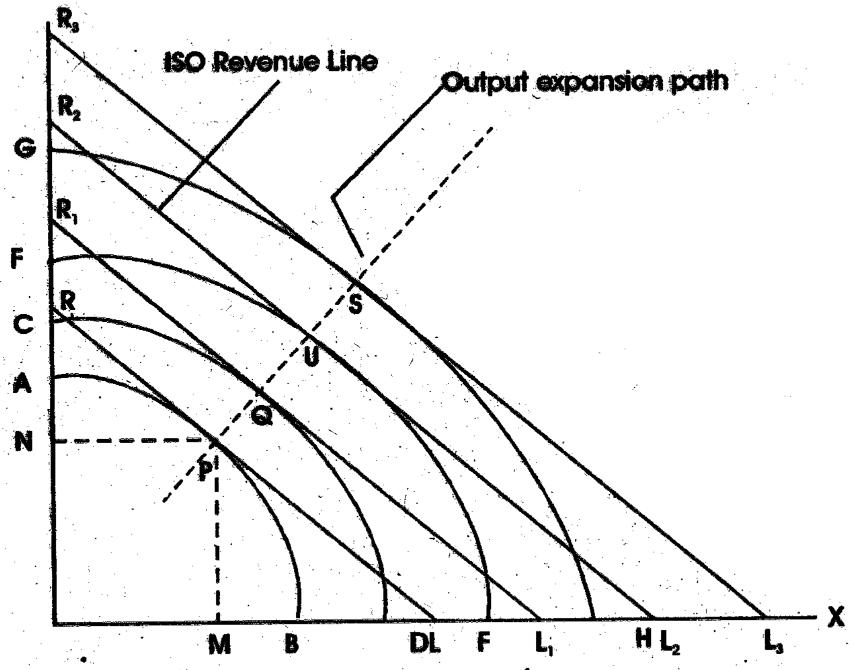

RL एक सम आय रेखा है इसका अर्थ यह है कि यदि इस पर स्थित X तथा Y दो पदार्थों के सभी संयोग बाजार में बेचे जाते हैं तो वे समान आय प्राप्त करते हैं। यदि फर्म पदार्थों को स्थिर दी हुयी कीमतों पर बेचती है तो सम आय रेखा एक सरल रेखा होगी। एक अपेक्षाकृत ऊँची सम आयरेखा दो पदार्थों के बड़े संयोगों को बेचने से अर्जित अधिक आय प्रदर्शित करती है।इस प्रकार जबकि प्रत्येक सम आय रेखा पर स्थित पदार्थों के किसी संयोग को बेचने के समान अर्जित आय प्रदर्शित करती है। विभिन्न सम आय रेखाएं अर्जित आय की विभिन्न भाषाएं प्रदर्शित करती हैं जैसे कि R'L', R"L", R'"L'"..... उत्तरोत्तर ऊँची सम आय रेखाएं हैं। पदार्थों की कीमतें दी हुयी तथा स्थिर होने पर विभिन्न सम आय रेखाएं एक दूसरे की समानान्तर होंगी। यह पुनः ध्यान देने योग्य है कि सम आय रेखा का ढाल X तथा Y की कीमतों के अनुपात के समान होता है।

NMDC-222

यदि इसमें कल्पना करें कि फर्म का उद्देश्य अपना लाभ अधिकतम करना होता है तो उत्पादन के लिए उपयोग किये जाने वाले साधनों की मात्रा दी हुयी होने पर तब लाभ अधिकतम होंगे जब फर्म अपनी आय को अधिकतम करती हैं । इस प्रकार उपभोग किये जाने वाले साधनों की मात्रा दी होने पर फर्म का उद्देश्य अपनी आय को अधिकतम करना होगा। चित्र में साधनों की मात्रा उतनीही है जितनी कि उत्पादन संभावना वक्र CD द्वारा प्रदर्शित है अब फर्म उत्पादन संभावना वक्र CD पर स्थित संयोगों में से एक पदार्थ संयोग का चुनाव करेगी। वह CD पर स्थित उस पदार्थ संयोंग का चुनाव करेगी जो उसकी आय को अधिकतम करती है। आय अधिकतम होने के लिए दिये हुए उत्पादन संभावना वक्र पर रूपान्तरण की सीमान्त दर (MRT_{XY}) उन दो पदार्थों के बीच दी हुयी कीमतों के अनुपात के समान अवश्य होनी चाहिए। यदि दिये हुए उत्पादन संभावना वक्र पर MRT_{XY} कीमत अनुपात के समान नहीं है जैसा कि CD वक्र पर K तथा T बिन्दु पर है तो दिये गये उत्पादन संभावना वक्र पर उस दिशा में चलकर आय में वृद्धि की जा सकती है जिसमें आय वृद्धि होगी। यदि दिये हुए उत्पाद संभावना वक्र के एक बिन्दु पर दो पदार्थों के बीच रूपान्तरण की सीमान्त दर दी हुयी कीमत अनुपात के समान हैं तो किसी भी दिशा में चल कर आय वृद्धि करने की कोई सम्भावना नहीं होगी। चूँकि CD वक्र को K बिन्दु पर X का Y के लिए रूपन्तरण की सीमान्त दर बड़े पदार्थों के मध्य दी हुयी कीमत अनुपात की अपेक्षा कम हे। (उत्पादन संभावना वक्र CD तथा दी हुयी कीमत अनुपात को प्रदर्शित करने वली सम आय सेवा RLएक दूसरे को K बिन्दु पर प्रतिच्छेद कर रही हैं) अतः CD वक्र पर Q की ओर चलकर आय में वृद्धि की जासकती है। दिये हुए उत्पादन सम्भावना वक्र के T बिन्दु पर MRT_{XY}दी हुयी कीमत अनुपात की अपेक्षा अधिक है अतः इसलिए ऊपर Q बिन्दु की ओर चलकर आय में वृद्धि की जा सकती है। इस प्रकार Q बिन्दु पर आय अधिकतम होगी जहॉं MRT_{XY}दी हुयी कीमत अनुपात के समान हैं।

यह स्पष्ट है कि दी हुयी परिस्थितियों के अन्तर्गत Q बिन्दु उच्चतम सम्भव सम आय रेखा RL पर स्थित है। इस प्रकार फर्म Q पदार्थ संयोंग के उत्पादन का चुनाव करेंगी।

ज्यामितीय रूप में हम कह सकते हैं कि आप वहॉं अधिकतम होगी जहॉं एक दिया हुआ उत्पादन सम्भावना वक्र सम आय रेखा को स्पर्श रेखा है। K तथा T बिन्दु (जहॉं दिया हुआ उत्पादन सम्भावना वक्र CD एम आय रेखा का प्रतिच्छेद कर रहा है।) R'L' कि अपेक्षा नीचे की सम आय रेखा पर

स्थित है जिस पर Q बिन्दु स्थित है। स्पर्शी बिन्दु Q पर दो पदार्थों के रूपान्तरण की सीमान्त दर उनकी कीमत अनुपात के समान है क्योंकि उत्पादन संभावना वक्र तथा सम आय रेखा के ढाल स्पर्शी बिन्दु पर एक समान हैं । अतः साम्य बिन्दु पर $-MRT_{XY} = \frac{P_X}{P_Y}$ जिसमें P_Y वस्तु की कीमत तथा P_Y वस्तु Y की कीमत को दर्शाती है।

उपरोक्त स्थिति साम्य की प्रथम क्रम की दशा है। द्वितीय क्रम की शर्त के लिए आवश्यक है कि उत्पादन संभावना वक्र नीचे से नतोदर होना चाहिए।

2.4 सारांश

उपरोक्त विवेचन से हम यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि उत्पादन संभावना वक्र CD द्वारा प्रदर्शित साधनों के दिये होने पर फर्म पदार्थ संयोग Q के उत्पादन का चुनाव करेगी अर्थात वह X पदार्थ की OM तथा Y पदार्थ की ON मात्रा का उत्पादन करेगी। यदि अब फर्म के उपलब्ध साधनों में वृद्धि होने से तत्सम्बन्धी उत्पादन सम्भावना वक्र EF हो जाता है। तो उत्पादन संभावना वक्र EF होने पर फर्म U पदार्थ संयोग का उत्पादन करके अपनी आय को अधिकतम करेगी। इसी प्रकार यदि फर्म के साधनों में और अधिक वृद्धि हो जाती है। तो उत्पादन संभावना वक्र GH होने पर फर्म S पदार्थ संयोग का चुनाव करेगी जहाँ बढ़े हुए साधनों से इसकी आय अधिकतम होगी । P.Q.S. और S जैसे बिन्दुओं को मिलाने से हमें जो वक्र प्राप्त होगा उसे उत्पादन विस्तार पथ कहा जाताहै तथा इसके आधार पर साधनों की बदलती हुयी मात्राओं के परिणाम स्वरूप सभी आय अधिकतम पदार्थ संयोग का बिन्दु पथ होता है तथा कोई भी फर्म अपने साधनों में वृद्धि के साथ इस मार्ग के सहारे अपने उत्पादन का विस्तार करती है।

2.5 महत्वपूर्ण शब्द

साधनों का न्यूनतम संयोग, दो पदार्थों का अनुकूलतम संयोग

2.6 स्वपरख प्रश्न

प्र.1 साधनों के न्यूनतम संयोग से आप क्या समझते हैं चित्र द्वारा समझाइये।

प्र.2 क्या लागत व्यय की एक निर्दिष्ट मात्रा से अधिकतम उत्पादन संभव है उदाहरण द्वारा समझाइये।

प्र.3 आप दो पदार्थों का अनुकूलतम संयोग कैसे करेंगे? चित्र द्वारा समझाइये।

प्र.4 कुल व्यय की एक दी हुयी मात्रा से उत्पादन अधिक कैसे हो सकता है चित्र द्वारा बताइये।

प्र.5 टिप्पणी लिखिए।

1. न्यूनतम संयोग
2. अधिकतम उत्पादन
3. दो पदार्थों का अनुकूलतम संयोग

2.7 अन्य चयनित पाठन

(1) Managerial Economics by Maheshwari.

(2) Text book of Economics by Boyes

(3) Managerial Economics by Dean

(4) भारतीय अर्थव्यवस्था विकास एवं आयोजन द्वारा ए.के.अग्रवाल

2.8 संदर्भ पुस्तकें

1. Managerial Economics by Mote, Paul and Gupta
2. उच्चतर आर्थिक सिद्धान्त बाई एच.एल. आहूजा
3. Managerial Economics by Thaumas Maurice.

इकाई–3 लागत के सिद्धान्त (Cost Concepts)

इकाई की संरचना

3.0 उद्देश्य

3.1 प्रस्तावना

3.2 लागत के निर्धारक तत्व

3.2.1 उत्पादन मात्रा एवं लागतें

3.2.2 उत्पादन साधनों की उत्पादकताएं एवं लागतें

3.3.3 तकनीकी एवं लागतें

3.3 सारांश

3.4 महत्वपूर्ण शब्द

3.5 स्वपरख प्रश्न

3.6 अन्य चयनित पाठन

3.7 सन्दर्भ पुस्तकें

3.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के पश्चात हम –

– लागतों के विभिन्न निर्धारकों को समझेंगे,

– लागतों के मुख्य स्वरूपों को जानेंगे,

3.1 प्रस्तावना (Introduction)

लागतों का अध्ययन किसी भी उत्पादन फलन के लिए अति आवश्यक है जब तक किसी उद्यमी को उत्पादन में लगे हुये सभी लागतों की जानकारी नहीं होती है तब तक वह उत्पादन के आर्थिक सिद्धान्त को क्रियान्वित करने में अक्षम होता है। किसी भी उद्यमी को लागत के विभिन्न पहलुओं को जानना आवश्यक है जिसके द्वारा वे यह निर्धारित कर सकें कि कितने स्तर (पैमाने) पर कितनी लागत लगाने पर कितने प्रतिफल की प्राप्ति होगी। इकाई 4 (लागत के वर्गीकरण) में हमने काफी विस्तार से अध्ययन किया है परन्तु इस इकाई में हम लागत के कुछ मुख्य सिद्धान्तों की चर्चा करेंगे।

UPRTOU MIDC-222

3.2 लागत के निर्धारण तत्व (Determinant of Cost)

प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र में लागतों के व्यवहार को अत्यन्त महत्व दिया गया है। उत्पादों एवं सेवाओं के उत्पादन एवं वितरण की लागतें विभिन्न कारकों पर निर्भर करती हैं जो कि एक फर्म की लागतें विभिन्न कारकों पर निर्भर करती है जो कि एक फर्म से दूसरी फ़र्म के अनुसार भिन्न होती हैं। लागतों के निर्धारण के तत्वों की चर्चा हम निम्न प्रकार से कर सकते है।

क. उत्पादन मात्रा स्तर (Output level)

ख. उत्पादन कारकों की कीमत (Prices of factors of production)

ग. उत्पादन कारको की उत्पादकता (Productivities of Factors of production)

घ. तक़नीक (Technology)

आगे की चर्चा में हम उपर्युक्त कारकों का लागत पर प्रभाव जानेंगे। इस चर्चा के अंदर हम जब किसी एक कारण्क का लागत पर पड़ने वाले प्रभाव का विस्तार से विश्लेषण करेंगे तो अन्य कारकों तथा मूल्य को स्थिर मानेंगे।

3.2.1 उत्पादन मात्रा एवं लागत (Output and Cost)

कुल लागत उत्पादन मात्रा के साथ साथ परिवर्तित होती है। कोई भी फर्म जितना अधिक उत्पादन करती है इसकी लागतें उतनी ही बढ़ती हैं। इसका विपरीत भी होता है। चूंकि यदि हम उत्पादन में वृद्ध करते हैं तो उसके लिए सीधे तौर पर अधिक कच्चे माल, श्रम आदि की आवश्यकता होती है। और इस कारण कुल लागत, उत्पादन मात्रा के बढ़ने के साथ बढ़ जाती है जबकि घटाने पर घटती भी है। यदि हम एक स्तर और अधिक उत्पादन मात्रा को बढ़ा दें तो हमें स्थिर संयंत्रों तथा अतिरिक्त उपकरणों एवं मशीनों की भी आवश्यकता हो सकती है। लागत एवं उत्पादन के मध्य जो सम्बन्ध है वह अत्यन्त महत्वपूर्ण होता है तथा इसको हम इस खण्ड की विभिन्न इकाइयों में पढ़ेंगे। साधारण तौर पर अर्थशास्त्रियों के मतानुसार किसी भी उत्पाद एवं सेवाओं के उत्पादन के लिए लागत (Concept) चार मुख्य उत्पादन कारकों से व्युत्पन्न होते हैं उदाहरणार्थ भूमि, श्रम, पूँजी तथा संगठन या प्रबन्धन। इन चारों कारकों के आधार पर चार प्रकार की लागतें (Costs) या लागत कीमतें (Input prices) देखने को मिलती है किराया, भत्ता, ब्याज एवं लाभ। लाभ लागत का अवयव नहीं होता हैं। अर्थशास्त्र में प्रबन्धन एवं

कार्मिकों का वेतन जिसमें प्रबन्धक को भी सम्मिलित किया जाता है लागत के भाग को दर्शाता है। किसी भी पदार्थ / वस्तु के उत्पादन में माध्यमिक वस्तुओं जिसे हम कच्चा माल कहते हैं, की आवश्यकता होती है। कच्चे माल की कीमतें, कुल लागत से सीधे संबन्धित होती है। इस प्रकार से कुल लागत में से हम भूमि का किराया, श्रमिकों के भत्ते, कच्चे माल की कीमत, पूंजी पर ब्याज तथा सभी प्रबन्धन कर्मियों के वेतन को सम्मिलित कर सकते हैं। यदि हम सभी अवयवों को स्थिर रखते हुए किसी एक अवयव की लागत या कीमत में वृद्धि करते हैं तो कुल उत्पादन लागत में वृद्धि हो जाती है। ऐसा इसलिए होता है क्योंकि जब किसी एक कारक की कीमत में वृद्धि होती है तो उसके लिए अतिरिक्त पूँजी की आवश्यकता होती है और इस बढ़ी हुयी लागत के बदले में कहीं और से पूर्ति नहीं होती। इस प्रकार किसी भी कारक की कीमत बढ़ने पर उत्पादन लागत में सीधे तौर पर वृद्धि हो जाती है।

अधिकाधिक उद्योगों में उत्पादन के कारक एक सीमा तक एक दूसरे को स्थानापन्न होते है। उदाहरणार्थ यदि हम इस श्रम को पूँजी के द्वारा स्थानापन्न कर सकते है। उत्पादन के लागत कारकों को स्थानापन्न करने का एक करक उनकी कीमतें भी होती है। अर्थात यदि श्रम की कीमत के तकनीकी कीमत से स्थानापन्न करने में उत्पादकता में वृद्धि होती है तो यह एक लाभकारी स्थिति होती है। हालॉकि सम्बन्धित कारक कीमत के परिवर्तन का कुल उत्पादन लागत पर प्रभाव निश्चित नहीं। यदि लागत के एक कारक की कीमत बढ़ जाती है तथा दूसरे की घट जाती है तो साधारणतया पहले वाले कारक के उपयोग में कमी आयेगी तथा दूसरे वाले कारक के उपयोग में वृद्धि होगी तथा कुल उत्पादन लागत में इसका प्रभाव अनिश्चित होता है। इसका सही प्रभाव स्थानापन्न की मॉग या सीमा पर पड़ता है। यदि अधिक से अधिक स्थानापन्न होना सम्भव है तो कुल उत्पादन लागत में कमी आ सकती है। अन्यथा यह स्थिर रह सकती है या बढ़ भी सकती है। इस प्रकार से हम कह सकते हैं कि लागत साधनों की कीमत के साथ लागतें बदलती हैं इसके सम्बन्धित साधनों के मूल्य का संबंध लागत के साथ जानना अत्यन्त आवश्यक है।

3.2.2 उत्पादन साधनों की उत्पादकताएं एवं लागतें (Productivities of factors of Production and cost)

किसी उत्पादन साधन की उत्पादकता से हमार तात्पर्य उस साधन की एक इकाई द्वारा उत्पादन मात्रा में योगदान से होता है किसी लागत

सधन को जितनी आधेक उत्पादकता होगी उसका परिमाण उतना ही कम होगा जबकि उत्पादन के लिए अन्य लागत साध्नों को किसी दी गयी उत्पादन मात्रा पर उत्पादन के लिए स्थिर रखना होगा। दिये गये साधन मूल्यों, तकनीकी एवं उत्पादन मात्रा पर साधन उत्पादकता में वृद्धि करने पर कुल उत्पादन लागत घट जाती हैं। इस प्रकार से उत्पादन लागत का उत्पादकता के साथ विपरीत अनुपात में व्यवहार होता है। साधन मूल्यों की ही भॉति, यदि किसी एक भी साधन उत्पादकता में वृद्धि होती है तथा दूसरे साधन की उत्पादकता में कमी होती है तो इसका कुल उत्पादन लागत पर प्रभाव अनिश्चित होता है। कुल लागत केवल उसी दशा में घटेगी जब कि वह साधन जिसकी उत्पादकता में वृद्धि हुयी है का स्थानापन्न उस साधन से किया जाए जिसकी उत्पादकता में एक अर्थपूर्ण मात्रा में कमी आयी हो। उत्पादकता का प्रयोग हम यहॉ कुशलता के स्थान पर भी करते हैं। साधन की कुशलता में वृद्धि के कई प्रकार हैं। जैसे कि मशीन की कुशलता या उत्पाकतां उसकी गति को बढ़ा कर की जा सकती है, इसको ज्यादा घण्टे तक चलाकर की जा सकती हैं या ज्यादा समय तक चलाकर की जा सकती है।

किसी साधन की उत्पादकता अथवा कुशलता में वृद्धि किसी दी गई उत्पादन मात्रा पर कुल उत्पादन लागत को कम करने में सहायक होती है।

3.2.3 तकनीक एवं लागतें (Technology and Costs)

उत्पादन के विषय में तकनीकी एक महत्वपूर्ण निर्धारक हैं यदि हम तकनीकी में आये आधुनिकीकरण का प्रयोग अपने उत्पादन में करते हैं तो इससे उत्पादन में वृद्धि देखी जा सकती है जबकि एक ठहरी हुयी तकनीक के प्रयोग से उत्पादन में और अधिक वृद्धि सम्भव नहीं होती है। चूँकि तकनीकी के प्रयोग से साधनों की उत्पादकता में वृद्धि होती है जो उसकी कुशलतता को बढ़ा देते हैं अतः अन्ततः उत्पादन की लागत में कमी आती है। इस प्रकार उत्पादन की लागतें, तकनीकी प्रगति के विपरीत अनुपात में व्यवहार करती हैं।

उपर्युक्त अभी अवधारणाओं को सम्मिलित रूप से लेने पर लागत एवं किसी एक निर्धारण्क को साथ लेने पर लागत फलन को हम निम्न प्रकार से लिख सकते हैं।

$$TC_x = f(X, P_F, E_F, T)$$

$$f_1, f_2, > 0 > f_3, f_4$$

जहॉ TC_x = X वस्तु की कुल उत्पादन लागत

X = X वस्तु की उत्पादन मात्रा (output)

P_F = उन सभी साधनों की कीमत जिनका प्रयोग वस्तु के उत्पादन के लिए किया जाता है।

E_F =

उन सभी लागत साधनों की उत्पादकता या कुशलता जिनका उपयोग X वस्तु के उत्पादन में किया गया है।

T = X वस्तु के उत्पादन में हुयी तकनीकी प्रगति।

f = अनुलिखित फलन

f_1 = परिवर्तनीय घटक के सपेक्ष f का आंशिक व्युत्पन्न।

3.3 सारांश (Summary)

इस इकाई को पढ़ने के पश्चात हम कह सकते हैं कि लागत के निर्धारित करने के लिए मुख्य रूप से उत्पादन मात्रा, उत्पादन कारकों की कीमतें, उत्पादकता एवंतकनीक मुख्य भूमिका निभाते हैं तथा इनके सही मिश्रण से उत्पादन को सही प्रकार से नियन्त्रित किया जा सकता हैं ।

3.4 महत्वपूर्ण शब्द

उत्पादन मात्रा स्तर, उत्पादन कारकों की कीमतें, उत्पाद तकनीकी।

3.5 स्व–परख प्रश्न

प्र.1 उत्पादन लागत का विश्लेषण करते हुए इसके निर्धारक तत्वों को बताइये।

प्र.2 उत्पादन मात्रा एवं लागत में क्या संबंध हैं?

प्र.3 उत्पादन कारकों की उत्पादकता का लागत के निर्धारण पर क्या प्रभाव पड़ता है।

प्र.4 उत्पादन की तकनीक का उत्पादन लागत पर क्या प्रभाव पड़ता है?

प्र.5 निम्नलिखित पर टिप्पणी लिखिए।

1. उत्पादन मात्रा स्तर
2. उत्पादन कारकों की कीमत
3. उत्पादन कारकों की उत्पादकता

प्र.6 उत्पादन लागत एवं उत्पादन तकनीक में क्या सम्बन्ध हैं?

प्र.7 उत्पादन मात्रा स्तर एवं लागत में क्या सम्बन्ध हैं, उदाहरण द्वारा बताइये।

3.6 अन्य चयनित पाठन

1. Managerial Economics by Maheshwari
2. Text Book of Economics by Boyes
3. Managerial Economics by Dean
4. भारतीय अर्थव्यवस्था विकास एवं आयोजन बाई ए.के.अग्रवाल

3.7 सन्दर्भ पुस्तकें

- Managerial Economics by Mote, Paul, and Gupta.
- उच्चतर आर्थिक सिद्धान्त बाई एच.एल. आहूजा ।
- Managerial Economics by Thaumas Maurice.

इकाई–4 लागत वर्गीकरण

इकाई की संरचना

4.0 उद्देश्य

4.1 प्रस्तावना

4.2 लागत का वर्गीकरण

4.2.1 वास्तविक लागतें

4.2.2 अवसर लागतें

4.2.3 सीमान्त लागतें

4.2.4 वृद्धि लागतें

4.2.5 डूबी लागतें

4.2.6 स्थिर एवं परिवर्तनशील लागतें

4.2.7 लघुकालीन एवं दीर्घकालीन लागतें

4.3 लागत उत्पादन सम्बन्ध

4.3.1 लघुकाल के लिए लागत उत्पादन सम्बन्ध

4.4.2 दीर्घकाल के लिए लागत उत्पादन सम्बन्ध

4.4 व्यक्त एवं अव्यक्त लागतें

4.5 निजी एवं सामाजिक लागतें

4.6 लेखांकन एवं आर्थिक लागतें

4.7 सारांश

4.8 महत्वपूर्ण शब्द

4.9 स्व परख प्रश्न

4.10 अन्य चयनित पाठन

4.11 सन्दर्भ पुस्तकें

4.0 उद्देश्य

इस इकाई के पठन के पश्चात शिक्षार्थी निम्नांकित उद्दश्यों की पूर्ति में सफल होंगे –

– उत्पादन में लगने वाली विभिन्न लागतों को समझने में,

– लागत उत्पादन सम्बन्धों के विश्लेषण में

– लागत उत्पादन सम्बन्धों में लागतों के प्रभाव का विश्लेषण करने में।

4.1 प्रस्तावना (Introduction)

लागत को प्रभावित करने वाले अनेक कारक होते हैं। ये कारक स्थिति के अनुसार तथा कम्पनी के अनुसार भिन्न होते हैं। इसी कारण इन अवयवों के आधार पर हमें निर्णय लेने से पूर्व इनको विस्तृत रूप से लेना चाहिए। लागत के बारे में निर्णय लेने हेतु हमें भिन्न लागतों का ज्ञान होना आवश्यक है। लागत के कुछ सिद्धान्तों को हम निम्न प्रकार से चर्चा कर सकते हैं।

4.2 लागत का वर्गीकरण

4.2.1 वास्तविक लागत (Actual Cost)

ये वे लागत होती हैं जो किसी उत्पाद अथवा सेवा उत्पादित करने अथवा अपनाने में खर्च होती है। वास्तविक लागत को हम अधिग्रणह लागत (Acquisition Cost) या व्यय लागत (Outlay cost) कहते हैं। इस प्रकार की लागत के उदाहरण के अन्तर्गत कच्चे माल की लागत अथवा आर्थिक लागत (Material cost) श्रम लागत (Labour cost), किराया को ले सकते हैं।

4.2.2 अवसर लागत (Opportunity cost)

अवसर लागत हम उस लाभ (benefit) या आय (Revenue) को कहते हैं जो किसी एक कार्य को करने के बदले में त्याग कर सकते थे। हम इसको इस प्रकार से कह सकते हैं कि यदि हमारे पास एक लाख रूपये हैं और हम इस धन को X अथवा Y प्रोजेक्ट में लगा सकते है। परन्तु यदि हम X प्रोजेक्ट में धन का निवेश करते हैं तो T प्रोजेक्ट में धन निवेश करने से जो लाभ हमें हो सकता था उसे अवसर लागत कहते है।

चूँकि प्रोजेक्ट में हम धन निवेश करने का अवसर हम X प्रोजेक्ट में निवेशित करने के निर्णय पर त्याग देते हैं तथा इस सर्वश्रेष्ठ Y प्रोजेक्ट के द्वारा अर्जित आय अथवा लाभ को हम अवसर लागत (Opportunity cost) कहते है।

4.2.3 सीमान्त लागत (Marginal cost)

किसी एक अतिरिक्त यूनिट के उत्पादन में जो लागत में वृद्धि होती है उसे सीमान्त लागत (Marginal cost) कहते है। सीमान्त लागत को इस प्रकार से भी परिभाषित कर सकते हैं कि यदि वर्तमान परिस्थिति में किसी उत्पाद अथवा सेवा के उत्पादन में एक अतिरिक्त यूनिट की वृद्धि करने पर जो लागत में वृद्धि आती है उसे सीमान्त लागत कहते हैं।

वित्तीय शब्दावली में nवीं इकाई की सीमान्त लागत (MCn) कुल वीं इकाई की कुल लागत (TCn) एवं (n-1)वीं इकाई की कुल लागत (TCn-1) का अन्तर होती है।

M Cn = T Cn - T Cn-1

M Cn = n इकाई की सीमान्त लागत

T Cn = n इकाई की कुल लागत

अन्य शब्दों में हम सीमान्त लागत को उस दर के द्वारा परिभाषित कर सकते हैं जिस पर उत्पादन के बदलने पर कुल लागत बदल जाती है।

4.2.4 वृद्धि लागल (Incremental cost)

वृद्धि लागत को हम निम्न प्रकार से परिभाषित कर सकते हैं।

अ– किसी नीति को सम्भावित परिवर्तन के कारण कुल लागत में हुए अन्तर अथवा,

ब– व्यवसाय के स्तर अथवा प्रकृति के बदलने पर हुयी लागत में वृद्धि

अर्थात हम वृद्धि लागत को उदाहरण के द्वारा इस प्रकार से समझ सकते हैं कि यदि किसी कम्पनी को विपणन नीति में या विज्ञापन नीति या विवरण नीति इत्यादि में बदलाव के कारण उस कम्पनी के उत्पादन लागत में हुई वृद्धि के कारण, उत्पादन लागत में आये बदलाव को वृद्धि लागत कहते हैं।

वृद्धि लागत का मालूम होना इसलिए आवश्यक है कि वृद्धि लागत के आधार पर कम्पनी अपनी आय में भी वृद्धि सुनिश्चित कर सके। किसी बदलाव के कारण आय (Revenue) में आये बदलाव को वृद्धि आय (Incremental Revenue) कहते हैं।

4.2.5 डूबी हुई लागत (Sunk cost)

डूबी हुई लागत वे लागत होती हैं जो मात्रा में बदलाव के बाद भी परिवर्तित नहीं की जा सकती है एवं उनकी भरपाई नहीं की जा सकती है। उदाहरणार्थ मूल्यह्रास (Depreciation)। इसको हम इस प्रकार से भी परिभाषित कर सकते हैं कि जिस लागत को हम किसी वस्तु के अधिग्रहण में खर्च कर चुके हैं तथा किसी भी निर्णय से उसकी भरपाई सम्भव नहीं है। यदि हम एक नई कार 2.5 लाख रूपये में खरीदते हैं तो 20 प्रतिशत प्रति वर्ष के हिसाब से एक वर्ष पश्चात इसकी कीमत दो लाख रूपये हो जायेगी और किसी भी प्रकार से हम इसे वापस नहीं प्राप्त कर सकते हैं। इसे डूबी हुयी लागत कहते हैं। डूबी हुई लागत प्रायः वास्तविक लागत का ही अंश होती है अर्थात किसी भी वस्तु के खरीदने पर हमारी जो वास्तविक लागत होती है उसी में डूबी हुई लागत सन्निहित होती है।

4.2.6 स्थिर एवं परिवर्तनशील लागत (Fixed and variable costs)

स्थिर लागत वे लागत होती है जो किसी भी फर्म की कुल लागत का ही एक हिस्सा होती है तथा उत्पादन के परिवर्तन के साथ ये लागत परिवर्तित नहीं होती हैं। यदि हमें अपने फर्म को स्थापित करने के लिए भूमि क्रय करना पड़े, मशीने बनवानी पड़ें तो इस हेतु आयी लागत को हम स्थिर लागत कहते हैं। सीधे तौर पर स्थिर लागत को हम प्राप्त नहीं कर सकते हैं। स्थिर लागत को हम प्रायः उपरिव्यय लागत अथवा अप्रत्यक्ष लागत भी कहते हैं। यदि उत्पादन में वृद्धि होती है तो स्थिर लागत प्रति उत्पादित इकाई कम होता जाता है अर्थात यदि हम 100 यूनिट उत्पादित करते हैं तो कुल स्थिर लागत को 100 से विभाजित करके स्थिर लागत का अनुपात निकाल सकते हैं। यदि 100 के स्थान पर 150 यूनिट का उत्पादन करते हैं तो स्थिर लागत को 150 यूनिट से विभाजित करके उसका अनुपात निकाला जा सकता है। इस प्रकार हम ज्यादा से ज्यादा यूनिटों का उत्पादन कर स्थिर लागत का विभाजन कर सकते हैं।

परिवर्तनशील लागत वे लागत होती है जो कि उत्पादित यूनिटों की संख्या अथवा मात्रा पर निर्भर करती हैं अर्थात यदि हम ज्यादा मात्रा में उत्पादों का उत्पादन करें गे तो परिवर्तनशील लागत ज्यादा आयेगी एवं यह उत्पादन कम करने पर परिवर्तनशील लागत कम आयेगी।

परिवर्तनशील लागत X यूनिटों की मात्रा

Variable cost X Quantity of Production

श्रम लागत, माल (कच्चा माल इत्यादि) लागत उत्पादन की मात्रा के अनुसार ही बढ़ते एवं घटते हैं।

4.2.7 लघुकालीन एवं दीर्घकालीन लागतें (Short Run and Log Run costs)

यदि हम लधुकाल एवं दीर्घकाल के सिद्धान्त को किसी फर्म की अर्थव्यवस्था के अन्तर्गत समझने का प्रयास करें तो लघुकाल **(Short term)** वह समय सीमा होती है जिसमें कोई भी उत्पादक अपने उत्पादन को परिवर्तित करने के लिए स्वतन्त्र होता है। परन्तु अपने प्लाण्ट के स्तर को बदलने का समय उस पर नहीं होता है। चूँकि फर्म की मशीनों एवं संयंत्रों को एकदम से बदलना या किसी भी क्षण परिवर्तित करना सम्भव नहीं होता है। इसके लिए एक कम से कम निर्धारित समयसीमा होती है। ऐसी हालत में बढ़ती हुयी मॉग को नियन्त्रित करने के लिए केवल यही तरीका होता है कि उत्पादक अपनी कर्म में उपलब्ध मशीनों एवं संयंत्रों को अधिक से अधिक प्रयोग करके उत्पादन को बढ़ाये। और यदि मॉग में कुछ कमी आती है तो उत्पादक मशीनों एवं संयंत्रों को खाली छोड़कर अपने उत्पादन को कम कर सकता है।

दीर्घकाल एक ऐसी समय सीमा होती है जिसमें लागत (मशीनरी/ संयंत्र/माल इत्यादि) को स्थिति के अनुसार बदलने का मौका मिल जाता है। दीर्घकाल के अन्तर्गत हम मॉग एवं पूर्ति में आये बदलाव को स्थिति के अनुसार बदलने में सक्षम होते हैं।

अर्थात अब हम कह सकते हैं कि लघुकालीन लागतें वे होती हैं जो कि सम्पन्न उपयोग (अर्थात उर्त्पादन) की मात्रा तथा अन्य स्थिर कारकों के साथ बदलती है। लघु काल में यद्यपि स्थिर लागते अपरिवर्तित रहती है परन्तु परिवर्तनशील लागतें उत्पादन के साथ बदलती है।

दीर्घकालीन लागतें वे होती हैं जो संयंत्र **(Plant)** के आकार के साथ परिवर्तित होती है । लघु कालीनएवं दीर्घकालीन लागतों का प्रयोग उत्पादन के स्थायी एवं अस्थाई निर्णयों का लागत, मूल्य एवं इस प्रकार लाभ की भविष्यवाणी करने में किया जाता है।

4.3 लागत उत्पादन सम्बन्ध (Cost-Output Relationship)

लागत –उत्पादन सम्बन्ध लधुकाल के लिए एवं दीर्घकाल के लिए भिन्न भिन्न होता है। आइये इसको जानने का प्रयास करते हैं।

4.3.1 लघुकाल के लिए लागत उत्पादन सम्बन्ध

किसी भी फर्म के लिए लघुकाल में उत्पादों के उत्पादन की कुल लागत TC किसी दिये गये उत्पादन स्तर पर कुल परिवर्तनशील लागत (Total variable cost) एवं कुल स्थिर लागत (Total fixed cost) के योग को बराबर होती हैं।

TC = TFC + TVC

ग्राफ के द्वारा इन लागतों को आकृति का अध्ययन करें ।

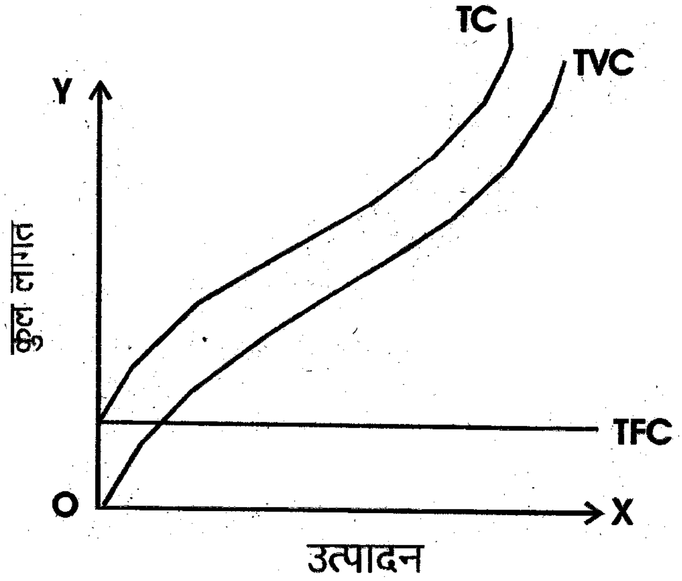

चित्र – 1 लघुकालीन कुल लागत वक्र

लघुकाल के लिए औसत लागत को हम निम्न प्रकार से समझ सकते हैं।

1. औसत स्थिर लागत (AFC) प्रति उत्पादन यूनिट की स्थिर लागत है।

$$AFC = \frac{TFC}{Q}$$ (Q = उत्पादन)

अर्थात् चूँकि कुल स्थिर लागत अटल (Constant) है अतः AFC लगातार गिरने लगेगी।

2. औसत परिवर्तनशील लागत (AVC) इसी प्रकार से प्रति यूनिट परिवर्तनशील लागत है।

$$AVC = \frac{TVC}{Q}$$ (Q = उत्पादन

AVC वक्र पहले गिरता है तथा बाद में उठता है।

अतः औसत कुल लागत $ATC = \frac{TC}{Q} = \frac{TFC}{Q} + \frac{TVC}{Q} = AFC + AVC$

इन औसत लागतों को हम निम्न ग्राफ के द्वारा समझ सकते हैं।

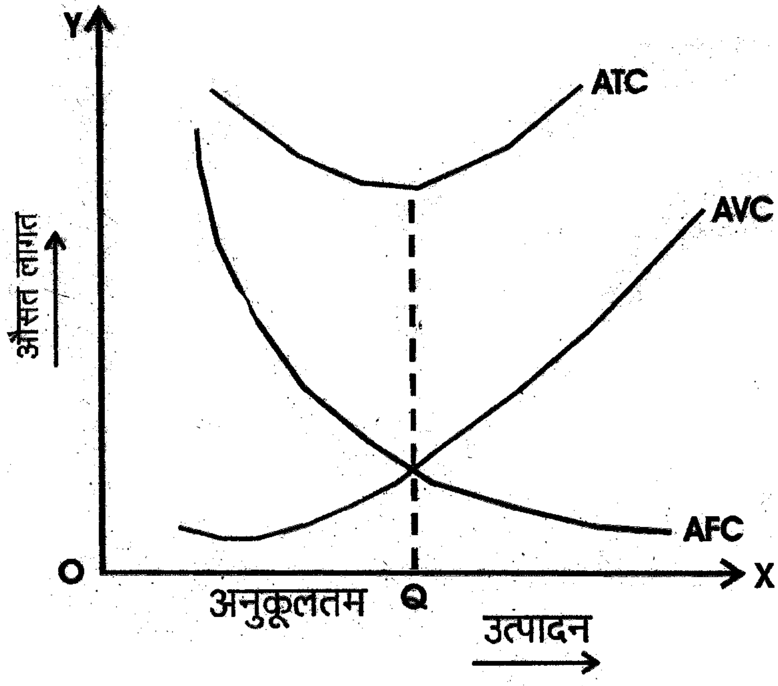

चित्र – 2 : लघुकालीन औसत लागत वक्र

औसत लागत वक्रों के गुण निम्नवत होते हैं –

1. AFC स्थिर रूप से गिरता है तथा दोनों अक्षों को असमान रूप से छूता है।

2. AVC पहले गिरता है अपने न्यूनतम स्तर पर पहुॅंचता है तथा फिर बढ़ता है।

3. जब AFC क्षैतिज अक्ष पर पहुॅंचता है तो AVC, ATC पर पहुंचता है।

4. ATC पहले गिरता है अपने न्यूनतम स्तर पर पहुंचता है तथा फिर उठता है। जब यह अपने न्यूनतम स्तर पर होता है तो उत्पादन **(Output)** अनुकूलतम स्तर पर होता है।

4.4.2 दीर्घ काल के लिए (For Long Run)

दीर्घकाल में सभी साधन परिवर्तनशील होते हैं तथा फर्म के पास अधिसंख्य विकल्प होते हैं। उदाहरणार्थ, फर्म पास यदि उत्पादन के दो विकल्प लधु एवं मध्यम आकार के संयंत्र के रूप में है तथा ये संयंत्र औसत लागत AC_1 तथा AC_2 पर क्रमशः कार्य करते हैं।

UPRTOU MDC-222

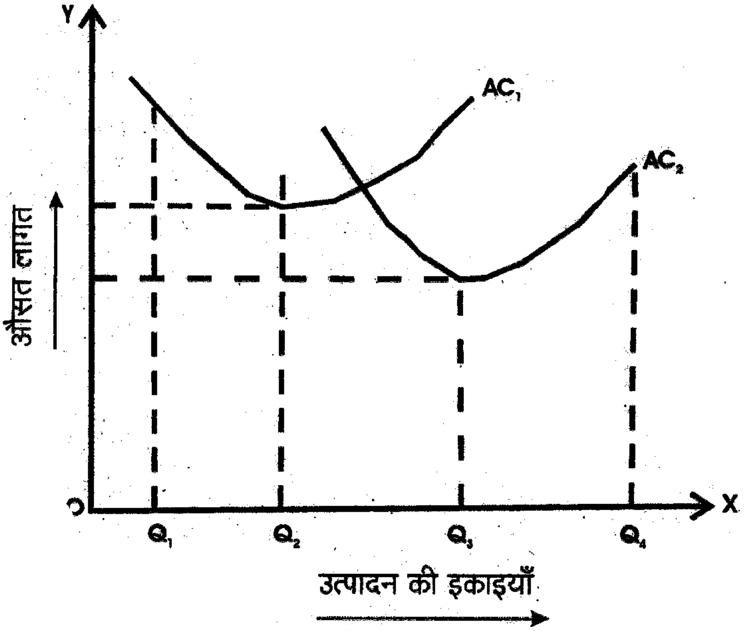

चित्र–3 : दीर्घकालीन औसत लागत वक्र

यहाँ उत्पादन के लिए Q_1 तथा Q_2 में से केवल एक ही विकल्प अर्थात लघुसंयंत्र उपलब्ध है जबकि Q_2 एवं Q_3 उत्पादन विकल्पों में दोनों ही विकल्प अर्थात लघु संयंत्र अथवा दीर्घ संयंत्र को प्रयोग करने की सुविधा है। पुनः Q_3 तथा Q_4 उत्पादन के मध्य केवल मध्यम आकार के संयंत्र को प्रयोग किया जा सकता है। ये वक्र हमें किसी विकल्प के किसी उत्पादन स्तर पर मितव्ययिता पूर्वक कार्य करने करने को जानने में सहायता प्राप्त करते हैं।

यहाँ हमने केवल दो विकल्पों का वर्णन किया है परन्तु वास्तविकता में बहुसंख्य विकल्प होते हैं। इस प्रकार की परिस्थितियों में प्रत्येक विकल्प के लिए वक्र खींचते हैं तथा सर्वश्रेष्ठ उत्पादन स्तर को चुनते हैं।

4.5 व्यक्त एवं अव्यक्त लागतें (Explicit and Implicit Costs)

व्यक्त लागतें वे लागतें होती हैं जो व्यवसायिक लागतों के रूप कम्पनी की लेखा किताबों में उल्लिखित होती हैं उदाहरणार्थ वेतन, किराया, ब्याज, माल के लिए भुगतान आदि।

अव्यक्त लागतें वे लागतें होती है जो नगद रूप में भी सामने नहीं आती हैं तथा लेखा में भी उल्लिखित नहीं होती हैं। ये उद्यमी के संसाधनों में सर्वश्रेष्ठ उपयोग के फलतः आय के रूप में होती है। उदाहरणार्थ जब कोई उद्यमी स्वयं व्यापार करता है तो वह अपने द्वारा किये गये कार्य का वेतन नहीं लेता जबकि अन्यत्र काम करने पर उसको वेतन मिलता। इस प्रकार की लागत को हम अव्यक्त (Implicit) लागत कहेंगे।

NMDC-222

4.6 निजी एवं सामाजिक लागतें (Private and Social Costs)

निजी लागतें वे लागतें होती हैं जो किसी संगठन के द्वारा व्यापार करने के लिए संसाधनों को एकत्र करने में लगाई जाती है। इस प्रकार की लागतों में व्यक्त एवं अव्यक्त लागतें दोनों ही आती हैं।

सामाजिक लागतें वे लागतें होती हैं जो समाज के उन व्यक्तियों पर आहरित होती हैं जो कि व्यापारिक उत्पादन प्रक्रिया में सीधे रूप से सम्मिलित नहीं होते हैं। उदाहरणार्थ यदि किसी फैक्ट्री में मलबा नदी में छोड़ा जाता है तो समाज के लोग व्यर्थ ही उस गन्दगी से प्रभावित होते हैं इसी प्रकार उद्योगों द्वारा फैलाये गये वायु एवं ध्वनि प्रदूषण इसका उदाहरण हैं।

4.7 लेखांकन एवं आर्थिक लागतें (Accounting Cost and Economic Costs)

कीमत सिद्धान्त के लिए समुचित ज्ञान के लिए लागत के इन विभिन्न विचारों को जानना आवश्यक है। जो प्रायः उपयोग किये जाते हैं। जब एक साहसी कोई उत्पादन कार्य करता है तो उसे उन साधनों की कीमतों का भुगतान करना पड़ता है जिन्हें वह उत्पादन के लिए नियुक्त करता है। वह इस प्रकार नियोजित मजदूरों को मजदूरी, उपयोग किये गये कच्चे माल, ईधन तथा ऊर्जा की कीमतें, उत्पादन कार्य के लिए किराए पर लिए गये भवन का किराया तथा व्यवसाय करने के लिए उधार ली हुयी मुद्रा पर ब्याज दर का भुगतान करता हैं।

ये सब उसकी उत्पादन लागत में सम्मिलित होती है। एक लेखाकार साहसी द्वारा विभिन्न उत्पादक साधनों के बाहरी पूर्तिकर्ताओं को किये गये भुगतानों को ही ध्यान रखेगा। किन्तु एक अर्थशास्त्रीय का लागत का विचार इससे कुछ भिन्न होता है। ऐसा सामान्यतः होती हे कि उद्यमी अपने उत्पादक व्यवसाय में कुछ मौद्रिक पूँजी का विनियोग करता है। यदि उद्यमी द्वारा अपने व्यवसाय में विनियोजित मौद्रिक पूंजी कहीं अन्य जगह विनियोजित करता हो तो वह ब्याज अथवा लाभांश की कुछ मात्रा अर्जित करता। इसके अतिरिक्त एक साहसी अपने उत्पादन कार्य में स्वयं का समय लगाता है तथा अपनी साहसिक तथा प्रबन्धकीय योग्यताओं में योगदान करता है। यदि उद्यमी ने अपना व्यवसाय स्थापित न किया होता तो वह अपनी सेवाओं को मुद्रा को

कुछ धनात्मक मात्रा के लिए दूसरों को बेच देता अतः अर्थशास्त्री उत्पादन लागत में सम्मिलित करते हैं।

1. अपने व्यवसाय में साहसी द्वारा स्वयं विनियोजित मौद्रिक पूंजी पर सामान्य प्रतिफल, जिसे वह यदि अन्यत्र विनियोजित करता तो अर्जित कर सकता। अपने व्यवसाय में स्वयं उद्यमी द्वारा विनियोजित पूंजी पर सामान्य प्रतिफल वस्तुतः उसकी मौद्रिक पूंजी की अवसर लागत होती है।

2. मजदूरी अथवा वेतन – जब कोई अपनी सेवायें, प्रबन्धक को देता है और उसने बदले आय अर्जित करता है उसे मजदूरी कहते हैं। लेखाकार उन दो मदों को उत्पादन लागत में सम्मिलित नहीं करते हैं परन्तु अर्थशास्त्रीय इसे उचित लागत मानते हैं तथा तदनुसार उन्हें सम्मिलित करेंगे। इसी प्रकार अन्य साधनों जैसे स्वयं उद्यमियों के स्वामित्व तथा उनके द्वारा स्वयं अपने व्यवसाय में उपयुक्त भूमि से मौद्रिक पुरस्कार को भी अर्थशास्त्रियों द्वारा उत्पादन लागत का अंग माना जाता है। इस प्रकार लेखाकार उन लागतों को मानते हैं जिनका फर्म के साहसी द्वारा अन्य लोगों को नगद भुगतान किया जाता है। अर्थशास्त्री उस मुद्रा की मात्रा का भी ध्यान रखते हैं जो कि साहसी तब अर्जित कर सकता है, जबकि वह अपनी मौद्रिक पूँजी विनियोजित किये होता तथा अपनी सेवाओं एवं अन्य साधनों को अन्य सर्वोत्तम वैकल्पिक उपयोगों में बेच दिया होता। विभिन्न साधनों को किराये पर लेने या खरीदने के लिए फर्म द्वारा किये जाने वाले प्रसंविदात्मक नकद भुगतान या लेखांकन लागतें, या स्पष्ट लागतें भी कही जाती हैं।

साहसी द्वारा विनियोजित मौद्रिक पूंजी पर सामान्य प्रतिफल तथा उसकी सेवाओं के लिए मजदूरी तथा वेतन एवं उन अन्य साधनों की अवसर लागतों जिनका वह स्वयं स्वामी हैं तथा उन्हें अपनी फर्म में उपयोग करता है को अस्पष्टतया निहित लागतें कहा जाता है। अर्थशास्त्री स्पष्ट तथा अस्पष्ट दो प्रकार की लागतों को ध्यान में रखते हैं।

आर्थिक लागत – लेखांकन लागतें + अस्पष्ट लागतें

यहाँ यह ध्यान देना महत्वपूर्ण हैं कि उपरोक्त अवसर लागत का विचार फर्म की अस्पष्ट लागतों तक ही सीमित नहीं है। अवसर लागतों का विचार स्पष्ट लागतों पर भी लागू होता है। उदाहरण के लिए जब एक फर्म कच्चा माल खरीदती है तो वह मुद्रा की उसी मात्रा से किसी अन्य वस्तु को खरीदने के अवसर का परित्याग करती है जिसका उसने कच्चे माल पर व्यय

NMDC-222

किया है। अतः फर्म के दृष्टिकोण से उसके द्वारा कच्चे माल के लिए भुगतान किया गया तथा मौद्रिक मूल्य उसकी अवसर लागत प्रदर्शित करता है।

इस प्रकार स्पष्ट लागतें किसी अवसर लागतें भी हैं यह उल्लेख किया जा सकता है कि फर्म आर्थिक लाभ तभी अर्जित करेगी जब कि वह लोखांकन तथा अस्पष्ट लागतों के योग की अपेक्षा अधिक आय प्राप्त कर रही होती है। इस प्रकार यदि फर्म लाभ रहित तथा हानि रहित स्थिति में है तो इसका अर्थ है कि फर्म को लेखांकन तथा अस्पष्टत : लागतों के योग के समान आय प्राप्त हो रही है और अधिक नही।अतः –

आर्थिक लाभ = कुल आय – आर्थिक लागतें ।

चूँकि आर्थिक लागतें स्पष्ट तथा अस्पष्ट लागतों का योगफल होती है अतः आर्थिक लाभों को निम्न प्रकार से परिभाषित तथा मापा जा सकता है।

आर्थिक लाभ = कुल आय –(स्पष्ट लागतें + अस्पष्ट लागतें)

4.8 सारांश (Summary)

इस इकाई को पढ़ने के पश्चात हम कह सकते हैं कि विभिन्न प्रकार की लागतों को समझने के पश्चात इनका उपयोग उत्पादन की औसत लागत को कम करने में किया जा सकता है तथा तदनुसार अपने लाभांश को सम्भावित उच्चतम स्तर तक ले जाया जा सकता है या दीर्घकाल में यदि स्थितियां अनुकूल न हों तो अपने लाभांश को स्थिर रखने में सहायता की जा सकती है। किसी भी निर्णयकर्ता को अपने कुल लाभ को बढ़ाने में किसी भी डूबी हुई लागत, स्थिर लागत तथा औसत लागत को नजरअन्दाज कर देना चाहिए क्योंकि इनमें से कोई भी लागत सीमान्त लागत को प्रभावित नहीं करती हैं अतः अनुकूलतम निर्णयों पर कोई प्रभाव नहीं डालती है।

4.8 महत्वपूर्ण शब्द

वास्तविक लागत, अवसर लागत, सीमान्त लागत, वृद्धि लागत, डूबी लागत, व्यक्त एवं अव्यक्त लागत, निजी एवं सामाजिक लागत, लेखांकन एवं आर्थिक लागत ।

4.9 स्वपरख प्रश्न

प्र.1 उत्पादन की लागतों का विश्लेषण करते हुए अवसर लागत के अर्थ एवं महत्व को स्पष्ट कीजिए।

प्र.2 उत्पादन की लागत से आप क्या समझते हैं? लघुकालीन एवं दीर्घकालीन लागतों को समझाइये।

प्र.3 लागत उत्पादन सम्बन्ध को समझाते हुए लघुकाल एवं दीर्घकाल के लिए लागत उत्पादन सम्बन्ध बताइये।

प्र.4 निम्न में अन्तर स्पष्ट करें।

1. वयक्त एवं अव्यक्त लागतें।
2. निजी एवं सामाजिक लागतें।
3. स्थित एवं परिवर्तनशील लागतें
4. लेखांकन एवं आर्थिक लागतें

प्र.5 टिप्पणी लिखिये।

1. अवसर लागत
2. सीमान्त लागत
3. वृद्धि लागत
4. डूबी लागत
5. वास्तविक लागत

4.10 अन्य चयनित पाठन

1. Managerial Economics by Maheshwari
2. Text Book of Economics by Boyes
3. Managerial Economics by Dean
4. भारतीय अर्थव्यवस्था विकास एवं आयोजन बाई ए.के.अग्रवाल

4.11 सन्दर्भ पुस्तकें

- Managerial Economics by Mote, Paul, and Gupta.
- उच्चतर आर्थिक सिद्धांन्त बाई एच.एल. आहूजा ।
- Managenal Economics by Thaumas Maurice.

इकाई–5 अनुमाप की मितव्ययिता एवं अमितव्ययिता

इकाई की संरचना

5.0 उद्देश्य

5.1 प्रस्तावना

5.2 अनुमाप की मितत्वययिता

5.3 अनुमाप की अमित्वययिता

5.4 मितव्ययिता एवं अमितव्ययिता का स्पष्टीकरण

5.5 सारांश

5.6 महत्वपूर्ण शब्द

5.7 स्वपरख प्रश्न

5.8 अन्य चयनित पाठन

5.9 सन्दर्भ पुस्तकें

5.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के पश्चात शिक्षार्थी निम्नांकित उद्देश्य की पूर्ति में सक्षम होंगे।

– वस्तुओं के उत्पादन में मितव्ययिता के सिद्धान्त को समझने में,

– उत्पादन लागत में अमितव्ययिता के कारणों के विश्लेषण में

5.1 प्रस्तावना

जब भी कोई निर्माता किसी वस्तु का उत्पादन करता है तो उसको सदैव इस बात का ध्यान रखना होता है किस प्रकार वह अपनी लागत को कम से कम कर सके तथा अपने लाभांश को बढ़ा सके। लघु काल एवं दीर्घकाल में लागत एवं लाभांश की दशाएं भिन्न होती हैं अनुमाप की मितव्ययिता का तात्पर्य इस बात से होता है कि यदि कोई निर्माता लागत अवयवों को ज्यादा मात्रा में खरीद कर ज्यादा मात्रा में उत्पादन करे तो उसको कम कीमत में सामान मिलने के कारण एवं मशीन तथा अन्य संसाधनों का अधिकतम उपयोग करने के कारण औसत लागत में कमी आती

है जो कि निर्माता के लाभांश में वृद्धि करता है। इस इकाई में हम अनुमाप की मितव्यीयता एवं अमितव्यीयता के प्रभावों को समझने का प्रयास करेंगे।

5.2 अनुमाप की मितव्ययिता (Economies of Scale)

अनुमाप की मितव्ययिता को इस प्रकार से परिभाषित कर सकते हैं कि वह स्थिति जब दीर्घकाल में उत्पादन की मात्रा (Output) बढ़ जाती है तो उत्पादन की इस दीर्घकाल में औसत लागत (Longrun Average cost) कम हो जाती है और इसी प्रकार से उत्पादक ज्यादा मात्रा में उत्पादों को उत्पादित करके मितव्ययिता लाभ उठाते हैं।

निम्नांकित चित्र में हम मितव्ययिता को देख सकते हैं –

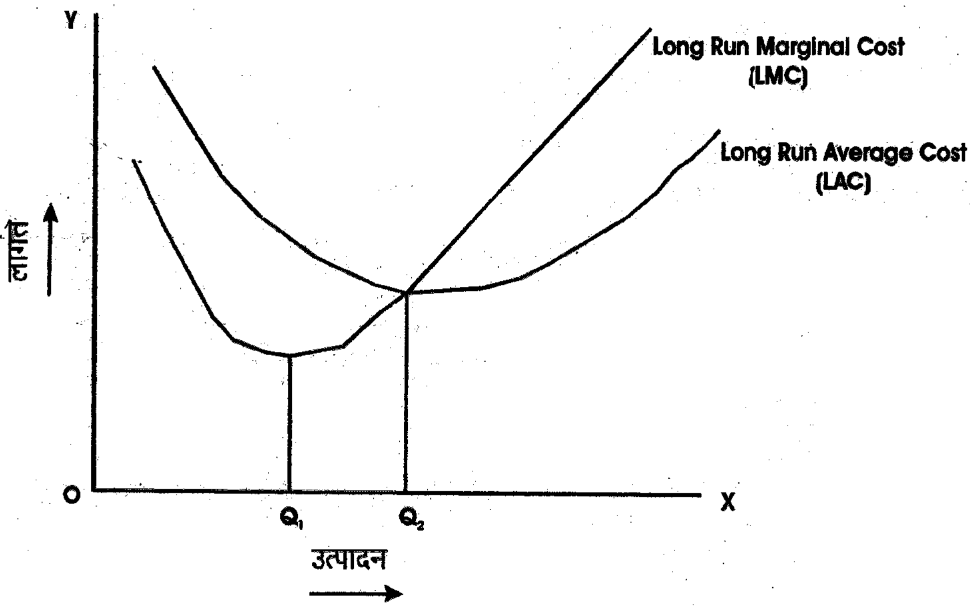

चित्र–1

उपर्युक्त चित्र में हम देख सकते हैं उत्पादन के Q_1 स्तर से OQ_2 स्तर तक अनुभाप की मितव्ययिता प्रदर्शित होती है।

5.3 अनुमाप की अमितव्ययिता (Scale of Diseconomies)

अमितव्ययिता दीर्घकालीन उत्पादन में वह स्थिति है जब और अधिक उत्पादन बढ़ाने पर भी दीर्घकालीन औसत लागत (LAC) बढ़ जाती है अर्थात एक स्तर के बाद यदि हम उत्पादन को बढ़ाते भी हैं तो बाजार लागत घटने के बाद पुनः बढ़ने लगती है।

उपर्युक्त चित्र 1 में Q_2 बिन्दु के बाद की LAC अमितव्ययिता को प्रदर्शित करती है। अब हम यहाँ पर यह जानने का प्रयास करते हैं कि

अर्थशास्त्रियों के मत से मितव्ययिता की स्थित कब और कैसे आती है और फिर क्यों उसके बाद फर्म अमितव्ययिता की स्थिति में आती है।

5.4 मितव्ययिता एवं अमितव्ययिता का स्पष्टीकरण (Explanation for Economies and Diseconomies)

अनुमाप की मितव्ययिता का एक मुख्य कारण दीर्घ स्तरी कम्पनियों के लिए दीर्घस्तर पर उत्पादन की प्रकिया में आये अवसरों के द्वारा विशिष्टीकरण (Specialisation) एवं श्रम के विभाजन (Division of labour) का लाभ लेना होता है। यदि हम किसी लघु उद्योग का उदाहरण लें तो चूंकि वस्तुओं का उत्पादन कम होता है क्योंकि उत्पादन की मांग भी कम होती है। अतः उद्यमी कम मशीनों एवं श्रमिकों का एक सीमित मात्रा में प्रयोग करते हैं जो उनकी प्रतिदिन की मांग को पूर्ण करने में सक्षम हो। परन्तु यदि उद्यमी की फर्म को उत्पाद की मांग अधिक हो तथा दीर्घकाल में उसे अधिक मात्रा में उत्पादन करना हो तो वह अधिक एवं विशिष्ट श्रमिकों की नियुक्ति कर सकता है। साथ ही ज्यादा आधुनिक मशीनों का भी प्रयोग कर सकता है जो उत्पादन में वृद्धि के साथ ही लागत (Cost) में भी कमी लाने में सक्षम होती हैं और इस प्रकार कम्पनी की औसत लागत कम हो जाती है। इसी को अनुमाप की मितव्ययिता कहते हैं। इसका एक पहलू यह भी है कि जब अधिक उत्पादन के लिए अधिक कच्चे माल तथा अन्य सम्बन्धित अवयवों की आवश्यकता होती है तो उनकी खरीद में भी बड़ी मात्रा होने के कारण छूट मिल जाते हैं और ये औसत लागत को कम करने में सहायक होती है। इस प्रकार यदि दीर्घकाल में श्रमिक एवं मशीनों के द्वारा अधिकतम कार्य कुशलता को अपनाते हुए ठोस लाभ को कार्य के विभाजन एवं विशिष्टीकरण के द्वारा पूर्ण किया जाता है तकनीकी कारण भी मितव्यिता को सार्थ बनाने में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं । तकनीकी के इस प्रभाव को हम तीन प्रकार से पढ़ सकते हैं।

प्रथम यदि उत्पादन में विभिन्न प्रकार की मशीनों की आवश्यकता हो तो मशीनों के सही सामन्जस्य को बनाए रखने में उत्पादन की अच्छी मात्रा की आवश्यकता होती है। उदाहरण के लिए यदि एक मशीन की उत्पादन क्षमता 30000 यूनिट प्रति दिन है तथा दूसरी मशीन की क्षमता 45000 यूनिटों की पैकिंग कर सकती है तो मशीनों के सही सामन्जस्य स्थापित होने पर एक दिन में अधिकतम 90000 यूनिटों का उत्पादन हो सकता है बशर्ते मशीनों का पूर्ण अथवा अधिकतम उपयोग हो।

NMDC-222

दूसरे दृष्टिकोण से हम यदि देखें तो आधुनिक तकनीक को अपनाने के लिए जो बड़ी मशीने होती हैं उनको खरीदने एवं लगाने की लागत अधिक होती है। छोटी मशीनों की लागत एवं लगानें की तुलना में। उदाहरण के रूप में एक प्रिन्टिंग मशीन जो एक दिन में 2 लाख पेपर प्रिन्ट कर सकती है, की लागत एक 20000 पेपर प्रिंट करने वाली मशीन से 10 गुना अधिक नहीं होती है, और न ही इसको स्थापित करने के लिए 10 गुना ज्यादा भूमि की एवं 10 गुना श्रमिकों की आवश्यकता होती है। इस प्रकार हम यह अनुभव करते हैं कि यदि ज्यादा बड़े स्तर पर कार्य करने के लिए तकनीक को अपनाया जाए तो प्रति यूनिट लागत कम हो जाती है।

तीसरे दृष्टिकोण से यदि हम देखें तो तकनीकी अवयव शायद सबसे महत्वपूर्ण विषय हैं। जैसे जैसे उत्पादन में वृद्धि होती है तथा बड़े पैमाने पर वस्तुओं का उत्पादन होता है वैसे वैसे मात्रा के साथ साथ गुणवत्ता की उपयोगिता भी बढ़ जाती है जिसके लिए हमें अधिक विकसित तकनीकी एवं प्रौद्योगिकी की आवश्यकता होगीं। उदाहरणार्थ यदि हमें कोई छोटी सड़क बनाने का कार्य मिले तो हम तारकोल एवं श्रमिकों के द्वारा सड़क बनवा कर उस पर एक रोलर चलवा कर सड़क बना देते है। परन्तु उसकी गुणवत्ता उतनी अच्छी नहीं होती है और यदि किसी महानगर में एक व्यस्त सड़क को बनाना हो तो एक आधुनिक मशीन कम रोलर का प्रयोग किया जाता है जो एक ही बार में पत्थर एवं तारकोल के मिश्रण को सड़क पर फैलाते हुए उसे रोल करती चली जाती है। और इस प्रकार से अच्छी गुणवत्ता वाली सड़क का निर्माण कम समय में हो जाता है। इसी प्रकार से अन्य बड़े पैमाने के कार्य जहाँ श्रम की अधिकता से ही अच्छा कार्य सम्पन्न करना मुश्किल होता है वहाँ आधुनिक एवं विकसित प्रौद्योगिकी वाली मशीनों के द्वारा गुणवत्ता पर कार्य किया जाता हैं । इस प्रकार से हम देखते हैं कि दो मुख्य एवं बड़े क्षेत्र

(क) विशिष्टीकरण एवं श्रम का विभाजन, तथा

(ख) तकनीकी एवं प्रौद्योगिक कारक, किसी उत्पादक के द्वारा बड़े पैमाने पर कार्य करने पर प्रति इकाई लागत को घटाने में सहायक होते हैं। ये प्रभाव दीर्घकालीन औसत लागत वक्र के भाग को ऋणात्मक ढाल देते हैं। दीर्घ कालीन औसत वक्रों के उठे हुए होने के कारण तथा सभी प्रकार के मितव्ययी अभिमापनों के अध्ययन के पश्चात ये वक्र क्षैतिज अथवा समानान्तर नहीं होते हैं। दीर्घकालीन औसत लागत **(Long term average cost)** वक्र अथवा

अमितव्ययिता अभिमापन (Diseconomies of scale) प्रायः प्रभावी तथा कार्यकुशल प्रबन्धन के अभाव का परिणाम होता है। किसी भी व्यवसाय को प्रबन्धित करने के लिए एक कुशल प्रबन्धक को विभिन्न प्रक्रियाओं एवं सम्बन्धित विभागों जैसे कि उत्पादन (Production),परिवहन (Transport),वित्त (Finance), विक्रय (Sales), मानव संसाधन (Human Resource),क्रय (Purchase), शोध एवं विकास (Research and Development) आदि को भली भाँति समन्वित करना आना चाहिए। किसी भी प्रबन्धक को प्रबन्धन के इन कार्यों को करने के लिए सही सूचनाओं का होना आवश्यक है अन्यथा वह सही निर्णय लेने में सक्षम नहीं हो सकता।

जैसे जैसे किसी प्लॉण्ट की क्षमता में वृद्धि होती है वैसे वैसे प्रबन्धक अपनी जिम्मेदारियों एवं अधिकारों को अपने से निचले क्रम के अधिकारियों को सौंपता है। यदि प्रबन्धक स्वयं ही रोज के संचालन एवं प्रक्रियाओं को जाकर देखने लगे तो इसमें समय खराब होता है तथा श्रमिकों के दबाव में रहने के कारण गुणवत्ता कम होने का भय रहता है। इस दशा में अधिकारों एवं जिम्मेदारियों को अपने से निचले क्रम के अधिकारियों के साथ बॉटने तथा सौंपने से एक कुशल तथा प्रभावी प्रबन्धन होता है। ऐसा न होने पर प्रक्रियाओं एवं संचालन की कुशलता मे कमी आती है तथा प्रबन्धन भी कुशल नहीं हो पाता है तथा प्रबन्धकीय फलन की लागत बढ़ जाती है तथा उत्पादन की लागत भी बढ़ती है।

इस पूरी प्रक्रिया में यह कहना मुश्किल है कि कौन सा ऐसा समय होता है जब अमितव्ययिता स्थापित होने लगती है और कब यह अमितव्ययिता, मितव्ययिता से अधिक भारी पड़ जाती है। जिन व्यापरिक संगठनों में अभिमापन की मितव्ययिता को अनदेखा किया जाता है उनमें शीघ्र ही अभिमापन की अमितव्ययिता हावी हो जाती है।

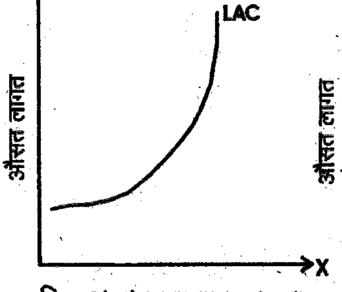

चित्र 2(क) उत्पादन (output)
प्रारम्भिक अमितव्ययिता
(Early Disconomics)

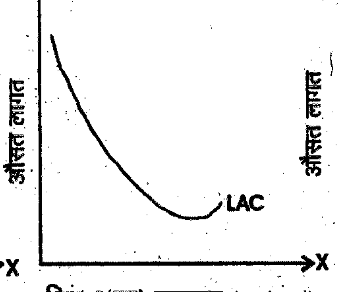

चित्र 2(ख) उत्पादन (output)
फैली हुयी मितव्ययिता
(Extended Economics)

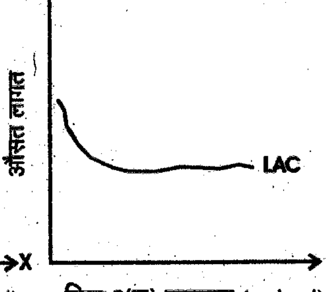

चित्र 2(ग) उत्पादन (output)
फैली हुयी स्थिर LAC
(Extended Const. LAC)

NMDC-222

यदि हम चित्र 2 (क) को देखें तो इस अवस्था में **LAC** (दीर्घकालीन औसत लागत) उत्पादन के कम आयतन पर ही घूम जाता है। अन्य स्थितियों में अभिमापन की मितव्ययिता अत्यन्त ही महत्वपूर्ण है। प्रबन्धन की कुशलता कम होने पर भी तकनीकी मितव्ययिताएं अमितव्ययिताओं की कुशलता कम होनेपर भी तकनीकी मितव्ययिताएं, अमितव्ययिताओं को उत्पादन की एक बड़ी रेन्ज पर सन्तुलित कर देती है। अतः यदि हम चित्र 2 (ख) में देखें तो **LAC** वक्र तब तक ऊपर नहीं घूमता जब तक कि बहुत ज्यादा उत्पादन न किया जाए। कई सारी वास्तविकत स्थितियों में इस प्रकार की कोई भी स्थितियों अंश के व्यवहार को नहीं बता पाती हैं यदि कोई फर्म एक साधारण स्तर के प्रक्रिया पर कार्य करती है तो सभी प्रकार की अमिमापन की मितव्ययिताओं को प्रदर्शित करने में सक्षम होती है तथा अभिमापन की अमितव्ययिता तब तक नहीं आती है जब तक कि उत्पादन बहुत ज्यादा स्तर तक नहीं बढ़ जाए। इस अवस्था में **LAC** एक लम्बा क्षैतिज भाग रखेगा जिसकी हम चित्र 2(ग) में देख सकते हैं। कुछ अर्थशास्त्रियों एवं बिजनेस एक्जिक्युटिव वैश्विक अर्थव्यवस्था में विभिन्न उत्पादन प्रक्रियाओं में देखने को मिल सकती है।

कभी कभी यह भी देखा गया है कि यह मानना बहुत ही आसान एवं वास्तविक है जब किसी फर्म के सभी उत्पादों की रेन्ज पर स्थिर **(Constant)** आय **(Return)** होते हैं। इस प्रकार की विशेष परिस्थिति में फर्म एक लम्बे समय में समान या स्थिर **(Constant)** लागत को अनुभव करती है तथा वक्र समतल होता है तथा सभी उत्पादन स्तर पर **LMC** के बराबर होता है। चित्र 3 में एक ऐसी ही फर्म का विवरण दिया गया है जिसमें एक स्थिर मात्रा में इकाइयों का उत्पादन 20रूपये की सीमान्त लागत पर हो रहा है।

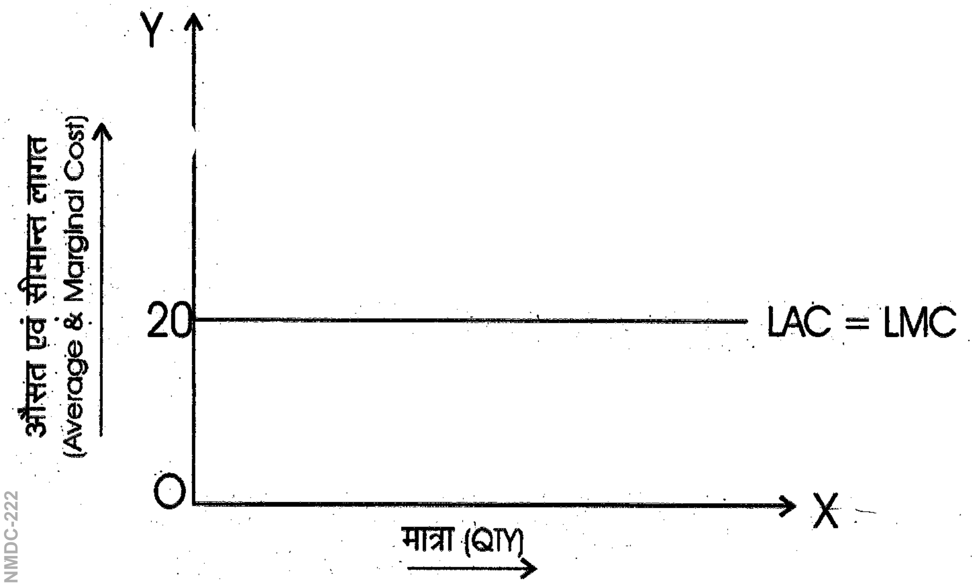

NMDC-222

इस प्रकार की फर्म न तो अभिमापन की मितवयिता को और न ही अभिमापन की अमितव्ययिता को अनुभव करती है और इसे स्थिर लागत का अनुभव करते हैं।

5.5 सारांश (Summary)

इस प्रकार में हमने देखा कि अभिमापन की मितव्ययिता के प्रभाव को धनात्मक रूप में प्रयोग करने के लिए हमें यह देखना आवश्यकत हैं कि यदि दीर्घकाल में वस्तुओं की मॉग बढ़ती है तो श्रमिकों एवं मशीनों आदि के सही सामन्जस्य में प्रयोग करने पर औसत लागत में कमी आती है। इसके अतिरिक्त विशिष्टीकरण एवं श्रम विभाजन तथ तकनीकी एवं प्रौद्योगिक कारक किसी भी उत्पादक के द्वारा बड़े पैमाने पर कार्य करने पर प्रति इकाई लागत को घटाने में सहायक होते हैं।

5.6 महत्वपूर्ण शब्द

अनुमाप की मितव्ययिता, अनुमाप की अमितव्ययिता

5.7 स्वपरख प्रश्न

प्र.1 अनुमाप की मितव्यीयता से आप क्या समझते हैं? चित्र द्वारा समझाइये।

प्र.2 अनुमाप की अमितव्ययिता का क्या अर्थ है?

प्र.3 मितव्ययिता एवं अमितव्ययीता में अंतर स्पष्ट करें।

प्र.4 टिप्पणी लिखिए।

1. अनुमाप की मितव्ययिता
2. अनुमाप की अमितव्ययिता

प्र.5 प्रारम्भिक अमितव्ययिता से आप क्या समझते हैं? चित्र द्वारा समझाइये।

प्र.6 फैली हुयी मितव्ययिता एवं फैली हुयी स्थिर में अन्तर स्पष्ट करें।

5.8 अन्य चयनित पाठन

1. Managerial Economics by Maheshwari

2. Text Book of Economics by Boyes

3. Managerial Economics by Dean

4. भारतीय अर्थव्यवस्था विकास एवं आयोजन बाई ए.के.अग्रवाल

5.9 सन्दर्भ पुस्तकें

- Managerial Economics by Mote, Paul, and Gupta.
- उच्चतर आर्थिक सिद्धान्त बाई एच.एल. आहूजा ।
- Managerial Economics by Thaumas Maurice.

इकाई–6 लागत प्रतिफल सम्बन्ध

इकाई की संरचना

6.0 उद्देश्य

6.1 प्रस्तावना

6.2 लघुकालीन लागत प्रतिफल सम्बन्ध

6.2.1 स्थिर लागत एवं उत्पादन

6.2.2 परिवर्तनशील लागत एवं उत्पादन

6.2.3 कुल लागत एवं उत्पादन

6.3 दीर्घकालीन लागत उत्पादन सम्बन्ध

6.4 लागत उत्पादन सम्बन्ध का मूल्यांकन

6.4.1 लेखा विधि

6.4.2 अभियान्त्रिक विधि

6.4.3 इकोनोमेट्रिक विधि

6.5 सारांश

6.6 महत्वपूर्ण शब्द

6.7 स्वपरख प्रश्न

6.8 अन्य चयनित पाठन

6.9 सन्दर्भ पुस्तकें

6.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के पश्चात शिक्षार्थी निम्नांकित उद्देश्य की पूर्ति में सक्षम होंगे।

– लागत प्रतिफल सम्बन्धों के विश्लेषण में

– लागत–उत्पादन सम्बन्धों के मूल्यांकन में

– लागत–प्रतिफल के सम्बन्धों को व्यापारिक निर्णयों हेतु समझने में।

UPDC-222

6.1 प्रस्तावना

लागत एवं प्रतिफल के मध्य सम्बन्ध व्यापारिक निर्णयों को समझने में सबसे महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। आर्थिक विश्लेषण में लागत प्रतिफल सम्बन्ध का महत्व इतना अधिक एवं आवश्यक है कि लागत फलन का अभिप्राय प्रायः लागत एवं उत्पादन की दर **(Rate of output)** से ही होता है, और इसके अन्तर्गत बाकी अन्य सभी स्वतंत्र परिवर्तनशील घटकों को स्थिर माना जाता है। अर्थशास्त्रियों का इस सम्बन्ध पर ज्यादा जोर इस लिए भी हैं क्योंकि बाजार में एवं अन्य आर्थिक वातावरण में होने वाले परिवर्तनों का इस पर तेजी से प्रभाव पड़ता है। पुनः यदि एक बार हम लागत प्रतिफल फलन को जान लेते हैं तो भविष्य की उत्पादन लागत, विभिन्न उत्पादन स्तरों पर हम लागत फलन को समायोजित करके जान लेते हैं जिससे कि अन्य प्रभावों जैसे माल का मूल्य श्रम की उत्पादकता, मजदूरी दर इत्यादि भी प्रतिबिम्बित हो जाते हैं।

यहॉ पर हमें यह जानना आवश्यक है कि लागत प्रतिफल का सम्बन्ध एक आंशिक सम्बन्ध होता है।

लागत मुख्यतः 2 प्रकार की होती हैं –

स्थिर लागत

परिवर्तनशील लागत

स्थिर लागतें उत्पादन के सापेक्ष स्थिर होती हैं जबकि परिवर्तनशील लागतें उत्पादन के सापेक्ष बदलती है। हम ये भी जानते हैं कि स्थिर एवं परिवर्तनशील लागतों में विभेद केवल लघुकाल में लिए होता है जबकि दीर्घकाल में सभी लागतें परिवर्तनशील लागतें होती हैं। चूंकि एक सीमा के उपरान्त किसी भी मशीन या भूमि या बिल्डिंग की स्थिर लागत उत्पादन के साथ निकलती रहती है और दीर्घकाल में यह नगण्य हो जाती है अर्थात लागत एवं प्रतिफल के सम्बन्ध को लघु एवं दीर्घकाल में अलग अलग पढ़ना ज्यादा आसान होगा।

6.2 लघुकालीन लागत–प्रतिफल सम्बन्ध (Short Run Cost-Output Relationship)

लधुकालीन लागत प्रतिफल सम्बन्ध किसी एक स्थिर संयंत्र **(fixed plant)** या किसी विशेष स्तर के औद्योगिक प्रक्रिया से संबंधित होता है।

NMDC-222

अर्थात, लागत में भिन्नता किसी संयंत्र की एक निश्चित क्षमता के उत्पादन (output) स्तर पर ही दर्शाता है तथा ये सम्बन्ध संयंत्र की क्षमता के बदलने पर बदल जाएगा।

अतः लागत प्रतिफल के भिन्नता से सम्बन्धित लघुकालीन फलन निम्न प्रकार का हो सकता है।

TC = f (x) + A

जहॉ TC = कुल लागत (Total Cost)

X = उत्पादन (output)

A = कुल स्थिर लागत (Total fixed cost)

यहॉ स्थिर लागत किसी दिये गये संयंत्र की क्षमता के लिए है। अन्य संयंत्रों के आकार के लिए इसका मूल्य भिन्न होगा। **f(x)** कुल परिवर्तनशील लागत को दर्शाता है।

निर्णय लेने के लिए एक उद्यमी को केवल लागत एवं प्रतिफल के मध्य ही सम्बन्ध जानना आवश्यक नहीं है अपितु लागत एंव प्रतिफल के विभिन्न प्रभारों के एकाकी रूप में जानना भी ज्यादा आवश्यक है। अतः हम लघुकाल में लागत प्रतिफल के सम्बन्ध को निम्नांकित विषयों के सन्दर्भ में जानेंगे।

क. स्थिर लागत एवं उत्पादन (Fixed cost and output)

ख. परिवर्तनशील लागत एवं उत्पादन (Variable cost and output)

ग. कुल लागत एवं उत्पादन (Total cost and output)

हम एक काल्पनिक उदाहरण को निम्नांकित तालिका में प्रदर्शित कर लागत आय के विभिन्न सम्बन्धों को जानने का प्रयास करेंगे।

उत्पादन की इकाई	कुल स्थिर लागत	कुल परिवर्तनशील लागत	कुल लागत	सीमान्त लागत	औसत स्थिर लागत	औसत परिवर्तन शीललागत	औसत कुल लागत
rc	TFC	TVC	TC	MC	AFC	AVC	ATC
0	176	0	176	-	-	-	-
1	176	75	251	75	176	75	251
2	176	130	306	55	88	65	153
3	176	175	351	45	59	58	117
4	176	209	385	34	44	52	96

NMDC-222

5	176	238	414	29	35	48	83
6	176	265	441	27	29	44	74
7	176	289	405	24	25	41	66
8	176	312	488	23	22	39	61
9	176	328	504	16	20	36	56
10	176	344	520	16	18	34	52
11	176	367	543	23	16	33	49
12	176	400	576	33	15	33	48
13	176	448	624	48	14	34	48
14	176	510	686	62	13	36	49
15	176	600	776	90	12	40	52

Table 1 : लागत प्रतिफल सम्बन्ध (सभी लागत रूपयों में)

6.2.1 स्थिर लागत एवं उत्पादन

यदि परिभाषा को दृष्टिगत करें तो स्थिर लागत उत्पादन के साथ परिवर्तितित नहीं होता। इस प्रकार से जितनी ज्यादा इकाइयों का हम उत्पादन करेंगे इतनीही कम लागत स्थिर लागत प्रति इकाई आयेगी. तथा सीमान्त स्थिर लागत शून्य ही रहेगी। हमारे काल्पनिक उदाहरण में कुल स्थिर लागत 176 रूपये है। जो कि उत्पादन की इकाई से प्रेरित नहीं है। अथवा सम्बन्धित नहीं हैं एवं औसत स्थिर लागत उत्पादन के बढ़ने पर एक ही प्रकार से घट रही है। औसत स्थिर लागत 176 रूपये हैं जब उत्पादन एक इकाई है, 88 रूपये हैं जब उत्पादन 2 इकाई तथा इसी प्रकार से 12 रूपये है। जब उत्पादन 15 इकाई हैं इसी प्रकार से कुल औसल लागत का वक्र 176 रूपये पर क्षैतिज हैं तथा औसत स्थिर लागत वक्र लगातार नीचे गिर रहा है। चित्र 1 से सन्दर्भ लेते हैं ।

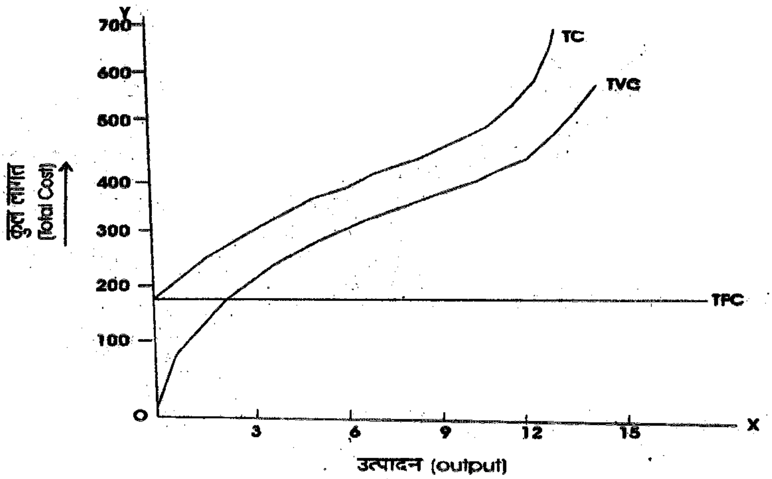

यहाँ पर हम ये भी देखते हैं औसत स्थिर लागत वक्र आयताकार हाइपरबोला (**Rectangular hyperbola**) है।, स्थिर लागत एवं उत्पादन के बीच का सम्बन्ध सभी व्यवसायों के लिए सही होता है।

6.2.2 परिवर्तनशील लागत एवं उत्पादन

कुल परिवर्तनशील लागत उत्पादन के बढ़ने के साथ बढ़ती है परन्तु फिर भी ये सम्बन्ध रेखीय नहीं होता है अर्थात प्रत्येक उत्पादित इकाई के अनुसार ही परिवर्तनशील लागत में वृद्धि नहीं होती हैं ।

आर्थिक सिद्धान्त के अनुसार इसकी प्रकृति कुछ इस प्रकार से होती है कि प्रारम्भ में तो जैसे जैसे उत्पादन बढ़ता है कुल परिवर्तनशील लागत घटती हुई दर से बढ़ती है उसके बाद से स्थिर दर से बढ़ती है तथा बाद में बढ़ती हुई दर से बढ़ती हैं । अर्थात कुल परिवर्तनशील लागत एक स्तर तक तो घटती है उसके बाद स्थिर रहती हैं तथा पुनः और उत्पादन बढ़ने पर यह बढ़ जाती है और यह घटते प्रतिफल के नियम को दर्शाता है उदाहरणार्थ किसी भी मात्रा के उत्पादन के लिए श्रम की आवश्यकता रेखीय अनुपात में नहीं बदलती है। यदि किसी फर्म को एक यूनिट उत्पाद का भी उत्पादन करना हो तो उसे कुछ श्रमिकों की आवश्यकता होती है और एक निश्चित सीमा तक उत्पादन बढ़ने पर भी अतिरिक्त श्रमिकों की आवश्यकता नहीं होती है जब तक कि उत्पादन बहुत ज्यादा नहीं बढ़ाना पड़ता है और यदि इस सीमा से अधिक हमें पुनः उत्पादन बढ़ाना हो तो कुछ श्रमिकों को हमें और बढ़ाना पड़ेगा। परन्तु इतने श्रमिक पुनः इससे अगली सीमा तक उत्पादन वृद्धि के लिए उपयुक्त होंगे। परन्तु इसके विपरीत यदि हम कच्चे माल की लागत को देखें तो यह उत्पादन वृद्धि के साथ सीधे अनुपात में बढ़ता है इसके अतिरिक्त कुछ अन्य परिवर्तनशील लागतें भी होती हैं जैसे कि स्टेशनरी, बिजली के बिल इत्यादिं जो कि उत्पादन के स्तर पर भिन्न प्रकार से बदलती है। यदि एक बार उत्पादन पर्याप्त स्तर पर पहुँच जाता है तो उसके बाद उत्पादन में वृद्धि बढ़ते हुए कम मे मंहगी हो जाती है। क्योंकि इस स्तर पर परिवर्तनशील लागत की वस्तुएं पहले की अपेक्षा ऊंचे दामों पर मिल सकतीं हैं या उपयुक्त मात्रा में नहीं मिल सकती हैं इसके अतिरिक्त भी कुल परिवर्तन लागत एवं उत्पादन सम्बन्ध के रेखीय न होने के कारण उत्पादन प्रक्रिया घटते प्रतिफल के नियम के अनुसार हाता हैं

यह भी कह सकते हैं कि इस नियम के अनुसार जैसे जैसे किसी उत्पादन के स्थायी या स्थिर घटकों का सापेक्ष उत्पादन की परिवर्तनशील

NODC-222

घटक बढ़ते हैं उस परिवर्तनशील घटक के सीमान्त उत्पाद पहले बढ़ते है, फिर स्थिर रहते हैं तथा उसके बाद घटना प्रारम्भ करते हैं। इस प्रकार से यदि साधन की कीमत दी हो तो कुल परिवर्तनशील लागत में वृद्धि पहले उत्पादन के बढनेके साथ घटती है फिर स्थिर रहती है तथा उसके बाद बढ जाती है। यहाँ पर हमें यह कहना भी जरूरी है कि परिवर्तनशील लागत का साधारण व्यवहार उपर्युक्त वर्णन के अनुसार ही होता है परन्तु यह उत्पाद से उत्पाद भिन्न होता है। पूँजी प्रबल उत्पादों में साधारणतया प्रथम चरण श्रम प्रबल उत्पादों की अपेक्षा ज्यादा लम्बा होता है।

यदि हम कुल परिवर्तनशील लागत एवं उत्पादन सम्बन्ध के सम्बन्ध में देखें तो औसत परिवर्तनशील लागत फलनका व्यवहार ऐसा होगा कि यह पहले उत्पादन की वृद्धि के साथ गिरेगा, उसके बाद थोड़े से उत्पादन के लिए स्थिर हो जाता है तथा उसके बाद शनैः शनैः उत्पादन की प्रत्येक वृद्धि के साथ बढ़ जाता है । चूँकि कुल स्थिर लागत उत्पादन के साथ बदलती नहीं है सीमान्त लागत कुल परिवर्तनशील लागत में बदलाव के बराबर हो जाती है। उत्पादन के सापेक्ष सीमान्त लागत में अन्तर औसत परिवर्तनशील लागत के समान होती हैं

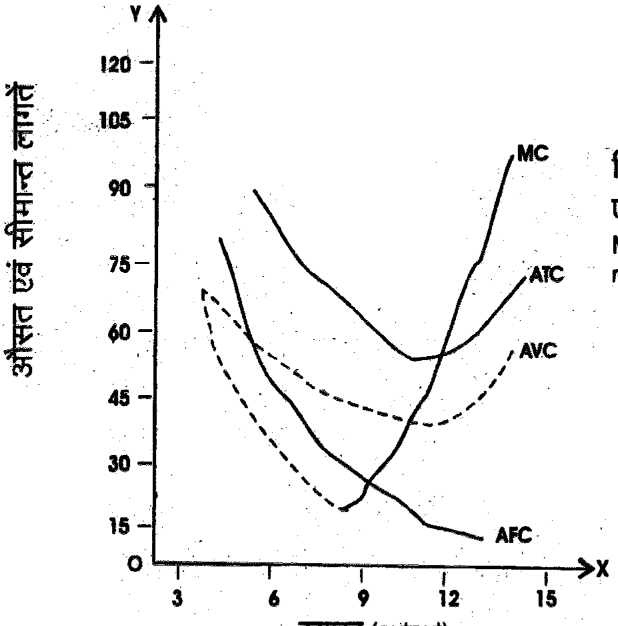

चित्र-2 औसत एवं सीमान्त लागत एवं उत्पादन सम्बन्ध (Average and Marignal cost and output relationship)

लागत उत्पादन सम्बन्ध के काल्पनिक उदाहरण के बारे में पीछे दी गयी तालिका एवं चित्र 1 एव 2 परिवर्तनशील लागत एवं उत्पादन के मध्य सैद्धान्तिक सम्बन्ध को दर्शाते हैं कुल परिवर्तनशील लागत एकरसता से शून्य उत्पादन पर शून्य से 15 इकाई उत्पादन पर 600रूपये तक बढ़ रही है। यह शून्य उत्पादन एवं 9इकाइ के बीच घटती दर से बढ़ता है। यह वृद्धि की दर

75 रू.से 16 रू. तक गिर रही है। इसकी वृद्धि दर उत्पादन स्तर के 8 से 9 या 9 से 10 तक बढ़ने पर समान है । उत्पादन की 10यूनिट के बाद कुल परिवर्तनशील लागत में वृद्धि बढ़ती हुयी दर पर प्रदर्शित होती है। चित्र 1 में यह TVC वक्र में प्रदर्शित होता है। यहां पर यह गौर करने का विषय है कि वक्र उत्पत्ति के स्थान से निकलता है तथा नीचे से यह अवतल है। दी गयी तालिका में औसत परिवर्तनशील उत्पादन रेन्ज शून्य से 11 तक एकरसता से गिरती है। उत्पादन स्तर 11 एवं 12 पर स्थिर रहती है तथा 12 यूनिटों के उत्पादनस्तर के बाद एकरसता से बढ़ती हैं ।

चित्र 2 में AVC वक्र U आकार का है। सीमान्त लागत AVC वक्र की ही भांति व्यवहार करती है। यह उत्पादन स्तर 9 एवं 10पर न्यूनतम है। चित्र 2 MC वक्र भी U आकार का है।

6.2.3 कुल लागत एवं उत्पादन (Total cost and Output)

कुल लागत उत्पादन के बढ़ने पर बढ़ती है। अपने एक घटक के लिए (TVC) उत्पादन (output) का एक बढ़ता हुआ फलन है तथा इसका एक ही घटक TFC उत्पादन (output) के सभी स्तरों की दी गयी मूल्य पर लेता है। हमारे काल्पनिक उदाहरण में कुल लागत 176 रूपये हैं जब कि उत्पादन शून्य है तथा यह उत्पादन 15 यूनिटों पर 776 रूपये तक एकरसता से बढ़ता है । वक्र के समानान्तर है। (चित्र 1) TVC वक्र की ही भांति यह नीचे से अवतल है परन्तु पहले के असमानयह लागत अक्ष को एक धनात्मक बिन्दु पर काटती है। जो कि कुल स्थिर लागत के बराबर है।

औसत कुल लागत (ATC), जिसे औसत लागत भी कहते हैं पहले उत्पादन के बढ़ने के साथ गिरती है फिर कुछ उत्पादन (output) रेन्ज तक स्थिर रहती है तथा उसके उपरान्त उत्पादन के प्रत्येक वृद्धि के साथ बढ़ती हैं । इस प्रकार का व्यवहार हमारे काल्पनिक उदाहरण (तालिका) में प्रदर्शित होता है तथा चित्र 2 में प्रदर्शित होता है। परिणामी ATC वक्र U आकार का है। ऐसा व्यवहार इसे दोनों घटकों AFC तथा AVC के कारण है। अत्यन्त कम मात्राओं पर ATC उच्च होता है चूंकि स्थिरलागत कुछ यूनिटों पर बंट जाती हैं जैसे जैसे मात्रा बढ़ती है स्थिर लागत और ज्यादा यूनिटों पर बंट जाती है। इसके अतिरिक्त परिवर्तनशील कारकों का प्रयोग ज्यादा कुशलता से किया जा सकता है। एक स्थिर संयंत्र एवं एक दूसरे की तुलना में जैसे जैसे मात्रा बढ़ती है किसी भी संयंत्र के आधार के अनुसार एक ऐसी अवस्था आती है जहाँ ATC अपने न्यूनतम स्तर पर होती है। लागत के हिसाब से इस

बिन्दु पर लागत की दृष्टि से उत्पादन का सबसे अनुकूलतम स्तर मिलता है इस बिन्दु के पश्चात ATC बढ़ती है। इसके बढ़नेका कारण परिवर्तनशील कारकों को पहले की भांति कुशलता से इस्तेमाल न कर पाना है। जब AVC,ATC की वृद्धि का महत्व AFC के कम होने के लाभसे अधिक हो जाताहै।

AVC, ATC एवं MC के मध्य सम्बन्धों को संक्षिप्त में निम्न प्रकार से दर्शा सकतें हैं।

(क) सभी तीनलागत माप पहले गिरती हैं फिर स्थिर रहती है। तथा उसके बाद उत्पादन (output) के वृद्धि के साथ बढ़ती है।

(ख) MC के परिवर्तन की दर AVC के परिवर्तन की दर से अधिक है तथा इसीलिए MC का न्यूनतम स्तर एक ऐसे उत्पादन (output) पर है जिस उत्पादन (output) पर AVC न्यूनतम है।

(ग) AVC = MC जब AVC सबसे कम है।

(घ) ATC = MC जब ATC सबसे कम है।

6.3 दीर्घकालीन लागत–उत्पादन सम्बन्ध (Long run Cost-Output Relationship)

दीर्घकाल में उत्पादन का कोई भी स्थिर कारक नहीं होता है। अतः कोई स्थिर लागत नहीं होती है। आंशिक कुल लागत फलन निम्न प्रकार से होता हैं ।

$$TC = f(x,k)$$

जहाँ का तात्पर्य संयंत्र (Plant) के आकार / क्षमता से है। जैसे-जैसे K परिवर्तित होता है, TC परिवर्तित होती है। अतः दीर्घ कालीन लागत फलन (3-14) में लघु कालीन लागत फलन का एक परिवाह है, जिसमें के प्रत्येक मूल्य के लिए एक है। यहां एक महत्वपूर्ण प्रश्न यह उठता है कि दिये गये उत्पादन (output) एवं संयंत्र आकार (plant size) पर कुल लागत में सम्बन्ध क्या है? यह सम्बन्ध एक दिशीय नहीं है। यदि उत्पादन (output) कम है, छोटे संयंत्र के लिए कुल लागत, बड़े संयंत्र के लिए कुल लागत से कम होगी तथा यह बड़े उत्पादन के लिए उल्टा होता है। ऐसा इसलिए होता है क्योंकि बड़े संयंत्रों की अधिक क्षमता होने के कारण कम उत्पाद (output) पर इसकी कम क्षमता का प्रयोग होगा तथा छोटे संयंत्रों में अधिक उत्पादन (output) के लिए वे सक्षम नहीं होंगे। अतः लघुकालीन कुल लागत वक्र का परिवार प्रत्येक संयंत्र

आकार के लिए निम्नांकित चित्रों के द्वारा प्रदर्शित किया जा सकता है।

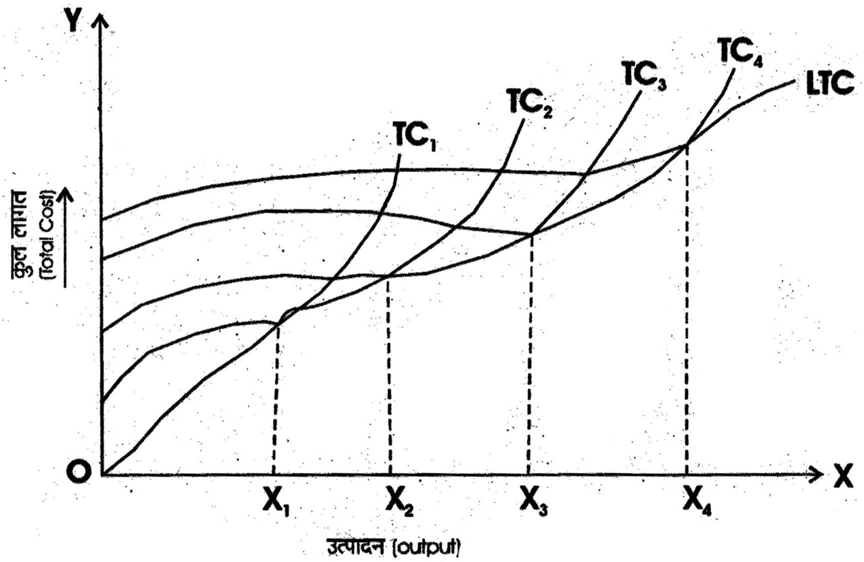

चित्र : 3(क) लघु कालीन कुल लागत वक्र (Short run total cost curve) लघुकाल में, वर्तमान स्थिर संयंत्र के द्वारा केवल संभव रेन्ज में ही उत्पादन में भिन्नता सम्भव होती है। परन्तु दीर्घकाल में संयंत्र के आकार एवं क्षमता के परिवर्तन करने की भी संभावना रहती है तथा सभी प्रकार की अपेक्षित भिन्नताएं सम्भव होती है। अत: दीर्घ कालीन लागतें उत्पादन (output) की लागतों के इन विभिन्न स्तरों से सम्बन्धित होती है जो उत्पादन (production) के स्तर अथवा क्षमता को बदलकर प्राप्त किये जाते हैं।

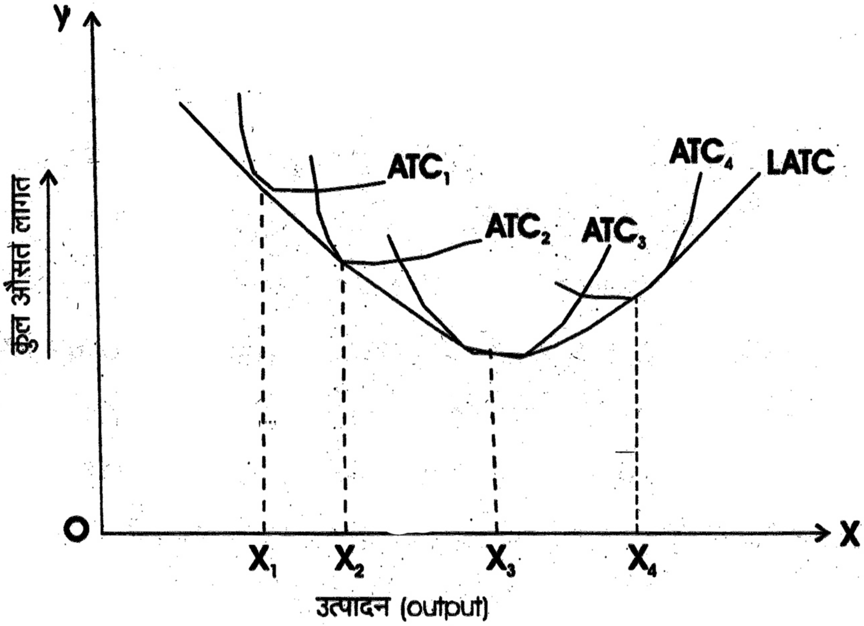

चित्र : 3(ख) लघु कालीन कुल लागत वक्र (Short run total average cost

UMDC-222

curve)

लघु कालीन लागत वह न्यूनतम लागत है जिस पर कोई भी उद्यमी किसी दिये गये संयंत्र की क्षमता पर मनचाहा उत्पादन (production) कर सकता है। इसके विपरीत, दीर्घकालीन लागत वह न्यूनतम लागत होती है जिस पर कोई उद्यमी किसी भी संयंत्र क्षमता पर किसी भी उत्पादन (production) क्षमता को प्राप्त कर सकता है। अत: दीर्घ कालीन लागत वक्र लघु कालीन लागतों वक्रों के परिवार का एक "envelop" होता है जो कि चित्र (क) में प्रदर्शित है। इस चित्र में TC_1, TC_2 एवं TC_3 लघुकालीन लागत वक्र है। जबकि संयंत्र आकार/क्षमता 1, 2 एवं 3 इकाई क्रमशः हैं तथा LTC दीर्घकालीन कुललागत वक्र हैं। यह देखा गया है कि LTC, TC_1 से सभी मात्राओं के लिए कम है सिवाय x_1 के जो TC_2 से सभी मात्राओं के लिए कम है सिवाय x_2 के आदि। सम्बन्धित लघु कालीन औसत कुल लागत वक्र (ATC_1, ATC_2) तथा दीर्घ कालीन औसत कुल लागत वक्र (LATC) चित्र 3(ख) में निचले हिस्से में प्रतीत होते हैं। यह देखा गया है कि दीर्घकालीन एवं लघु कालीन औसत लागत वक्र को x_1, x_2 तथा x_3 बिन्दु के स्पर्श रेखा पर LATC एवं लघुकाल ATC वक्र के बीच ही समान हैं। उन बिन्दुओं की स्पर्श रेखाएं के न्यूनतम बिन्दु को केवल दीर्घकाल में दर्शाती है न कि लघु काल में। दीर्घकाल में औसत कुल लागत वक्र U आकार का होता है जिस प्रकार से लघुकालीन औसत कुल लागत वक्र होते हैं परन्तु पहले वाला दूसरे की अपेक्षा कुछ समतल होता है। अभिमापन की मित्वययिताएं एवं अमितव्ययिताएं इस U आकार के LATC वक्र के लिए जिम्मेदार होती हैं। अभिमापन की मितव्ययिताएं एवं अमित्वययिताएं हम भिन्न इकाई में पढ़ेंगे।

6.5 लागत–उत्पादन सम्बन्ध का मूल्यांकन (Estimation of Cost Output Relationship

पूर्व के सामग्री में हमने लागत - उत्पादन सम्बन्ध (Cost-output relationship) की प्रकृति का अध्ययन किया। इसमें हमें ज्ञात हुआ कि कुल लागत (total cost) उत्पादन (output) के साथ सीधे तौर पर परिवर्तित होती है। कुल लागत पहले धीमीदर से बढ़ती है, फिर स्थिर दर से बढ़ती है एवं इसके बाद बढ़ती हुई दर से बढ़ती है। औसत लागत एवं सीमान्त लागतों का परिणामी व्यवहार ऐसा होता है कि दोनों पहले गिरती हैं, अपने क्रमशः न्यूनतम स्तर पर पहुँचती हैं और उसके बाद बढ़ती है। इसका ज्ञान हमको उत्पादन (production) सम्बन्धी निर्णय क्षमता में आवश्यक होता है। इसके अतिरिक्त एक निर्णयकर्ता को यह भी जिज्ञासा होगी कि एक स्तर से दूसरे

स्तर तक उत्पादन (output) बढ़ाने पर औसत लागत में कितनी वृद्धि होगी? किस उत्पादन (output) स्तर पर औसत लागत न्यूनतम है? किस क्षमता का संयंन उसे स्थापित करना चाहिए। इत्यादि। इसे जानने के लिए हमें किसी फर्म का लागत-उत्पादन सम्बन्ध (cost output relationship) की अनुभव आधारित अध्ययन की आवश्यकता होगी।

लागत उत्पादन सम्बन्ध (cost output relationship) को मूल्यांकित करने के लिए हम निम्नांकित 3 विधियों का अध्ययन कर सकते हैं।

(क) लेखा विधि (Accounting Method)

(ख) अभियांत्रिक विधि (Engineering Method)

(ग) एकनोमेट्रिक विध (Econometric Method)

6.5.1 लेखा विधि (Accounting Method)

इस विधि के अन्तर्गत लागत उत्पादन सम्बन्ध (Cost output relationdhip) का आंकलन कुल लागत को स्थिर लागत (fixed cost) परिवर्तनशील लागत (variable cost) एवं अर्धपरिवर्तनशील लागत (semi-variable cost) में वर्गीकृत करके किया जाता है। इन घटकों को अलग - अलग करके मूल्यांकित किया जाता हैं। औसत परिवर्तशील लागत, वे सीमाएँ जिनके अन्तर्गत अर्ध परिवर्तनशील लागतें स्थिर होती हैं तथा स्थिर लागतों को निरीक्षण एवं अनुभव आधार पर मूल्यांकित किया जाता है। इतना करने के पश्चात् कुल लागत एवं उसके बाद औसत एवं सीमांत लागतों को उनके प्रत्येक उत्पादन (output) स्तर के लिए साधारण अंकगणितीय विधि (simple arithmetic) से ज्ञात कर लिया जाता है। लेखा विधि काफी साधारण प्रतीत होती है। इस विधि के द्वारा लागत-उत्पादन सम्बन्ध के अच्छे मूल्यांकन हेतु लेखा को विस्तृत रू से उसके अवयवों को अलग - अलग करके विभिन्न वर्षों का एक रिकार्ड बनाने की आवश्यकता होती है तथा व्यक्ति को उत्पादकता दर में इस दौरान होने वाले उतार-चढ़ाव का अनुभव होना चाहिए।

6.5.2 अभियानिन्त्रक विधि (Engineering Method)

अभियान्त्रिक विधि के द्वारा लागत-उत्पादन (cost output) सम्बन्ध का मूल्यांकन विभिन्न घटको (input factors) के भौतिक यूनिटों के द्वारा निकाला जाता है उदाहरणार्थ छ संयंत्र, श्रम घण्टे, पदार्थ / माल का उपभोग एव दिये गये उत्पादन (output) के लिए अन्य लागत (inputs) यह मूल्यांकन अभ्यास कर्त्ताओं के

सयोजित या मिले जुले निर्णयों के द्वारा संयंत्र एवं मशीनों की दी गयी क्षमता दरों के आधार पर तथा लागत-उत्पादन (input outut norms) नियमों को दृष्टिगत करते हुए किया जाता है। यदि एक बार किसी उत्पादन स्तर (output level) की भौतिक इकाई को निकाल लिया जाता है, तो इनका गुणन सम्बन्धित वर्तमान या अपेक्षित साधन कीमत से कर दिया जाता है तथा आपस में जोड़कर उत्पादन स्तर (output level) के लिए लागत मूल्यांकन निकाला जाता है। यह अभ्यास विभिन्न मात्राओं के लिए दोहराया जाता है तथा इस प्रकार लागत-उत्पादन (cost output) सम्बन्ध प्राप्त किया जाता है। इस विधि को सफल प्रयोग के लिए लागत - उत्पादन (input output) नियमों का अच्छा अनुबव तथा साधन कीमतों में स्थिरता का होना आवश्यक है। इस प्रकार से विधि की सीमा/बन्धन (limitation) लेखा विधि की भाँति ही है। इस विधि का उपयोग लेखा विधि से ज्यादा महत्वपूर्ण उस दसा में हो सकता है। जब लेखा के रिकार्डों से लागत व्यबहार (cost behaviour) का एक व्यवस्थित इतिहास नहीं मालूम हो पाता हो या कुछ महत्वपूर्ण तकनीकी बदलाव अपेक्षित हो।

6.5.3 इकोनोमेट्रिक विधि (Econmetric Method)

इस विधि के अन्तर्गत लागत एवं उत्पादन (Output) के इतिहास का डाटा लागत्त-उत्पादन (Cost output) सम्बन्धों को मूल्यांकित करने में किया जाता है। पहले व्यवहारिक (Functional) रूप को चुना जाता है तथा फिर विधि को अपनाते हुए चुंनित रूप को मूल्यांकित किया जाता है। इस उद्देश्य के लिए निम्नांकित रूप होते हैं।

(a) Linear (रेखीय) $TC = a_1 + b_1x$

(b) Quadratic (चतुष्दिक) $TC = a_2 + b_2x + c_2 x_2$

(c) Cubic (घनाकार) $TC = a_3 + b_3x + c_3 x^2 + d_3x^3$

जहाँ x = उत्पादन (output)

$a_1, a_2, a_3, b_1, b_2, c_2, c_3$ एवं d_3 स्थिरांक है।

रेखीय कुल लागत फलन एक स्थिर सीमान्त लागत देती है तथा एकरसता से गिरते हुए औसत लागत वक्र को देती है। चतुष्दिक (quadratic) फलन U के आकार को औसत लागत वक्र का निर्माण करती है परन्तु यह एकरसता से बढ़ते हुए सीमान्त लागत वक्र पर लागू होता है। घनाकार लागत फलन (cost function) U आकार के औसत लागत वक्र एवं आकार के सीमान्त लागत वक्र दोनों के ही साथ एक समान होता है अतः यदि किसी को सद्धान्तिक लागत उत्पादन सम्बन्ध (theoritical cost

output relationship) की वैधता जाननी हो तो घनाकार लागत फलन की परिकल्पना करनी चाहिए।

इस विधि में हम समय-सारणी (time series) या Cross section डाटा का इस्तेमाल लागत-उत्पादन (cost output) सम्बन्ध को जानने में कर सकते हैं। इस विधि की मुख्य विशेषता यह है कि यह केवल आंशिक लागत फलन को जानने में ही प्रयुक्त नहीं होती अर्थात् लागत-उत्पादन सम्बन्ध (cost output relationship), इस अवधारणा के साथ कि अन्य लागत के अवयव (जैसे की साधन-कीमत, साधन कुशलताएँ, तकनीकि इत्यादि) स्थिर हों, परन्तु व्यापक लागत फलन (Comprehensive cost function) को जानने में भीं सहायक हैं जो लागत को प्रभावित करने वाले सभी कारकों की भिन्नता को अनुमति देता है। इसको हम साधारणतया साधन कीमतों, साधन उत्पादकताओं एवं तकनीकियों को फलन में अलग आकस्मिक भिन्न (variable) डालकर करते हैं। इसकी एक ही कमी यह है कि जिस वस्तु के लागत फलन की मात्रा निकालनी होती है उसका एक अच्छे लम्बे काल का एतिहासिक डाटा चाहिए होता है या अधिक से अधिक संख्या में उत्पादकों का रिकार्ड चाहिए होता है। चूंकि आज के सूचना प्रौद्योगिकी युग में डाटा को रिकार्ड करना तथा संचयित करना बहुत आसान हो गया है। अत: यह समस्या भी सहायक हो चुकी है। परन्तु इस पर भी यदि संयुक्त उत्पादों पर सहभागी लागत प्रयुक्त हो तो इस विधि का प्रयोग मुश्किल हो जाता है।

लेखा एवं अभियान्त्रिक विधियों का प्रयोग से Econometric Method ज्यादा सरल एवं सुगम है जबकि Econometric method का उपयोग राष्ट्रीय या औद्योगिक स्तर पर ज्यादा वांछनीय है। Econometric Method का प्रयोग आजकल काफी बढ़ गया है तथा समष्टि स्तर (Macro level) के साथ ही साथ व्यांष्टि स्तर (Micro level) पर भी उसके प्रयोग के अच्छे लक्षण हैं।

लागत - उत्पादन (Cost output) सम्बन्ध के मूल्यांकन के विभिन्न उपयोग हैं उदाहरणार्थ-

(क) स्थिर संयंत्र एवं उपकरणों के आकार / क्षमता का अनुकूलतम स्तर जानने के लिए

(ख) किसी दिये गये संयंत्र क्षमता का अनुकूलतम उत्पादन (output) जानने के लिए

MDC-222

(ग) पूर्ति फलन (supply function) को जानने के लिए

6.6 सारांश

लघु कालीन लागत-उत्पादन सम्बन्ध अनुकूलतम उत्पादन स्तर को एवं लघु कालीन पूर्ति फलन को जानने में सहायक होते हैं तथा दीर्घ कालीन पूर्ति सम्बन्ध (Long run supply relations) संयंत्र के अनुकूलतम क्षमता को एवं दीर्घकालीन पूर्ति फलन जानने में सहायक होते हैं। जब कोई उद्यमी अपने output को बढ़ाने अथवा घटाने के बारे में विचार करता है तो अनुकूलतम उत्पादन (optimum output) के ज्ञान का होना महत्वपूर्ण होता है जबकि अनुकूलतम स्तर अथवा संयंत्र क्षमता का ज्ञान जब ज्यादा आवश्यक होती है जब किसी पुराने संयंत्र की क्षमता को बढ़ाना हो या नया संयंत्र लगाना हो।

6.7 अन्य चयनित पाठन

(1) Managerial Economics by Maheshwari

(2) Text Book of Economics by Boyes

(3) Managerial Economics by Dean

(4) भारतीय अर्थव्यवस्था विकास एवं आयोजन by ए० के० अग्रवाल

6.8 सन्दर्भ पुस्तकें

(1) Managerial Economics by Mote, Paul & Gupta

(2) उच्चतर आर्थिक सिद्धान्त by एच०एल० आहूजा

(3) Managerial Economics by Thaumas Maurice

6.9 स्व–परख प्रश्न

प्र०-1 लागत से आप क्या समझते हैं? यह कितने प्रकार की होती है?

प्र०-2 लघु-कालीन लागत प्रतिफल के सम्बन्ध को समझाइये।

प्र०-3 दीर्घ कालीन लागत प्रतिफल के सम्बन्ध को समझाइये।

प्र०-4 स्थिर लागत एवं उत्पादन में सम्बन्ध समझाइये।

प्र०-5 स्थिर लागत एवं परिवर्तनशील लागत में अन्तर स्पष्ट करें।

NMDC-222

प्र०-6 कुल लागत से आप क्या समझते हैं ? इसका उत्पादन में क्या महत्व है।

प्र०-7 आप लागत-उत्पादन सम्बध का मूल्यांकन कैसे करेंगे?

प्र०-8 निम्नलिखित पर टिप्पणी लिखिए-

1- लेखा विधि

2- अभियांत्रिक विधि

3- एकनोमेट्रिक विधि

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय

M.Com-106

प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र

MANEGERIAL ECONOMICS

खण्ड

3

बाजार

इकाई -1 5

पूर्ण प्रतियोगी बाजार में कीमत निर्धारण

इकाई -2 26

अपूर्ण या एकाधिकृत एवं एकाधिकार प्रतियोगिता में कीमत निर्णय

इकाई -3 44

अल्पाधिकार

इकाई -4 61

गैर कीमत प्रतिस्पर्धा

इकाई -5 72

कीमत विभेद

इकाई -6 84

उत्पादन विभेदन

NMDC-222

परामर्श-समिति

प्रो0 नागेश्वर राव	कुलपति - अध्यक्ष
डॉ0 हरीशचन्द्र जायसवाल	वरिष्ठ परामर्शदाता - कार्यक्रम संयोजक
श्री एम0 एल0 कनौजिया	कुलसचिव - सचिव

संरचनात्मक सम्पादन

डॉ0 मंजूलिका श्रीवास्तव	निदेशक, दूरस्थ शिक्षा परिषद्, नई दिल्ली

विषयगत सम्पादन

प्रो0 मूल मोतिहार	प्रोफेसर, मोनिरबा, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

लेखक

डॉ0 नागेन्द्र यादव	एसोसिएट प्रोफेसर, प्रबन्धन अध्ययन विद्याशाखा, उ0 प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

प्रस्तुत पाठ्य सामग्री में विषय से सम्बन्धित सभी तथ्य एवं विचार मौलिक रूप से लेखक के स्वयं के हैं।

© उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

सर्वाधिकार सुरक्षित। इस पाठ्य-सामग्री का कोई भी अंश उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय की लिखित अनुमति लिए बिना, मिमियोग्राफ अथवा किसी अन्य साधन से पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

NMDC-222

खण्ड-3 परिचय

प्रस्तुत खण्ड 3 को 6 इकाईयों में विभक्त किया गया है। इकाई-1 में पूर्णप्रतियोगिता की विशेषताओं को बताते हैं, इस बाजार, में कीमत निर्धारण की विधि का उल्लेख किया गया है।

इकाई - 2 अपूर्ण या एकाधिकृत प्रतियोगिता एक अधिकार के अन्तर्गत कीमत निर्धारण से सम्बन्धित है। इस इकाई में अपूर्ण प्रतियोगिता एवं एकाधिकार को बीच अन्तर का विवरण भी दिया गया है।

अल्पाधिकार की विशेषतायें एवं कीमत निर्धारण की विस्तृत व्याख्या इकाई-3 में की गयी है।

इकाई- 4 गैर-कीमत प्रतिसपर्द्धा से सम्बन्धित है। इस इकाई में गैर कीमत प्रतिस्पर्द्धा के विभिन्न स्वरूपों का विस्तार में वर्णन किया गया है।

अलग-अलग क्रेताओं से अलग-अलग मूल्य लेना अर्थात् कीमत - विभेद की व्याख्या इकाई - 5 में की गयी है।

इकाई - 6 उत्पादन विभेदन से सम्बन्धित है जिसके उत्पाद विभेदन नीति के अन्तर्गत विभिन्न अवयवों की विस्तृत चर्चा की गयी है जो उत्पाद विभेदीकरण में सहायक होते हैं।

इकाई 1 : पूर्ण प्रतियोगी बाजार में कीमत निर्धारण

इकाई की संरचना

1.1 उद्देश्य

1.2 प्रस्तावना

1.3 बाजारः भाषाएं

1.4 बाजार की सीमाएं

1.5 पूर्ण प्रतियोगिता स्थिति में कीमत निर्धारण

1.6 पूर्ण प्रतियोगिता में कीमत निर्धारण— दो सिद्धान्त

1.6.1 उत्पादन की लागत सिद्धान्त

उत्पादन की लागत सिद्धान्त : तीन प्रश्न

1.6.2 उपयोगिता सिद्धान्त

1.7 साम्यावस्था

1.7.1 साम्यावस्था में बदलाव के आठ प्रकार

1.8 पूर्ण प्रतियोगिता बाजार में कीमत निर्धारणः तीन अवस्थाएं

1.8.1 बाजार काल में कीमत निर्धारण

1.8.2 लधुकाल में कीमत निर्धारण

1.8.3 दीर्घकाल में कीमत निर्धारण

1.9 सारांश

1.10 महत्वपूर्ण शब्द

1.11 अन्य चयनित पाठन

1.12 सन्दर्भ पुस्तके

1.13 स्व.परख प्रश्न

1.1 उद्देश्य :

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात छात्रों को—

- बाजारों की प्रकृति को समझने में मदद मिलेगी

- विभिन्न स्थितियों में कीमत निर्धारण को समझने को मिलेगा
- बाजारों का वर्गीकरण को जानने में सहायता होगी।
- पूर्ण प्रतियोगी बाजार में कीमत निर्धारण के विश्लेषण में
- उत्पादों की लागत के निर्धारण को क्रियान्दित करने में
- कीमत परिवर्तन के प्रभाव को माग एवं पूर्ति के सापेक्ष विश्लेषित करने में ।

1.2 प्रस्तावना :

जब भी हम प्रतिस्पर्धात्मक बाजारों के वर्गीकरण की बात करते है तो हमें उस बाजार विशेष में अपने बने रहने के लिए कीमत निर्धारण की प्रक्रिया एवं रणनीति को समझना अति आवश्यक होता है। पूर्ण प्रतियोगी बाजार में मुख्यतः उत्पादों के बीच कोई विभेद नहीं होता है तथा क्रेता एवं विक्रेता अधिसंख्या होते है इस प्रकार के वातावरण की कीमत निर्धारण एक अत्यन्त ही जटिल प्रक्रिया प्रतीत होता है। अर्थात यदि बाजार में उत्पाद समरूप है। फर्मो को आगमन एवं वहिगमन की पूर्ण स्वतन्त्रता हो, उपभोक्ता को बाजार के बारे में पूर्ण ज्ञान है, तथा परिवहन लागतों को अभाव हो तो इस प्रकार की दशा में कीमत निर्धारण एक जटिल परन्तु महत्वपूर्ण प्रक्रिया होती है। इस इकाई मे हम बाजार के विभिन्न वर्गीकरण को समझने के साथ ही साथ पूर्ण प्रतियोगी बाजार में कीमत निर्धारण की प्रक्रिया को समझने का प्रयास करेंगें।

1.3 बाजारः परिभाषाएं

बाजारः बाजार से हमारा तात्पर्य केवल एक स्थान मात्र नहीं है जिसके अन्तर्गत कारोबार एक प्रकार से एक प्रक्रिया होती है जिसके अन्तर्गत कारोबार के लिए सौदेबाजी की जाती है। ये तुरंत विक्रय या भविष्य विक्रम के रूप में भी हो सकता है। वास्तविक रूप में बाजार एक ऐसा स्थान होता है जहॉ क्रेता एव विक्रेता एक स्थान पर अपने कारोबार को अंजाम देने के लिए एकत्र होते है तथा सौदेबाजी के द्वारा अपने अपने लाभ को बनाएं रखते हुए व्यापार करने के लिए स्वतन्त्र होते है।

बाजार को हम विभिन्न प्रकार से परिभाषित करते है । उदाहरणार्थ बाजार की महत्वपूर्ण वस्तुओं (Coomodity) के आधार पर वर्गीकृत कर सकते है जो प्राथमिक रूप से प्रारम्भिक उत्पाद को (Primany Procucers)

के द्वारा निर्धारित होते है। इसके अतिरिक्त बाजार निर्माता उत्पाद का आधार पर, कारखाने क्षेत्र के आधार पर या अन्य बिना कारखाने के क्षेत्र जिनके अन्तर्गत ग्रामीण एवं कुटीर उद्योग भी शामिल है।

सेवा क्षेत्र के बाजार को कारक बाजार (Factor Markets) भी कहते है: N L K-O1 एवं E इनसे हमारा तात्पर्य: N Natural Resource (प्राकृतिक संसाधन) L : Labour (श्रमिक के रूप में प्राथमिक कारकों से हैं) K को हम (Capital) पूँजी (आर्थिक अथवा वास्तविक), OT को हम संगठन एवं तकनीकि (Organisation and technology) तथा E; को हम Entrepreneur (उद्यमी) के रूप में समझ सकते है।

उपर्युक्त कारकों से हम ये समझ सकते है कि किसी भी उत्पाद के बनने में किन स्तर की वस्तुओं अथवा विषयों की आवश्यकता होती है । क्रेता एवं निर्माता की दृष्टि से हम बाजार को निम्नांकित प्रकार से परिभाषित कर सकते है।

(i) MONOPOLY MARKETS (एकाधिकार बाजार) वे बाजार होते है जहॉ केवल एक ही निर्माता/विक्रेता हो तथा बहुत सारे क्रेता हो। साधारणतः इस प्रकार के बाजारे में वस्तुओं की मांग उत्पादन से अधि ाक होता है।

(ii) Duopoly Markets (द्विअधिकार बाजार) वे बाजार होते है जहॉ दो निर्माता/विक्रेता होते है तथा बहुत सारे उपभोक्ता या क्रेता होते है।

(iii) Oligopoly Markets (ओलीगोपोली बाजार) वे बाजार होते है जहॉ दो से अधिक परन्तु कुछ ही निर्माता अथवा विक्रेता होते है परन्तु क्रेता अथवा उपभोक्ता कई सारे होते है।

(iv) Perfect Competition true Competition- पूर्ण प्रतियोगिता बाजार इस प्रकार के बाजारों की प्रकृति को हम मोनोपोलिस्टिक प्रतियोगिता आधारित बाजार के समान ही पाते है परन्तु मुख्य अन्तर उत्पादों की एक रूपता होती है। अर्थात विक्रेता/उत्पाद एवं क्रेता/उपभोक्ताओं की संख्या अधिक होती है। उदाहरणार्थ पेट्रोल, चीनी, नमक, खाद्यान्न जैसी वस्तुंए इस श्रेणी में आती है।

(v) Monopolistic competition : इस प्रकार के बाजार में प्रकार के उत्पाद होते है तथा बहुत सारे उपभोक्ता भी होते है। परन्तु उत्पादों

में विभिन्नता होती है जिस कारण उत्पादक अपने उत्पादों को एक दूसरे से अलग दिखाने में समर्थ होते है। इस प्रकार के उत्पादों के उदाहरण साबुन, कार, मोटर साइकिल, टूथपेस्ट इत्यादि हो सकते है।

किसी भी बाजार की अर्थ व्यवस्था इसके क्रेता एवं विक्रेता के सामन्जस्य के द्वारा स्थापित होती है जिसमें कि उत्पादों की गुण विशेषताओं का उत्यन्त महत्व है।

कुरनॉट (Cournot) के अनुसार, अर्थशास्त्रियॉ की समझ से बाजार शब्द का मतलब किसी स्थान मात्र से नही होती है जहॉ वस्तुओं को खरीदा या बेचा जाता है परन्तु यह वह सम्पूर्ण स्थान होता है जहॉ क्रेता एवं विक्रेता एक दूसरे से इस तरह से स्वतन्त्र सम्बन्ध स्थापित करते है कि समान वस्तुओं के मूल्य समान, आसानी से एवं शीघ्रता से प्रतीत होता है।

बेनहम (Benham) के अनुसार 'हम बाजार को ऐसे परिभाषित कर सकते है कि यह वह स्थान है जहॉ क्रेता एवं विक्रेता एक दूसरे से सीधे और तौर पर या किसी डीलर के द्वारा इस प्रकार आपस में सम्बन्धित होते है कि यदि बाजार के एक भाग में मूल्य के प्राप्ति पर कुछ प्रभाव होता है तो वह बाजार के अन्य भागों में मूल्य के देने को प्रभावित करता है।

इस प्रकार उपयुक्त विवरण के पश्चात हम बाजार के मुख्य अवयवों को निम्न प्रकार से परिभाषित कर सकते है।

1— एक बाजार के अन्तर्गत वस्तुओं एवं Commodity दोनों को ही क्रय एवं विक्रय होता है। Commodity बाजार एवं वस्तु बाजार को उत्पाद बाजार, कहते है। सेवा बाजार को हम गुणांक बाजार (Factor Market) कहते है।

उदाहरणार्थ जब दर्जी किसी कमीज को सिलता है तब उसकी मजदूरी (सिलाई) बिकती है। जब कोई पूॅजीवादी व्यक्ति ब्याज पर किसी को धन देता है तो पूॅजी बिकती है।

2— क्रेता एवं विक्रेता का किसी स्थान पर वास्तविक रूप से मिलना आवश्यक नही है, परन्तु इनका आपस में एक से आपस में सम्बन्ध होना आवश्यक होता है जिस स्थान पर भी वे मिलते है उस स्थान को बाजार कहा जाता है । यदि वे दोनों एक स्थान पर नही मिलते

है तथा अलग–अलग स्थानों से ही खरीदते तथा बेचते है तो उनको आवश्यक रूप से मॉग एवं पूर्ति से सम्बन्धित स्थितियों की जानकारी होनी चाहिए तथा साथ ही साथ वस्तुओं की गुणवत्ता का भी ज्ञान होना चाहिए जिस पर उनका मूल्य निर्धारित होता है ।

3– कोई भी बाजार एक स्थान हो सकता है एक क्षेत्र हो सकता है। एक देश हो सकता है या सम्पूर्ण विश्व भी हो सकता है ।

1.4 बाजार की सीमाएं

बाजार की सीमाओं से हमारा तात्पर्य बाजार के परिक्षेत्र से है अर्थात बाजार किसी क्षेत्र तक सीमित हो सकता है । एक बड़े बाजार का तात्पर्य उस बाजार से होता है जिसके अन्तर्गत आने वाले क्रेता एवं विक्रेताओं की संख्या अधिक होती है । उस बाजार में ज्यादा वस्तुओं को खरीदा एवं बेचा जाता है। वस्तुओं को बहुत अधिक विस्तृत क्षेत्र में बेचा जाता है । जब भी बहुत ज्यादा मात्राओ को बेचा जाता है । तो पहले उनको एक केन्द्रित क्षेत्र में बेचा जाता है तथा जैसे जैसे अधिक क्रेता एवं विक्रेता मिलते जाते है वेसे वैसे बाजार का क्षेत्रफल बढ जाता है ।

किसी राष्ट्र के आर्थिक विकास के लिए बजारों का विस्तृत होना अति आवश्यक होता हैं इसके कई सारे लाभ होते है ।

1– उत्पादको को विक्रय से अधिक लाभ होता है ।

2– उत्पादक ज्यादा बचत कर सकते है तथा अधिक पूॅजी प्राप्त कर सकते है।

3– संयंत्र की क्षमता एवं उत्पादन में वृद्दि की जा सकती है ।

4– अधिक लाभ होने पर आधुनिकतम तकनीकि एवं श्रम विभाजन का उपयोग किया जा सकता है । इत्यादि

इससे कर्मचारियों को भी लाभ मिलता है । उन्हे अधिक रोजगार, अधिक भत्ते तथा जीवन एवं कार्यशाला में अधिक अच्छी एवं गुणवत्तापरक शैली अपनाने का मौका मिलता है जो कि औद्योगिक विकास के लिए आवश्यक होता हैं सभी को इससे फायदा होता है जैसे कि जन सामान्य की आय बढ़ जाती है रोजगार के अवसर प्राप्त होते है आदि । सरकार के भी बढी हुयी आय से टैक्स के रूप में तथा बिक्रीकर के रूप अधिक लाभ होता है ।

NMDC-222

अधिक मात्रा एवं गुणवत्ता वाली वस्तुओ के निर्माण से निर्यात के अवसर मिलते है जिससे कि विदेशी मुद्रा के अर्जन में सहायता मिलती है । जब किसी देश में रोजगार, आयख भत्ते, लाभ तथा बचत में वृद्धि होती है तो सरकार एवं देश दोनो ही लाभान्वित होते है ।

1.5 पूर्ण प्रतियोगिता स्थिति कीमत निर्धारण

पूर्ण प्रतियोगिता एवं अपूर्ण प्रतियोगिता बाजार का वर्गीकरण विक्रेताओं की संख्या के आधार पर किया गया है । पूर्ण प्रतियोगिता के बाजार में प्रायः विक्रेताओं की संख्या अत्यधिक होती है तथा क्रेता भी संख्या में अत्यधिक होते है परन्तु अपूर्ण प्रतियोगिता के विपरीत इसमें उत्पादों का विभेदीकरण नही होता है अर्थात वस्तुएं समरूप होती है । इसके अतिरिक्त फर्मो का इस प्रकार के बाजार में स्वतन्त्र रूप से प्रवेश एवं बहिर्गमन होता है, बाजार का उपभोक्ता को पूर्ण ज्ञान होता है तथा उत्पादों की उत्पत्ति के साधनों में पूर्ण गतिशीलता होती है । बाजार में किसी भी प्रकार का कोई प्रतिबन्ध नही होता है तथा वस्तुओं के प्रति हमको लागतो का अभाव होता है । वस्तुओं की कीमते भी प्रायः समान ही होती है । यदि हम अपूर्ण प्रतियोगिता (Imperfect Competition) बाजार को समझने का प्रयास करे तो इसमें भी अधिक संख्या क्रेता एवं विक्रेता होते है परन्तु व्यवहारिक तौर पर विक्रताओं की संख्या तुलनात्मक रूप से कम ही होती है । इसके अतिरिक्त अपूर्ण बाजार की विशेषताओ के अन्तर्गत वस्तुओं का विभेदन प्रायः पाया जाता है तथा तुलनात्मक रूप से क्रेताओं एवं विक्रेताओं में ज्ञान की कमी होती है तथा वितरण लागत में अधिकता होती है। अब हम पूर्ण एवं अपूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति में कीमत निर्धारण का अध्ययन करेगे।

पूर्ण प्रतियोगिता की विशेषताओं को हम उपर्युक्त व्याख्या में पढ चुके है। पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत कीमतो का निर्धारण समूचे उद्योग की मूल माँग (Total Demand) तथा कुल पूर्ति (Total Supply) के द्वारा होता है । इसमें किसी भी एक क्रेता या विक्रेता के द्वारा किये गये क्रय या विक्रय से वस्तु की कीमत पर कोई प्रभाव नही होता है । उद्योग की फर्म किसी दी हुई कीमत पर अपने उत्पादन की माँग को इस प्रकार समायोजित करती है कि उसकी सीमान्त लागत (Marginal Price) सीमान्त आगम (Marginal Revenue) के समान हो जाए । साम्य कीमत (Equilibrium Price) का निर्धारण उद्योग के माँग वक्र एवं पूर्ति वक्र के द्वारा होता है। उद्योग के द्वारा कीमत का

निर्धारण होता है जबकि फर्म इस कीमत को स्वीकार करती है अर्थात उद्योग कीमत निर्धारक (Price Maker) होता है जबकि फर्म कीमत ग्राही (Price Taker) होती है । निम्न चित्र में हम इसको आसानी से समझ सकते है।

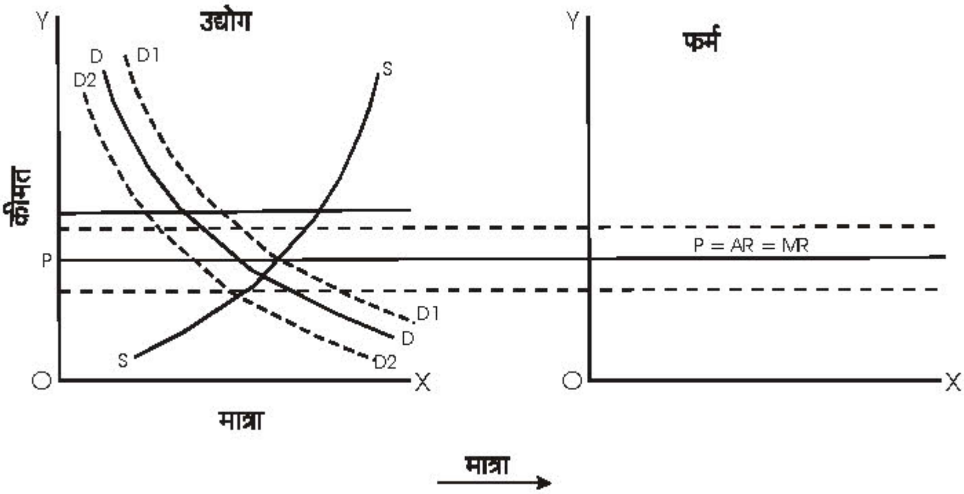

चित्र–1

इस प्रकार से हम देखते है कि पूर्ण प्रतियोगिता में कीमतो का निर्धारण मॉग एवं पूर्ति की शक्तियों द्वारा होता है । पूर्ण प्रतियोगिता में सम्पूर्ण बाजार में केवल एक ही कीमत होती है । मॉग –पूर्ति का परिवर्तन कीमत को प्रभावित करता है। अर्थात मॉग बढ़ने पर कीमत बढती है तथा मॉग घटने पर कीमत घटेगी। उद्योग जहॉ कीमत का निर्धारण करता है वही फर्म इस कीमत को स्वीकार करती है । फर्म इस दी गयी कीमत के अनुसार केवल उत्पादन की मात्रा का ही समयोजन करने मे सक्षम होती है । पूर्ण प्रतियोगिता में कीमत औसत आगम (Average Revenue) तथा सीमान्त आगम (Marginal Revenue) तीनों समान होते है अर्थात Price = Average Revenue (कीमत = औसत आगम = सीमान्त आगम) ।

1.6 पूर्ण प्रतियोगिता में कीमत निर्धारण: दो सिद्वान्त

पूर्ण प्रतियोगिता में कीमत निर्धाधरण के लिए निन्नांकित दो सिद्वान्त उत्पादन की लागत सिद्वान्त (Cost of Production Theory) एवं उपयोगिता सिद्वान्त (Utility Theory) दी गयी है । उत्पादन की लागत सिद्वान्त के अनुसार P = Cop (कीमत = उत्पादन की लागत) के रूप मे होती है तथा दूसरे सिद्वान्त के अनुसार P = Mu (Price = Marginal Utility) अथवा कीमत. = सीमान्त उपयोगिता) होता है।

1.6.1 उत्पादन की लागत सिद्वान्त (Cost of Production Theory)

पूर्ण प्रतियोगिता में कीमत निर्धारण के इस सिद्वान्तानुसार कीमत दार्घ काल में उत्पादन की लागत के समान होती है तथा होना चाहिए भी। परन्तु इस उत्पादन लागत में सामान्य लाभ की सम्मिलित होना चाहिए। अर्थात यदि हम कहे कि कीमत उत्पादन की लागत के समान है तो तात्पर्य यह नही कि इस स्थिति न तो लाभ है और न ही हानि है। ऐसा इसलिए होता है कि उत्पादन की लागत में सभी पॉच उत्पादन के कारकों किराया, (Rent) मजदूरी, (Wages) ब्याज, (interest) वेतन, (Salary) एवं सामान्य लाभ (normal profts) की पूर्ति होती अथवा सम्मिलित होते है ।

1.6.1.1 उत्पादन की लागत सिद्वान्त की आलोचना :

(1) इस सिद्वान्त की आलोचना के फलस्वरूप यदि कीमत उत्पादन की लागत के समान है एक ही माग की इकाइयों को विभिन्न मूल्यों पर क्यों बेचा जाता है जबकि उनकी उत्पादन लागतों को समान होना चाहिए था या समान थी ।

इस आलोचना का उत्तर यह है कि कीमते भूतकालीन उत्पादन लागतों के समान नही होती है अपितु वर्तमान उत्पादन लागतों के समान होती है और समयानुसार इस उत्पादन लागतों में बदलाव के कारण कीमतों भी बदल जाएंगी ।

(2) दूसरी आलोचना यह थी कि कुछ उत्पाद किसी कीमत को क्यों नही नियंत्रित कर सकते है जबकि उनके उत्पादन मे भी लागत लगती है । यदि पढ़े लिखे लोगो के समान में एक पढ़ाई नही बिक पाती है तो इसकी व्याख्या इस कैसे करेंगे ।

इस आलोचना का उत्तर यह मिला कि उपयोगिता की भी वस्तु के क्रय में भूमिका होती है परन्तु यह केवल आंशिक ही होती है । उत्पादन की लागत पूर्ति की तरफ से होती है। पूर्ति की तरफ से हम अभाव तत्वों को लेते है जो कि उत्पादन की लागत को प्रभावित करते हैं उपयोग मूल्य (use values) इस प्रकार उत्पन्न किया जाता है कि उपभोक्ता इनमें उपयोगिता को समझे तथा कीमत के द्वारा इस उपयोग मूल्य को आदान प्रदान करे।

(3) तीसरी आलोचना यह थी या है कि क्यो कुछ वस्तुएं अधिक मूल्य पर बिक जाती है जबकि उनकी उत्पादन कीमते इतनी अधिक नही होती है।

उदाहरणर्थ पिकासों की चित्रकारियॉ आदि। इसका उत्तर यह है कि ये वस्तुएं अत्यन्त अभाव में है । उत्पादन की लागत या सिद्वान्त अभाव या कमी वाली वस्तुओं के लिए नही है । वरन सामान्य वस्तुओ के लिए है।

1.6.2 उपयोगिता सिद्वान्त (Utility Theory)

ऑस्ट्रिया के अर्थशास्त्री के द्वारा दिये गये उपयोगिता सिद्वान्त के अनुसार यदि किसी व्यक्ति को किसी वस्तु में अधिक उपयोगिता नजर आती है तो उसकी उत्पादन लागत कम होने पर भी इसको अधिक कीमत पर खरीदा जा सकता है । इसके विपरीत किसी अधिक उत्पादन लागत से बनी वस्तु को अधिक उपयोगिता समझ में न आने पर वस्तु की कीमत कम हो सकती है । इस प्रकार से उपयोगिता ही किसी वस्तु अथवा सेवा के कीमत का मुख्य निर्धारक तत्व होता है ।

1.7 साम्यावस्था (Equilibrium)

वस्तु की मॉग एवं पूर्ति तथा कीमत निर्धारण : किसी वस्तु की मांग उसकी उपयोगिता तथा कीमत दोनों पर ही निर्भर करती है । किसी वस्तु या सेवा की मांग इसलिए होती है क्यो कि वह किसी व्यक्ति की आवश्यकता या इच्छा को सन्तुष्ट करती है । यदि बाकी की स्थितियॉ समान हो तो अधिक उपयोगिता होने पर वस्तु की मॉग बढ़ जाती है इस प्रकार से वस्तु की मॉग एवं कीमत में सीधा सम्बन्ध होने पर हम यह भी कह सकते है कि वस्तु की उपयोगिता एवं कीमत में भी सीधा सम्बन्ध होता है किसी वस्तु की मांग इसकी कीमत में वृद्वि पर घट जाती है तथा कीमत में हानि पर यह बढ़ जाती है। इस प्रकार मॉग वक्र दाहिनी ओर नीचे की तरफ झुका होता है किसी भी वस्तु की उपयोगिता उसकी उच्चतम सीमा होती है उसके बाद उपभोक्ता और कीमत अधिक नही देगा।

पूर्ति : पूर्ति उत्पादन का ही एक भाग होता है ± स्टॉक (stock) जो बाजार में किसी दिये गये कीमत पर बेचने के लिए लाया जाता है। जिस प्रकार कीमत के बिना मॉग को नही दर्शाया नही जा सकता है उसी प्रकार पूर्ति को भी कीमत के बिना दर्शाया नहीं जा सकता है। यदि किसी वस्तु का मूल्य उतना गिर जाए कि उत्पादन की लागत को भी समायोजित न कर पाए तो यह पूर्ति ,स्टॉक मे ही रह जाती है । पूर्ति की लोच को हम निम्न प्रकार से समझ सकते है।

पूर्ति प्रतिक्रिया : पूर्ति प्रतिक्रिया हमारा तात्पर्य मॉग के अनुसार पूर्ति को घटाने या बढाने से है । यदि हम मॉग मे वृद्दि के अनुसार पूर्ति में वृद्दि के लिए सभी संसाधनों का उचित उपयोग करने मे सक्षम हो जाते है तो इसे धनात्मक पूर्ति प्रतिक्रिया कहेगे ।

लोचपूर्ण पूर्ति : जब हम पूर्ति को कीमत में कमी होने के कारण उसी के अनुरूप कम कर देते है या मूल्य में वृद्दि हो जाने के कारण पूर्ति को उसी अनुपात में बढा देते है ।

शून्य पूर्तिः जब किसी भी मूल्य पर पूर्ति मात्रा में अपरिवर्तित या अभिन्न रहती है।

अनन्त पूर्ति : पूर्ण लोच पूर्ति : जब कीमत में बिना किसी बदलाव के पूर्ति में कोई बदलाव आता है। यह प्रायः कृषि—मौसम या प्राकृतिक बदलाख के कारण होता है।

अत्याधिक लोचपूर्ण पूर्तिः जब कीमत में कम प्रतिशत में बदलाव के परिणाम स्वरूप पूर्ति में समान दिशा में बदलाव अनुपात से अधिक होता है तो उसे अत्यधिक लोचपूर्ण कहते है।

कम लोचपूर्ण पूर्ति : जब पूर्ति में प्रतिशत बदलाव कीमत में प्रतिशत बदलाव से उसी दिशा में अनुपालन से कम होता है।

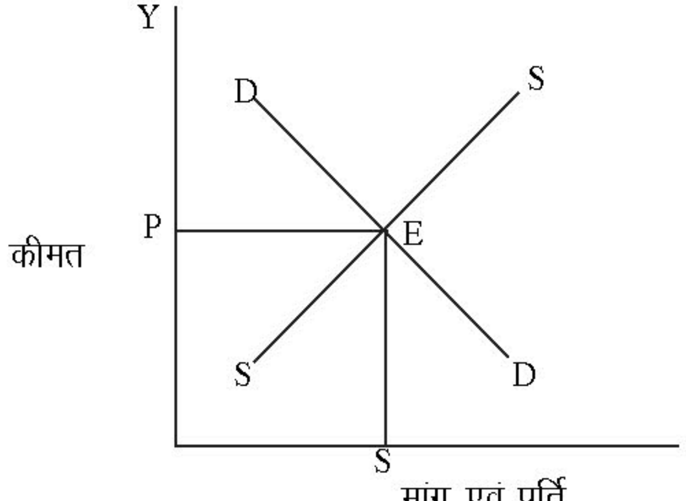

उपर्युक्त चित्र में मांग पूर्ति वक्र एक दूसरे को E बिन्दु पर काटते है। यदि E से एक लम्बा क्षैतिज रेखा पर डालते है तो ES प्राप्त होता है जो कि साम्य

पूर्ति कहलाती है। जो कि OP कीमत पर बिकती है तथा OS कुल पूर्ति भी है तथा कुल मॉग भी होती है।

प्रति इकाई कीमत	मॉंग : इकाईयॉं	पूर्ति : इकाईयॉं
10	1000	---
12	750	250
13	500	500
14	250	750
15	00	1000

10 सबसे की कीमत पर पूर्ति शून्य है। इसका मतलब यह नही है कि स्टॉक भी शून्य है। यह एक आरक्षित कीमत है जिस पर कि अभिप्रित पूर्ति को पूर्ति में बदला जा सकता था। यदि केवल अभिप्रिय पूर्ति पर ही सामान बाजार में ले पाया जाएगा तो इसमें परिवहन लागत खर्च होगी। स्टॉफ में भी वहॉ परिवर्तन हो जाएगा और यहॉ ब्याज में क्षति भी हो सकती है। अतः पूर्तिकर्त्ता अगले समय अधिक पर वस्तुओं को बेचने का निर्णाय लेगा। वस्तुएं आसानी से खराब हो जाने वाली या सड़ने वाली (Perishable) हों तो कोई भी आरक्षित कीमत नहीं हो सकती है। वास्तविक रूप में विक्रेता को जब सारा सामान क्षय होने का भय हो तो वह किसी भी मूल्य पर बेच सकता है। इसे हम बचाव कीमत (Salvage Price) कहते हैं। रु0 13 की कीमत पर D एवं S समान हैं और रू0 15 पर मॉग को शून्य दिखाया है जो आसानी से नही होती हैं। शून्य मॉग प्रायः कीमत के अतिरिक्त किसी कारण से होती है।

साम्य कीमते, साम्य उत्पादन (Output) एवं सामय मॉग कभी स्थायी नहीं होती है। मॉग अथवा पूर्ति के किसी भी बदलाव होने से कीमत में बललाव आ जाता है। इसी प्रकार कीमत में बदलाव के कारण भी मॉग बदलाव आ जाता है। इसी प्रकार कीमत में बदलाव के कारण भी मॉग एवं पूर्ति में भी बदलाव हो जाता है। यह सम्बन्ध प्रायः वृत्ताकार होता है। साम्यावस्था क्षणभंगुर प्रकृति की होती है। जब मांग एवं पूर्ति के द्वारा कीमत का निर्धारित होता है तो हम कीमत नियमों का अध्ययन करते हैं। जब कीमत के द्वारा मॉग एवं पूर्ति में बदलाव आता है तो हम मॉग एवं पूर्ति के नियम का अध्ययन करते हैं।

साम्यावस्था $\rightarrow$ असाम्यावस्था $\rightarrow$ साम्यावस्था $\rightarrow$ असाम्यावस्था, एक श्रृंखला में आती है परन्तु भिन्न–भिन्न कीमतें देती है।

इस प्रकार से हम निम्न रूप में कह सकते है :

- जब मॉग फलन बेहतर होता है तो कह सकते है
- जब मॉग फलन गिरता है तो कीमतें गिरती है।
- जब पूर्ति फलन गिरता है तो कीमतें गिरती है।
- जब पूर्ति गिरता है तो कीमतें गिरती है।
- जब कीमतें बढ़ती है तो पूर्ति फलन बेहतर होता है।
- जब कीमतें बढ़ती है तो पूर्ति फलन गिरता है।
- जब कीमतें बढ़ती है तो पूर्ति फलन गिरता है।
- जब कीमतें बढ़ती है तो मॉग फलन बढ़ता है।

1.7.1 साम्यावस्था में बदलाव के आठ प्रकार :

पूर्ण प्रतियोगिता स्थिति में साम्य कीमतों संकलित (aggregate) पूर्ति एवं मॉग पर निर्भर करती है। उत्पादन की लागतें (पूर्ति आधारित) तथा उपयोगिता (मांग आधारित) दोनों ही महत्वपूर्ण होते है तथा एक कैंची के दो फलक्रम है। यदि कीमत की साम्यावस्थय एक बार प्राप्त कर भी लो जाए तो इसमें पूर्ति अथवा मॉग में से किसी एक में अथवा दोनों में बदलाव आने से कीमत में बदलाव हो जाता है।

निम्नांकित सारणी में आठ प्रकार के बदलावों को देखा जा सकता है।

	मॉग	पूर्ति	कीमत
1.	समान रहती है	बढ़ती है	घटती है।
2.	समान रहती है	गिरती है	बढ़ती है।
3.	बढ़ती है।	समान रहती है।	बढ़ती है
4.	गिरती है।	समान रहती है।	गिरती है।
5.	बढ़ती है (समान अनुपात में)	बढ़ती है।	समान रहती है।
6.	गिरती है।	बढ़ती है।	तेजी से गिरती है।

7.	बढ़ती है	गिरती है।	तेजी से बढ़ती है।
8.	(क) गिरती है। (यदि दोनों सामन मात्रा में गिरते हैं तो कोई बदलाब नहीं)	गिरती है।	कीमत उस कारक से प्रभावित होगी जो ज्यादा तेजी से बदलता है।)
	(ख) बढ़ती है। (अनुपात भिन्न करते हैं)	बढ़ती है।	

1.8 पूर्ण प्रतियोगिता बाजार में कीमत निर्धारण : तीन अवस्थाएं

कीमत निर्धारण के लिए—कीमत स्तर एवं इसकी भिन्नता—मॉग में बदलाव के कारण पूर्ति के बदलाव में लिए गये समय पर निर्भर करती है। पूर्ण प्रतियोगिता को स्थिति में कीमत का निर्धारण निम्नांकित तीन अवस्थाओं में ज्ञात किया जा सकता है।

(क) बाजार काल अथवा अतिलधुकालीन (Market Period)

(ख) लधुकालीन (Short run)

(ग) दीर्घ कालीन (Long run)

बाजार काल (Market Period) या अति लघुकाल वह समय होता है जिसमें पूर्ति की गयी मात्रा पूर्णरूप में स्थिर (fixed) होती है अर्थात कीमत के सापेक्ष पूर्ति प्रतिक्रिया नगण्य होती है।

लघु काल वह समय काल होता है जिसमें कुछ लागतों (inputs) उदाहरणार्थ (संयत्र, भवन, मशीन आदि) की पूर्ति स्थिर होती है या अलोचपूर्ण होती है। इस प्रकार लघुकाल में हम किसी वस्तु का उत्पादन केवल परिवर्तनशील लागातों (variable inputs) को बढ़ाकर ही कर सकते है।

दीर्घकाल उस समय को कहते है जिसमें सभी लागतों (inputs) की पूर्ति लोच पूर्ण होती है परन्तु तकनीकी में बदलाव नहीं होती है अर्थात दीर्घ काल में सभी लागतें (inputs) परिवर्तन शील होते है। इस प्रकार दीर्घकाल में उत्पादन में वृद्धि स्थिर एवं परिवर्तन दोनों ही लागतों (inputs) बढ़ाकर की जा सकती है।

आइए अब तीनों कालों में कीमतों के निर्धारण को समझें।

1.8.1 बाजार काल में कीमत निर्धारण

बाजार काल में कुल उत्पादन (total output) स्थिर होता है। प्रत्येक फर्म के पास बेचने के लिए एक स्टॉक होता है। सभी फर्मों के पास एकत्रित स्टाक (वस्तुओं का भण्डार) कुल पूर्ति का निर्धारण करता है। चूंकि स्टॉक स्थिर होता है। अतः पूर्ति वक्र पूर्णरूप से अलोचपूर्ण होता है। हम निम्नांकित चित्र 3 (क) में देख सकते है। जिसे रेखा SQ के द्वारा प्रदर्शित किया गया है। इस स्थिति में कीमत का निर्धारण पूर्णरूप से मॉग की स्थिति के द्वारा होता है। पूर्ति एक निष्क्रिय कारक होती है। उदाहरणार्थ यदि हम ये मानें कि विवाह स्थलों की संख्या (अथवा किसी विवाह समारोह में तम्बुओं की संख्या OQ पर दर्शायी गयीं हैं, (चित्र 3 क) तथा पूर्ति वक्र एक सीधी रेखा के रूप में है, SQ हम ये भी मान लेते हैं कि किसी विवाह काल में मॉग वक्र विवाह स्थलों अथवा तम्बुओं के लिए D_1 के द्वारा प्रदर्शित किया जाता है। मॉग वक्र एवं पूर्ति वर्क एक दूसरे को M बिन्दु पर काटते हैं जो कि किराया है, $MQ = OP_1$ स्थिति पर । यदि किसी विवाह काल में विवाह स्थलों की मॉग (अथवा Tent) की मॉग एकदम से बढ़ जाती है तो मॉग वक्र D_1 उपर की तरफ D_2 तक विस्थापित होत जाता है। साम्यावस्था बिन्दु–मॉग एवं पूर्ति के अन्तर विभाजन बिन्दु M से P तक विस्थापित हो जाती है तथा किराया $PQ = OP_2$ तक हो जाता है। यह कीमत सभी क्रेताओं के लिए हो जाती है।

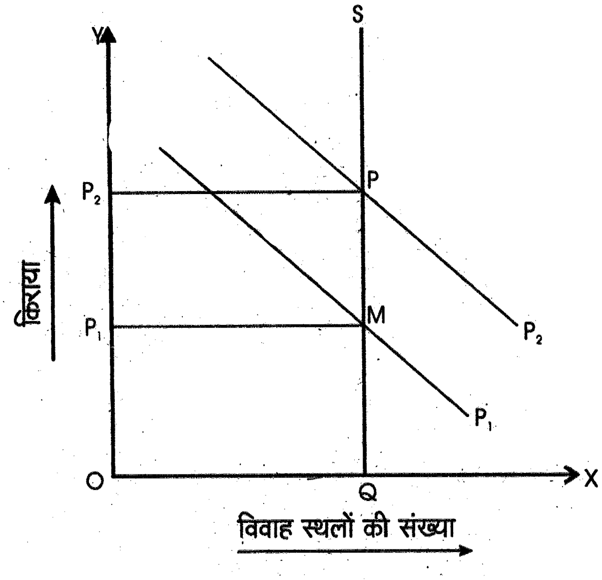

चित्र 3 (क) मॉग द्वारा कीमत निर्धारण (बाजार काल में) इसी प्रकार यदि किसी उत्पाद को मांग दी हो, और किसी कारण से पूर्ति में अचानक गिरावटट आ जाती हो तो जैसे कि सूखा या बाढ़ या अन्य किसी प्राकृतिक

NMDC-222

आपदा के कारण (विशेषतः कृषि उत्पादों मे) तथा एक दम अचानक से निर्यात में वृद्धि के कारण उत्पाद के मूल्य में वृद्धि हो जाए। उदाहरणार्थ सन् 1998 में ब्याज के निर्यात के कारण एक दम से ब्याज के कीमते 10–12 रूपये प्रति किलो से 50–60 रूपये प्रति किलो तक बढ़ गयी थी यदि पूर्ति के द्वारा कीमतों का निर्धारण होता है तो पूर्ति वक्र बॉयी ओर विस्थापित हो जाता है तथा कम पूर्ति होने वाली वस्तुओं का कीमतों में वृद्धि का कारण होता है। इसका प्रदर्शन चित्र 3(ख) में किया गया है। यदि मांग वक्र (D) तथा पूर्ति वक्र (S_2) है तथा कीमत का निर्धारण OP_1 पर किया जाता है यदि मांग वक्र समान है तो पूर्ति में गिरावट, पूर्ति वक्र को बॉयी ओर S_1 पर विस्थापित करती है। इस कारण कीमत OP_1 से OP_2 तक बढ़ जाती है।

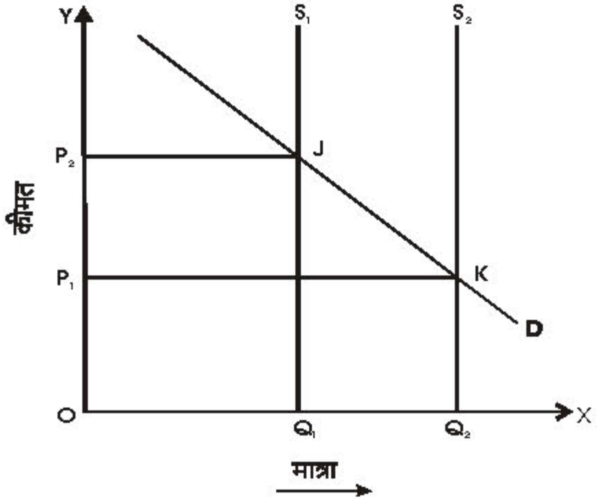

चित्र 3 (ख) बाजार काल में पूर्ति द्वारा कीमत निर्धारण बाजार काल अथवा अतिलघु काल के अन्य उदाहरणों में मछली बाजार, स्टॉक बाजार प्रतिदिन दुग्ध बाजार आपदाओं अथवा महामारी के समय आवश्यक दवाएँ आदि हो सकते है।

1.8.2 लघुकाल में कीमत निर्धारण

लघुकाल, परिभाषा के अनुसार, वह काल होता है जिसमें कोई भीफर्म न तो अपना आफार बदल सकती है और न ही नई फर्मे उयोग में प्रवेश कर सकती है। जबकि बाजार काल में पूर्ति पूर्णरूप से स्थिर होती है, लघुकाल में पूर्ति की वृद्धि अथवा कमी परिवर्तनशील लागतों (Variable inputs) की संख्या में वृद्धि अथवा कमी करके किया जा सकता है। इस प्रकार से लघुकाल में पूर्ति वक्र लोचपूर्ण होती है।

बाजार के मूल्य को लघु काल में निम्नांकित दिये गये 4 (क) चित्र में

प्रदर्शित किया गया है तथा बाजार कीमत एवं फर्म की साम्यवस्था के सापेक्ष फर्म के उत्पादन में समायोजान को चित्र 4 (ख) में प्रदर्शित किया गया है।

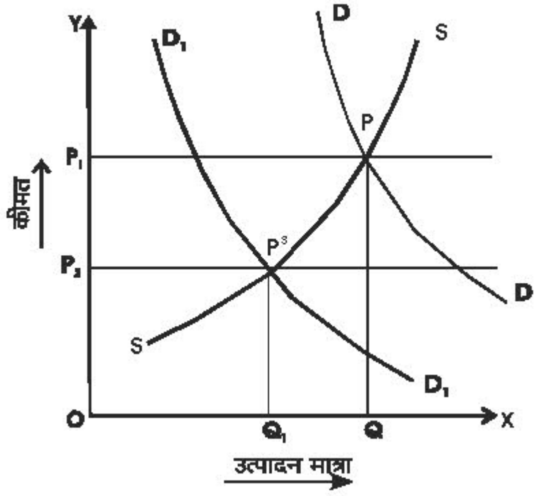

चित्र 4 (क) उद्योग के लिए लघुपाल मे पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत कीमत निर्धारण

चित्र 4(क) किसी उघोग के लिए मांग वक्र DD तथा पूर्ति वक्र SS के द्वारा OP_1 या PQ पर कीमत निर्धारण को दर्शाया गया है। यह कीमत उघोग में सभी फर्मे को लिए स्थिर होती है। दिये गये मूल्य (कीमत) PQ (OP_1) पर, एक फर्म कितनी भी संख्या में वस्तुओं का उत्पादन एवं विक्रय कर सकती है। परन्तु कोई भी मात्रा अधिकतम लाभ को नही देगी। यदि इनको उत्पादन लागत वक्र दिये हुए हो, तो फर्मो को कीमत PQ के अनुसार अपने मात्राओं को समायोजित करना होगा ताकि वे अधिक लाभ अर्जित कर सकें।

किसी फर्म के उत्पादन निर्धारण एवं इसकी साम्यावस्था को चित्र 4 (ख) में प्रदर्शित किया गया है। किसी भी फर्म का लाभ अधिकतम तब होती है जब सीमान्त आगम (Marginal Revenue), सीमान्त लागत (Marginal Cost) के सामने है। चूंकि कीमत बिन्दु PQ पर स्थिर है जहॉ फर्म का औसत आगम (AR), PQ के समान है। यदि AR दिया हुआ हो, MR = AR फर्म का MR, AR = MR रेखा के द्वारा प्रदर्शित है। फर्म का उपर को तरह बढ़ता MC वक्र AR = MR को बिन्दु E पर अन्तरविभाजित करता है। E बिन्दु पर MR = MC है अतः बिन्दु E फर्म की साम्यावस्था है। यदि बिन्दु E से EM लम्ब क्षैतिज रेखा पर खींचा जाता है तो यह OM पर लाभ वृद्धि को निर्धारित करता है। इस उत्पादन पर MR = MC है । जो कि अधिकतम लाभ के लिए आवश्यकता को सन्तुष्ट करता है। कुल अधिकतम लाभ को क्षेत्र P,TNE के द्वारा दर्शाया गया है।

लाभ = (AR - AC) Q

चित्र (4ख) में $AR = EM$
$AC = NM$
$Q = OM$

इन मूल्यों को लाभ समीकरण में विस्थापित करने पर हमें निम्न ताप्त होगा।

लाभ = $(EM - NM)\, OM = P_1TNE$

चूंकि $EM - NM = EN$,

लाभ $= EN \times OM = P_1TNE$ जो कि अधिकतम लाभ है जबकि कीमत एवं लागत के वक्र लधुकाल में दिये गये है।

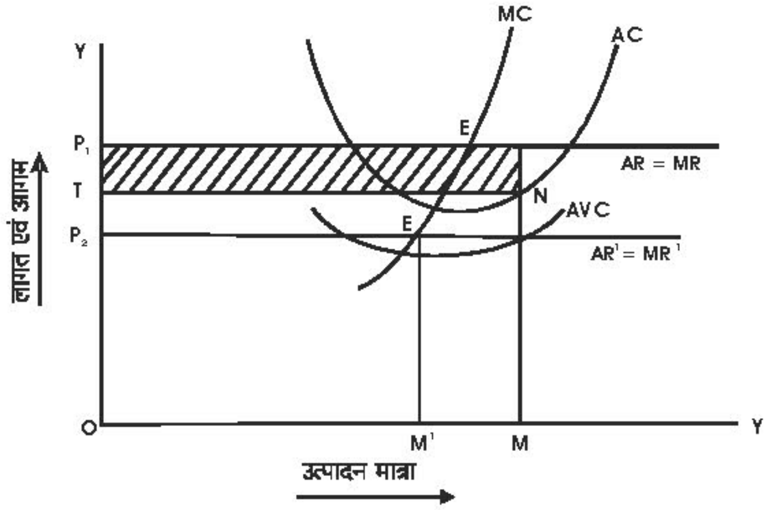

उत्पादन मात्रा

चित्र 4 (ख) फर्म के लिए लघुकाल में पूर्ण प्रतियोगिता में कीमत निर्धारण

लधुकाल में फर्म हानि प्राप्त कर सकती है यद्यपि लधुकाल में फर्म अत्यधिक लाभ अर्जित कर सकती है, इनको हानि का सामना भी करना पड़ सकता है। उदाहरणार्थ यदि बाजार के कीमत P_1Q_1 तक घट जाती है चूंकि मॉग वक्र D_1D_1 तक आ जाता है। चित्र 4(ख)। यह एक ऐसी प्रक्रिया को बल देगा जो उत्पादन मात्रा को तब तक समायोजित करेगी जब कि नयी साम्यावस्था E^1 न आ जाए यहॉ पुनः $AR^1 = R^1 = MC$ परन्तु चुंकि अतः फर्म को हानि होगी। चुंकि यह एक लघु काल की अवस्था है तो उत्पादन को बन्द करना सही नहीं होगा। फर्म अपनो हानि को न्यूनतम कर सकती है। चित्र के अनुसार उत्पादन मात्रा को नीचे की ओर OM^1 तक समायोजन किया गया है जहॉ से इसकी MC को कवर करता है अर्थात E^1M^1 को कवर करता है। जब तक MC कवर होगी रहेगी फर्म लघुकाल में जीवित रहेगी। यहॉ पर यह कहना अति आवश्यक होगा कि लघु काल में, एक फर्म पूर्ण प्रतियोगी बाजार में आर्थिक लाभ अर्जित करने की स्थिति में होती है। कभी कभी यह हानि की स्थिति में भी आ सकती है । यदि एक बार उद्योग में बाजार की कीमत

निर्धारित हो जाती है तो सभी फर्मे इसे स्वीकार कर लेती है। कोई भी फर्म इतनी विशाल एवं प्रभावी नहीं होती कि कीमत को प्रभावित कर सकें । यदि कोई फर्म अपने उत्पादों का मूल्य बाजार उद्योग की कीमत से कम रखना चाहेगी तो उसको कुल लाभ में कमी होगी और कभी कभी तो वह हानि की स्थिति में भी आ सकती है। यदि कोई फर्म अपने उत्पाद की कीमत बाजार की कीमत से अधिक रखना चाहेगी तो वह अपने उत्पादों को बेच नहीं पाएगी और पुनः यह हानि का कारण होगा। अर्थात कोई भी फर्म लघुकाल में बने रहने के लिए किसी दिये गये मूल्य (कीमत) पर केवल उतना ही उत्पादन करें जितना कि वह बेच सकती हो।

1.8.3 दीर्घ काल में कीमत निर्धारण :–

लघुकाल की तुलना में फर्म अपने आकार अथवा आयतन को पूर्णरूप से समायोजित सकते है तथा कुछ फर्में बाजार को छोड़ भी सकती हैं तथा कुछ नयी फर्में बाजार में आ भी सकती हैं।

यदि बाजार का मूल्य इस प्रकार है कि AR>AC, तब फर्म एक आर्थिक लाभ आर्जित करेगी जो कि असाधारण लाभ होगा। इस प्रकार से बाजार में नयी-नयी फर्में आकर्षित होंगी तथा पूर्ति वक्र दाहिनी ओर विस्थापित हो जाएगा। इसी प्रकार यदि AR<AC है तो फर्म हानि का सामना करेंगी। अत: सीमान्त फर्में उद्योग/बाजार को छोड़ देंगी जिससे कि पूर्ति वक्र पुन: बाँयी ओर विस्तापित हो जाएगा। यदि पूर्ति वक्र दाँयी ओर विस्थापित हैं तो कीमतों को नीचे खींचता है तथा बाँयी ओर विस्थापन कीमतों को ऊपर की ओर बल देता है। यह प्रक्रिया तब तक चलती रहती है जब तक कि कीमत इस प्रकार निर्धारित न हो जाए कि AR,AC के समान हो जाए (AR=AC) तथा फर्म केवल सामान्य लाभ ही अर्जित कर सकें।

दीर्घकाल में कीमत निर्धारण एवं उत्पादन मात्रा अथवा आकार का समायोजन, एक व्यक्तिगत कर्म के परिपेक्ष में चित्र ५(क) एवं ५ (ख) में दिया गया है।

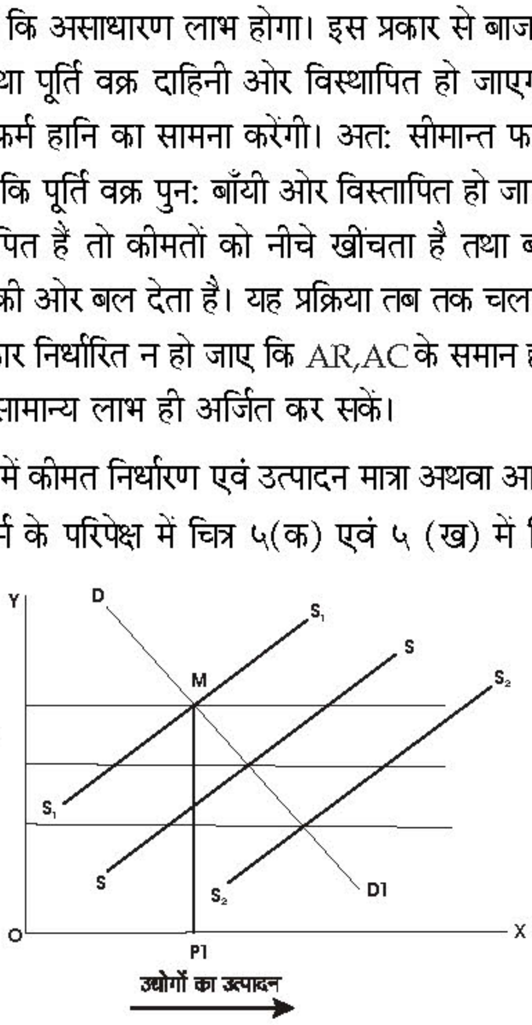

चित्र 5 (क) उद्योग के लिए दीर्घकाल में पूर्ण प्रतियोगिता में कीमत निर्धारण

यदि हम मान लें कि दीर्घकाल में मांग वक्र DD^1 है, लघुकाल की पूर्ति SS_1 है तथा कीमत का निर्धारण OP_1 पर हैं। इस कीमत पर फर्म अपने उत्पादन को M बिन्दु तक समायोजित करती हैं। साम्यवस्था, जहाँ $OP^1 = AR^1 = MR^1 = LMC$ है। फर्म MS प्रति इकाई का आर्थिक लाभ अर्जित करती हैं। असाधारण लाभ के कारण अन्य फर्म उद्योग में आकर्षित होती हैं। इस कारण पूर्ति वक्र दाहिनी ओर SS_2 तक विस्थापित होता है जो कि कीमत के OP_2 तक गिरने में सहायक होता है। इस कीमत पर फर्म एक ऐसी स्थिति में होती है। जो केवल (LMC ($= NQ_2$) को OQ_2 उत्पादन मात्रा तक कवर कर पाती हैं। तथा हानि की स्थिति में है। चूंकि AR<LAC है। जो फर्म की स्थिति में होती है वे ज्यादा समय तक व्यापार में जीवित न रह पाती हैं। इस प्रकार की फर्म बाजार छोड़ देती है तथा यह उद्योग में कुल उत्पादन में कमी का कारण बनती है जिसके कारण पूर्ति वक्र बॉयी ओर चला जाता है जो कि SS के द्वारा प्रदर्शित है। यहाँ कीमत PO के द्वारा प्रदर्शित है।

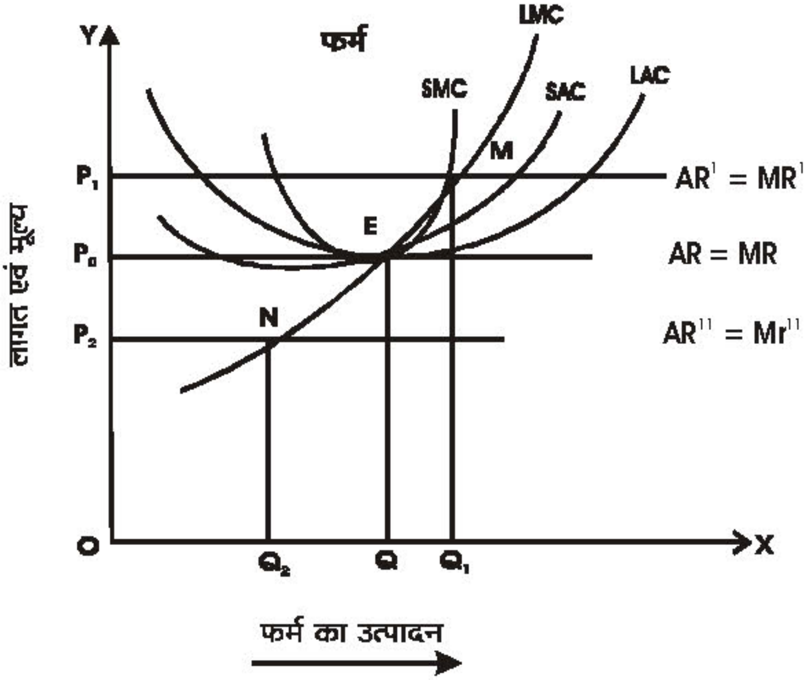

चित्र 5(ख) फर्म के लिए दीर्घ काल में पूर्ण प्रतियोगी में कीमत निर्धारण

वर्तमान फर्म अपने उत्पादन (Output) को नये बाजार कीमत पर समायोजित करने का प्रयास (OQ) पर करती है। OQ उत्पादन पर फर्म एक साधारण लाभ अर्जित करने की स्थिति में होती है तथा यहाँ $OPo = AR = MR = LMC - LAC$ (=EQ) पर होता है। इस स्थिति में न तो कोई फर्म आर्थिक लाभ ही अर्जित करने की स्थिति में होते हैं और न ही हानि की स्थिति में होती हैं। इस कारण नई फर्मे इस उद्योग में प्रवेश नहीं करती हैं और ना ही वर्तमान फर्म बाजार छोड़ कर जाती हैं। इस कीमत एवं उत्पादन पर व्यक्तिगत फर्म एवं उद्योग दोनों ही दीर्घकालीन साम्यवस्था में होते

हैं।

1.9 सारांश

इस प्रकार से हमने देखा कि पूर्ण प्रतियोगिता बाजार में यदि हम लघु काल में कीमत निर्धारण करना चाहते हैं तो किसी फर्म का लाभ अधिकतम तब होता है जब सीमान्त आगम, सीमान्त लागत के समान होता है। लघुकाल में उत्पादन को बन्द नहीं करते हैं तथा फर्म अपनी हानि को कम कर सकती है।

दीर्घ काल में न तो कोई फर्म अधिक लाभ ही अर्जित करने की स्थिति में होती है और न ही हानि की स्थिति में होती है। इस कारण नई फर्में उद्योग में प्रवेश नहीं करती हैं और ना ही वर्तमान फर्में बाजार छोड़कर जाती हैं। इस कीमत एवं उत्पादन पर व्यक्तिगत फर्म एवं उद्योग दोनों ही दीर्घकालीन साम्यावस्था में होते हैं।

1.10 महत्वपूर्ण शब्द

एकाधिकार बाजार, द्विअधिकार बाजार, ओलीगोपोली बाजार, पूर्ण प्रतियोगिता बाजार, उत्पादन का लागत सिद्धान्त, साम्यावस्था, उपयोगिता सिद्धान्त, पूर्ति, पूर्ति प्रक्रिया, शून्य पूर्ति, अनन्त पूर्ति, लघुकालीन बाजार, दीर्घकालीन बाजार।

1.11 अन्य चयनित पाठन

1. मैनेजीरियल इकोनोमिक्स - माहेश्वरी
2. टेक्स्ट बुक ऑफ इकोनोमिक्स - बोएस
3. टेक्स्ट बुक ऑफ इकोनोमिक्स थ्योरी - स्टोनियर
4. मैनेजीरियल इकोनोमिक्स - डीन

1.12 सन्दर्भ पुस्तकें

1. मैनेजीरियल इकोनोमिक्स - मोटे, पौल एण्ड गुप्ता
2. उच्चतर आर्थिक सिद्धान्त - एच० एल० आहूजा
3. मैनेजीरियल इकोनोमिक्स - थॉमस मौरिस

1.13 स्व परख प्रश्न

प्रश्न 1. पूर्ण प्रतियोगिता की दशा को परिभाषित कीजिए एवं इसके अन्तर्गत फर्म

संतुलन की व्याख्या कीजिए।

प्रश्न 2. पूर्ण प्रतियोगिता में फर्म द्वारा वस्तु की कीमत तथा उत्पादन किस प्रकार निर्धारित होते हैं।

प्रश्न 3. पूर्ण प्रतियोगिता में कीमत निर्धारण के कौन से दो सिद्धान्त हैं। विस्तार से समझाइये।

प्रश्न 4. पूर्ण प्रतियोगिता बाजार की क्या सीमाएं हैं ?

प्रश्न 5. उत्पादन की लागत सिद्धान्त से आप क्या समझते हैं? इसकी आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए।

प्रश्न 6. उपयोगिता सिद्धान्त की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए।

प्रश्न 7. फर्म की साम्यवास्था को परिभाषित करें। चित्र एवं उदाहरण द्वारा अपने उत्तर को स्पष्ट करें।

प्रश्न 8. साम्यावस्था में बदलाव के आठ प्रकार कौन - कौन से हैं?

प्रश्न 9. पूर्ण प्रतियोगिता के बाजार में कीमत निर्धारण की तीन अवस्था को चित्र द्वारा विस्तार से समझायें।

प्रश्न 10. पूर्ण प्रतियोगिता में दीर्घकाल में कीमत निर्धारण कैसे किया जाता है?

इकाई 2 अपूर्ण एंव एकाधिकार प्रतियोगिता में कीमत निर्णय

इकाई संरचना

2.1 उद्देश्य

2.2 प्रस्तावना

2.3 अपूर्ण प्रतियोगिता के विशेष लक्षण

2.4 अपूर्ण प्रतियोगिता मे कीमत निर्धारण

  2.4.1 लघुकाल में कीमत एंव उत्पादन निर्णय

  2.4.2 दीर्घकाल में कीमत एवं उत्पादन निर्णय

2.5 चैम्बरलिन सिद्वान्त का आलोचनत्मक विश्लेषण

2.6 एकाधिकार मे कीमत निर्धारण

  2.6.1 एकाधिकार के कारण एवं प्रकार

  2.6.2 लघुकाल मे कीमत एवं उत्पादन निर्णय (एकाधिकार)

  2.6.3 दीर्घकाल में कीमत एवं उत्पादन निर्णय (एकाधिकार)

2.7 एकाधिकार एवं एकाधिकृत प्रतियोगिता में अन्तर

2.8 सारांश

2.9 महत्वपूर्ण शब्द

2.10 अन्य चयनित पाठन

2.11 सन्दर्भ पाठ्य पुस्तके

2.12 स्व परख पश्न

2.1 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद विद्यार्थियो को निम्नलिखित उद्देश्यो की पूर्ति होगी।

- एकाधिकार बाजार की विशेषताओ को समझने में।
- एकधिकृत बाजार में लागत वक्रो के विश्लेषण में।
- लघु एवं दीर्घकाल में उत्पादन निर्णयो को लेने में।

NIDC-222

➤ एकाधिकार एवं एकाधिकृत बाजारो में विभेद करने में।

2.1 प्रस्तावना

पूर्ण प्रतियोगिता एवं एकाधिकार की स्थितियो को छोड़कर बाजार की सभी स्थितियॉ अपूर्ण पतियोगिता बाजार की स्थितियॉ होती है।

इनको हम निम्न तीन समूहो में पढ सकते है।

(1) द्विधिकार (Dunopoly) अर्थात सैद्वान्तिक रूप से उत्पादक उत्पादन विभेदीकरण नहीं करते है परन्तु वास्तविक रूप में उत्पादन विभेद किया जाता है।

(2) अल्पाधिकार (olygopoly) अर्थात बाजार में कुछ ही उत्पादक होते है जो कि एक अच्छे स्तर तक उत्पादो का विभेदीकरण करते है यहॅा कुछ का तात्पर्य सख्या में 10 से कम उत्पादको का होना होता है। परन्तु सख्या का यह तर्क बाजार के आकार पर निर्भर करता है।

(3) एकाधिकृत प्रतियोगिता (Mnopolistic) अर्थात जहॉ अधिक सख्या में प्रतियोगी हो तथा पूर्ण एवं अपूर्ण या एकाधिकृत प्रतियोगिता में विभेद उत्पाद विभेदन अथवा ब्राण्डो के बल पर ही किया जाता है।

प्रायः हम दैनिक अपयोग की जितनी भी वस्तुऐं देखे वे सामान्यतः एकाधिकृत अथवा अपूर्ण पतियोगिता के अर्न्तगत ही आती है उदाहरणर्थ कारें, साबुन, टूथपेस्ट, इत्यादि।

अर्थात हम कह सकते है कि प्रतियोगिता के सीमित होने को हम अपूर्ण प्रतियोगिता कहते है । यदि क्रेता एवं विक्रेताओ की सख्या अधिक हो परन्तु वस्तु एकस्वरूप नही है एवं उनमें विभिन्नता है अथवा क्रेताओ एवं विक्रेताओ को बाजार का पूर्ण ज्ञान नही है तो प्रत्येक दशा में अपूर्ण प्रतियोगिता कहा जाएगा। तकनीकी शब्दों में अपूर्ण प्रतियोगिता के होने के लिये एक फर्म की मॉग पूर्णतया लोचदार नही होती है।

2.2 अपूर्ण प्रतियोगिता के विशेष लक्षण

प्रायः निम्नाकित दिये दस लक्षणो के द्वारा हम अपूर्ण अथवा एकाधि ाकृत प्रतियोगिता बाजार को समझ सकते है ।

2.2.1 विभेदित उत्पाद

अपूर्ण प्रतियोगिता में विभिन्न विक्रेताओ द्वारा निर्मित वस्तुऐं बिल्कुल

एक जैसी नहीं होती है बल्कि उनमें कुछ अन्तर होता है। वह अन्तर आकार, रंग, रूप, पैकेजिंग, ब्राण्ड, ट्रेडमार्क इत्यादि के कारण हो सकता है। इस अन्तर के कारण विभिन्न विक्रेताओ की वस्तुएं एक दूसरे की पूर्ण स्थानापन्न तो नहीं होती परन्तु निकट स्थानापन्न होती है। इस प्रकार का उत्पाद विभेदन वास्तविक या काल्पनिक हो सकता है। इस प्रकार के उत्पादो के अच्छी या कम अच्छी गुणवत्ता को विज्ञापन के द्वारा अथवा अन्य संवर्धन के द्वारा दर्शाया जाता है।

2.2.2 उत्पादो से उपभोक्ताओ का लगाव

विभिन्न उत्पाद श्रेणियो का लगाव विभिन्न प्रकार के उपभोक्ताओ के द्वारा उनकी आय, जीवन शैली इत्यादि अन्य कारको के कारण हो सकता है। प्रायः उपभोक्ता वस्तु के ब्राण्ड नाम को उसकी कीमत से ज्यादा बल देते है उदाहरणार्थ कुछ उपभोक्ता अन्य सस्ते साबुनो के उपलब्ध होने के बावजूद भी मेडिमिक्स या हिमालय साबुन को प्रयोग करते है क्योकि उनकी जगह में साबुन की गुणवत्ता का होना अधिक आवश्यक है।

2.2.3 मॉग की कीमत लोच का एक से कम होना

अपूर्ण प्रतियोगिता बाजार में उत्पादको को अपने उत्पादो को अधिक मात्रा मे बेचने के लिए कीमतो में कमी करनी पड़ती है अर्थात यहॉ औसत आगम (AR) तथा सीमान्त आगम (MR) वक्र का झुकाव सीधी तरफ एवं नीचे की ओर होता है एकाधिकार की तुलना में लोच की मात्रा कम होती है। पूर्ण प्रतियोगिता की भॉति AR एवं MR वक्र क्षैतिज नही होते है यदि अल्पाधिकार बाजार की स्थिति में विक्रेता विलासपूर्ण अथवा महगीं वस्तुएं बेचता है तो AR एवं MR वक्रो की तीव्रता कम होगी वे समतल तो होगे परन्तु उनका झुकाव नीचे की तरफ गिरता हुआ होगा।

2.2.4 कभी कभी विक्रेता के प्रति भी लगाव होना

यह सेवा बाजार मे अपूर्णता को लाते है। लोग अपने हिसाब से सजर्न, वकीलो , डाक्टरो, दर्जियो, नाईयो, इत्यादि को प्राथमिकता देते है तथा उपयोग हेतु उनसे लगाव रखते है। इस प्रकार व्यक्तिगत सेवाओ के लिए ये विक्रेता अपने भिन्न भिन्न उपभोक्ताओ से भिन्न कीमते वसूल करते है। उदाहरण के तौर पर कुछ सुन्दर एवं अच्छी शारीरिक बनावट वाले उपभोक्ता

एक ऐसे सैलून मे जाना पसन्द करते है जहॉ के वर्कर्स देखने में अच्छी छवि रखते है।

2.2.5 मॉग की आडी लोच का होना एवं परन्तु बहुत अधिक न होना

पूर्ण प्रतियोगिता बाजार मे मॉग की गाढी लोच अन्त तक होती है। एकाधिकार बाजार में यह शून्य होती है यह जितना ब्राण्ड एवं उत्पादक से सम्बन्ध होती है उतना कीमत से नही ।

2.2.6 अपूर्ण प्रतियोगिता में अधिक अविभाज्यता का होना

अल्पधिकार फर्म में पूर्ण पतियोगिता बाजार के आर्थिक आकार के साधार पर फर्मे नही होती है जैसा कि हम जानते है कि बढते हुए आगम या घटती हुई लागत में अविभाज्यता एकमुश्त निवेश होती है। जिसे कि टुकड़ो मे निदेशित नही किया जा सकता। या तो पूर्ण निवेश होगा या बिल्कुल नही होगा। अल्पाधिकार कि शक्ति अविभज्यताओ को दूर करने की शक्ति के सीधे अनुपातिक सम्बन्ध मे होता है अर्थात उच्च मॉग के निदेश को एकमुश्त करने देना। स्केल पर गैर उदासीन आगम अपूर्णता को जन्म देते है। अपूर्णता क्षयकारी स्थितियो को जन्म दे सकती है उदाहरणार्थ विजय सुपर अथवा लैम्बरेटा स्कूटर अब बाजार में नही है। इसी प्रकार हीरो मजिस्टिक,लूना, बजाज M-80 आदि मोपेड तथा फियेट जैसी कारें भी बाजार से गायब हो चुकी है । यदि स्केल पर गैर उदासीन आगम बढते हुए आगम को जन्म देते है तो मोटर्स अल्पाधिकार स्थापित हो जाता है। उदाहरणार्थ मारूति हुण्डई एवं टाटा मोटर्स बाजार में अच्छा प्रदर्शन कर रहे है। आज भारत में जनरल मोटर्स, फोर्ड आदि सरीखी कम्पनियॉ सघर्ष करती नजर आ रही है जो कि विश्व स्तर पर अत्यधिक सफल है। मारूति एवं हुण्डई मोटर्स ने आज की बढती हुई जनसख्या तथा घटती जमीन के कारण कम हो रही जगह को दृष्टिगत रखते हुए छोटी कारो का उत्पादन किया और इसमें वे सफल रहे। सुसंगठन नवीनीकरण तुलनात्मक सस्ता बनाना एवं तुलनात्मक आसान करना अल्पाधिकार प्रतियोगियो को आगे बढने के लिये मार्ग प्रशस्त करते है।

अविभाज्यताओ को दूर करने के लिए एक अतिरिक्त सामर्थ्य की भी आवश्यकता होती है वो है ब्रेक इवन बिन्दू से पूर्ण स्वयं को बचा के रखने की। इस प्रयत्न मे आने वाली लागते ब्रेक इवन बिन्दु से पूर्व आने वाले आगम से सदैव ज्यादा होती है। प्रायः हानि की स्थिति देखने को मिलती है परन्तु आगे

आने वाले समय में निश्चित लाभो की प्रबल सम्भावनाएं रहती है केवल वे ही फर्म अल्पाधिकार मे आते है जो कि आगे बढने की चाहत रखती है ।

2.2.7 फर्मो का प्रवेश मुफ्त होता है परन्तु अक्सर न होना

पूर्ण प्रतियोगिता बाजार में फर्मो के प्रवेश एवं निकास पर कोई प्रतिबन्ध नही होता है अकुशल फर्म बाजार मे जीवित नही रह पाते है। अल्पाधिकार बाजार में यदि कार निर्माता कम्पनी का उदाहरण दे तो इस क्षेत्र मे कोई भी नई कम्पनी प्रवेश नही कर रही है । क्योंकि इस प्रकार की स्थिति में अत्यधिक धन तथा उत्पाद विभेदन के लिए के लिये अत्यन्त कुशलता की आवश्यकता होती है।

2.2.8 उत्पादको का आत्मनिर्भर एवं सतर्क होना

अल्पाधिकार बाजार मे फर्मो के लिए यह अति अवश्यक है कि प्रतियोगियो पर पूर्ण रूप से दृष्टि रखे कि वे किस प्रकार के प्रतियोगी कदम उठाते है यदि कोई कम्पनी कीमतो में कमी करती है तो और दूसरी कम्पनियो को भी कीमतो में कमी करनी पड़ती है नियन्त्रण। साधारणतया इसके बाजार में एक समूह नेता फर्म होती है जब कभी एक निमार्ता कोई बदलाव लाता है तो बाकी की फर्म भी उसी परिवर्तन को लाती हैं। यदि पुनः हम कार बाजार का उदाहरण ले तो यदि पॉचा कार निर्माता कार में पावर स्टेरिंग तथा पावर विण्डो देते है तो छठे निर्माता को भी ये सुविधाए देगी ही। बाजार के अन्य प्रतियोगियो को टक्कर देने के लिए उत्पादो मे नवीनीकरण तथा खोज होती रहती है। कहने को तो व्यक्तिगत कीमत नीति होती है परन्तु वास्तविक रूप में यह केवल नाम मात्र के लिए ही होती है।

2.2.9 उपभोक्ताओ का न तो तर्क संगत और न ही पूर्ण गतिशील होना

इस प्रकार की सिथिति में उपभोक्ता सदैव ही कीमत विभेद के बारे में पूर्ण रूप से जानकार नहीं होते है। इसके अतिरिक्त ये भी आवश्यक है कि कोई उपभोक्ता सभी सम्भावित स्थानो से आवश्यक सूचना कितने प्रयास तथा समय में प्राप्त कर सकता है। कार की खरीदरी के लिए भी उपभोक्ता अपने निकटतम डीलर के पास ही जाते है। अर्थात ये संभव है कि उपभोक्ता अक्रियाशील तथा आलसी हो।

2.2.10 लागत वक्रो का V आकार का होना तथा आगम वक्रो का नीचे की तरफ दाहिनी ओर झुका होना

V आकार के वक्रो का आकार इस प्रकार का नही हो सकता है कि दो फर्मो के सीमान्त लागत एवं औसत लागत वक्र एक दूसरे पर अभिमुख हो। इनके झुकाव विभिन्न समयो एवं विभिन्न उत्पादन मॉगो में अलग अलग होगे। औसत एवं सीमान्त वक्र जहॉ एक स्थिति मे धीरे धीरे नीचे झुकते हुए प्रतीत हो सकते है। वही दूसरी ओर वे तीव्रता से नीचे की ओर झुकते प्रतीत हो सकते है

2.2.11 अपूर्ण प्रतियोगिता के बेकार शेष (wastes)

अपूर्ण प्रतियोगिता बाजार में पूरक अथवा अतिरिक्त लागते एवं आड़ी परिवहन (cross-transport) के बेकार शेष होते है दिल्ली में निर्मित कारो को हैदराबाद में खरीदा जाता है जबकि हैदराबाद में निर्मित कार को दिल्ली में खरीदा जाता है। भाड़े परिवहन की लागते विक्रय लागतो को बढाती है तथा उपभोक्ताओ की पसन्द के कारण दनको उपभोक्ताओ के द्वारा ही वहन करना पड़ता है। किसी बाजार में जितनी ज्यादा प्रतियोगिता होती है उतना ही प्रचार प्रसार विक्रेतओ के द्वारा किया जाता है तथा उतनी ही अधिक कीमत उपभोक्ताओ के द्वारा वहन की जाती है इसके अतिरिक्त विक्रय कि पूरक लागतो (supplimentary costs) को भी उपभोक्ताओ से ही वसूला जाता है। अपूर्ण प्रतियोगिता के लिए परिवहन लागते रूकावट भी हो सकती है तथा नही भी हो सकती है। ये लागते आवश्यक रूप से अपूर्ण प्रतियोगी बाजार में होती है ।

2.3 अपूर्ण अथवा एकाधिकृत प्रतियोगिता में कीमत निर्धारण

एकाधिकृत बाजार में कीमत एवं उत्पादन का माडल सन 1930 में एडवर्ड चैम्बरलिन के द्वारा दिया गया था। आज के युग में उनके दिये गये इस माडल की प्रासंगिकता काफी घट गयी है परन्तु फिर भी सैद्वान्तिक रूप से इसको आज भी माना जाता है। चैम्बरलिन के माडल के अनुसार एकाधिकृत प्रतियोगिता एक इस प्रकार की बाजार व्यवस्था है जिसमें अधिसख्य विक्रेता होते है जो विभेदित उत्पादो को बेचते है तथा इसके लक्षणो को हम पूर्व में ही पढ चुके है।

2.3.1 लघुकाल में कीमत एवं उत्पाद निर्धारण

एकाधिकृत एवं अपूर्ण प्रतियोगिता के लक्षण पूर्व प्रतियोगिता के काफी समरूप होते है परन्तु इसके अन्तर्गत कीमत एवं उतपादन निर्णय एकाधिकार स्थिति के अन्तर्गत कीमत एवं उत्पादन निर्णय के लगभग समान होते है। इसका कारण यह है कि एकाधिकृत प्रतियोगिता के अन्तर्गत एक फर्म एक एकाधिकारी की ही भॉति नीचे झुकता हुआ वक्र महसूस करती है इस प्रकार के मॉग वक्र के कारण निम्न है।

1– एक वर्ग विशेष के उपभोक्ताओ के लिए अधिक प्राथमिकता।

2– पूर्ति के उपर विक्रेताओ का एकाधिकार होना। चूकि उपभोक्ताओ की किसी बाण्ड के लिए स्वमिभक्ति या अधिक लगाव होता है तो ऐसी स्थिति में विक्रेता के पास कीमत बढाने का अवसर होता है तथा इस पर भी वह अपने उपभोक्ताओ को बनाए रखने में सक्षम होता है और चूँकि उत्पादो में स्थानापन्न की प्रकृति होती है तो विक्रेता अपने उत्पादो की कीमते कम करके अन्य उपभोक्ताओ को भी अपने उत्पाद के लिए आकर्षित कर सकता है।

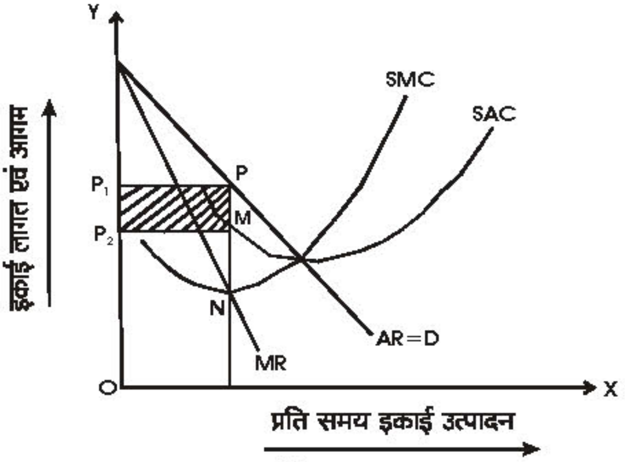

चित्र न0 1

एकाधिकृत प्रतियोगिता के अन्तर्गत कीमत एवं उत्पादन निर्धारण

लघुकाल में कीम एवं एत्पादन निर्णय उपरोक्त चित्र में दर्शाया गया है इसमें फर्म की लघुकाल आगम एवं लागतो को एकाधिकृत प्रतियोगिता में दिखाया गया है।

जैसा कि चित्र में दिखाया गया है चित्र की सीमान्त आगम MR इसकी सीमान्त लागत (MC) को N बिन्दू से काटते है। यह बिन्दू उत्पादन OQ पर आधिकतम लाभ की आवश्यकता स्थिति को पूर्ण करता है मॉग वक्र दिये होने पर इस उत्पादन को PQ कीमत पर बेचा जा सकता है। अर्थात

NMC-222

कीमत का निर्धारण PQ पर होगा। इस उत्पादन एवं कीमत पर कोई फर्म अधिकतम एकाधिकार या आर्थिक लाभ PM प्रति इकाई उत्पादन पर प्राप्त करती है तथा कुल एकाधिकार लाभ को आयत P1 PM P2 के द्वारा प्रदर्शित किय जाता है आर्थिक लाभ PM (प्रति इकाई) केवल दीर्घकाल में ही रहता है क्योकि उद्योग में कोई भी नयी फर्म नही प्रवेश करती है। परन्तु एकाधिकृत पतियोगिता की स्थिति में सभी फर्मो के लाभ की स्थिति समान नही होगी क्योंकि उनके उत्पादो की मॉग की लोच भिन्न होगी। यदि कुछ फर्मो कीउत्पादन लागत दूसरी फर्मो की तुलना में अधिक हो तो केवल सामान्य लाभ ही अर्जित करेंगी। इसी प्रकार कुछ फर्मो को हानि का भी सामना करना पड़ता सकता है जो उसकी औसत स्थिर लागतो पर निर्भर करेगी।

2.3.2 दीर्घकाल में कीमत एवं उत्पादन निर्णय :–

दीर्घकाल में कीमत एवं उत्पादन के निर्णय को चित्र सं0 2 मे दर्शाया गया है विश्लेषण को जानने के लिये माना कि दीर्घकाल में किसी बिन्दू पर फर्म के आगम वक्रो को AR तथ MR के द्वारा एवं दीर्घकालीन लागतो को LACतथा LMC के द्वारा प्रदर्शित किया है जहॉ LAC का तात्पर्य दीर्घकालीन औसत लागत एवं LMC का तात्पर्य दीर्घकालीन सीमान्त लागत होता है जैसा कि चित्र में प्रदशित है कि MR, एवं LMC एक दूसरे को M बिन्दु पर काटती है जो कि साम्य उत्पादन को OQ पर तथा कीमत P_2Q_2 कीमत निर्धारित करते हैं। P_2Q_2 कीमत पर फर्म असाधारण या आर्थिक लाभ P2T प्रति उत्पादन इकाई अर्जित करती है। यह स्थिति लघुकाल में साम्यावस्था के समान है। आइये अब देखते है कि दीर्घकाल में क्या होता है। दीर्घकाल में असाधारण लाभ (Super normal profit) एकाधिकृत प्रतियोगिता बाजार में दो बदलावो को दर्शाता है।

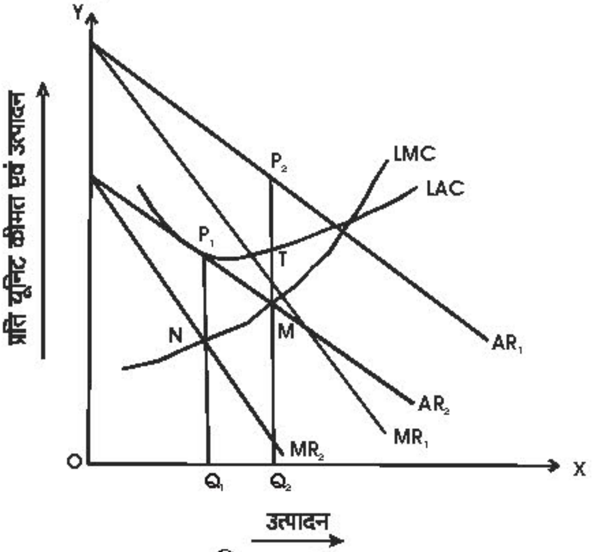

चित्र सं02

प्रथमः– असाधारण लाभ को देखते हुए नयी फर्म भी बाजार में प्रवेश करेगी। इस कारण वर्तमान फर्मो का बाजार के उपभोक्ताओ का कुछ भाग इन नयी फर्मो के द्वारा ले लिया जाता है। परिणाम स्वरूप इनका मॉग वक्र नीचे की ओर वायी ओर झुक जाता है जब तक कि AR, LAC के स्पर्श रेखा रहता है। इस प्रकार के मॉग वक्र को उपयुक्त चित्र 2 में दर्शाया गया है जहॉ ARवक्र AR1 से AR2 तक विस्थापित हो रहा है तथा MR वक्र MR1 से MR2 तक विस्थापित होता है।

द्वितीयः– जब फर्मो की सख्या बाजार मे बहुत अधिक बढ जाती है तो फर्मों के बीच कीमतो मे प्रतिस्पर्धा बहुत बढ जाती है इसका कारण यह है कि जिन फर्मों का बाजार भाग दूसरी फर्मो के द्वारा ले लिया जाता है वे कीमत कम करके अपने बाजार अंश/भाग को स्थापित रखने का प्रयत्न करती है इस प्रकार कीमतो में अधिक प्रतिस्पर्धा फर्म की मॉग वक्र के लोच/झुकाव को कम और बढा देती है अर्थात मॉग वक्र की लोच और अधिक बढ जाती है।

चित्र में देखने पर पता चलता है कि AR2 का झुकावAR1 से अधिक है तथा MR2 वक्र AR2 वक्र सापेक्ष MR वक्र है।

एकाधिकृत पतियोगिता में कीमत एवं उत्पादन के निर्धारण की एक आदर्श स्थिति को बिन्दु P1 पर दर्शाया गया है जैसा कि चित्र में विदित है कि LMC,MR2 को बिन्दु N पर काटती है जहॉ फर्म के दीर्घकालीन साम्यावस्था उत्पादन को P1Q1 कीमत पर OQ1 मात्रा पर पाया जाता है। देखे कि कीमत P1Q1LAC के समान है। इसका तात्पर्य यह है कि दीर्घकाल में एकाधिकृत प्रतियोगिता के अर्न्तगत फर्म केवल सामान्य लाभ को ही प्रदर्शित करती है। जैसे ही सभी फर्म इस अवस्था में पहुॅच जाती है तो बाजार में कोई भी आकर्षण नही रहता है। अर्थात बाहरी किसी भी फर्म को असाधारण लाभ की स्थिति का लालच नजर नहीं आता है। और न ही वर्तमान फर्मो को बाजार से बाहर जाने का कोई कारण नजर आता है जोकि दीर्घकाल में उद्योग की साम्यावस्था को प्रदर्शित करता है।

2.4 चैम्बरलिन के सिद्वान्त का आलोचनात्मक विश्लेषण

चैम्बरलिन के एकाअधिकृत प्रतिस्पर्धा सिद्वान्त की सैद्वान्तिक एवं प्रयोगात्मक दोनो स्तरो पर आलोचना की गई है आइये पहले सैद्वान्तिक रूप पर इसकी कमजोरी का अध्ययन करते है।

प्रथमः— चैम्बरलिन की परिकल्पना के अनुसार एकाधिकृत प्रतियोगिता स्वतंत्र रूप से कार्य करते है तथा उनके कीमत की रणनीतियॉ उनकी प्रति स्पर्धी फर्मो के द्वारा ज्ञात नही हो पाती है । इस बात पर यह पश्न उठता है कि जब फर्मो को उत्पादो में गहन प्रतिस्पर्धा होती है तथा ये एक दूसरे के स्थानापन्न होते है तो एक फर्म के द्वारा कीमतो में बदलाव से दूसरे फर्मो के उत्पाद विक्रय पर अन्तर अवश्य पड़ेगा तथा उस बात को नजर अंदाज नही किया जा सकता है।

द्वितीयः— चैम्बरलिन के मॉडल में अप्रत्यक्ष रूप से यह माना जाता है कि एकाधिकृत प्रतिस्पर्धा में फर्म अपने भूतकालीन अनुभवो से कुछ नही सीखती है। यद्यपि लगातार कीमत में कमी के कारण उनको हानि होती है तब भी वे कीमत कम करने की गल्तियॉ करती है। यह एक असम्भव सी परिकल्पना लगती है।

तृतीयः— चैम्बरलिन के द्वारा उद्योगो को एक समूह बताना नितान्त ही संदिग्ध नजर आता है यह उत्पाद विभेदन के लिए भी असाम्जस्य की स्थिति पैदा करेगा वास्तविकता में तो प्रत्येक फर्म अपने विशिष्ठ एवं एकमात्र उत्पादन के कारण एक उद्योग की ही भॉति कार्य करती है । उनके एक महत्वपूर्ण परिकल्पनानुसार समान लागते एवं आगम वक्र प्रश्नवाचक है चुॅकि प्रत्येक फर्म एक उद्योग की भाति ही होती है तो विभिन्न फर्मो की लागत एवं आगम वक्रो की दिशाये भिन्न होगी न कि एक समान ।

पंचमः— उत्पाद विभेदन की दृष्टि से चैम्बरलिन का बाजार मे मुक्त प्रवेश भी एक तरह से सामंजस्य को नही दर्शाता है यद्यपि कानुनी बात करे तो इस विश्व में रोज कोई भी उदाहरण नही है जो एकाधिकृत प्रतिस्पर्धा की स्थिति को दर्शाता हो आज के युग में अधिकांश बाजारो को पूर्ण पतियोगिता अल्पाधिकार प्रतियोगिता या एकधिकार प्रतियोगिता के ही द्वारा समझाया जा सकता है इस प्रकार यह कहा गया है कि चैम्बरलिन के माडल के द्वारा एकाधिकृत प्रतियोगिता का विश्लेषण अत्यन्त ही अवास्तविक बाजार को प्रदर्शित करता है कुछ अर्थशास्त्रियो जैसे कि कोहेन एवं सायर्त का ऐसा मत है कि एकाधिकृत पतियोगिता का माडल आर्थिक सिद्वान्त के द्वारा योग में बहुत उपयोगी नही प्रतीत होता है। इसका कारण इस मॉडल के उपयुक्त आलोचना के बावजूद भी चैम्बरलिन के द्वारा दिये गये कीमत के सिद्वान्त को हम नजर अंदाज नही कर सकते है चैम्बरलिन ऐसे पहले अर्थशास्त्री थे जिन्होने विभेदीकरण उत्पाद एवं विक्रय लागतो का सिद्वान्त दिया जिसका प्रयोग एक निर्णय कारक के रूप मे किया गया। इसके अतिरिक्त चैम्बरलिन

के द्वारा मॉग वक्र का सिद्वान्त दिया गया जो फर्मो के व्यवहार को बाजार अंश के द्वारा समझने मे सहायक है बाद में यही किक्ड मॉग वक्र के विश्लेषण मे महत्वपूर्ण सिद्व हुआ।

2.5 शुद्व एकाधिकार में कीमत निर्धारण

एकाधिकार पतियोगिता मे कीमत निर्धारण से पूर्व आइये एकाधिकार की विशेषताओ के बारे में जान लें।

(1) एकाधिकार के अन्तर्गत वस्तु का उत्पादक अथवा विक्रेता इकलौता होता है तथा अन्य उत्पादको एवं विक्रेताओ का अभाव पाया जाता है एक एकधिकारी का वस्तु की पूर्ति पर पूर्ण नियन्त्रण होता है।

(2) एकाधिकार के अन्तर्गत फर्म ऐसी वस्तु का उत्पादन एवं विक्रय करती है जिसके निकट स्थानापन्न बाजार मे उपलब्ध नही होते है।

(3) एकाधिकार मे उद्योग और फर्म मे कोई अन्तर नही होता है फर्म ही उद्योग का पर्यायवाची होता है अतः फर्म के साम्य और उद्योग के साम्य मे कोई अन्तर नही होता है।

(4) एकाधिकार की स्थिति में अल्पकाल एवं दीर्घकाल दोनो में ही नयी फर्मो के प्रवेश पा प्रभावी पतिबन्ध लगाये जाते है एकाधिकार बाजार तक बने रह सकते है जब तक कि बाजार में अन्य फर्म प्रवेश नही करती है।

(5) एकाधिकारी फर्म कीमत निर्धारण होती है।

(6) एकाधिकारी फर्म का औसत आगम वक्र एवं सीमान्त आगम वक्र नीचे दिये गये चित्र की भॉति नीचे की ओर गिरता हुआ होता है। चुॅकि कम कीमत पर वस्तुओ का विक्रय होता है एवं अधिक कीमतो पर वस्तुओ का विक्रय घट जाएगा सीमान्त आगम वक्र औसत आगम वक्र के नीचे की ओर झुका होता है।

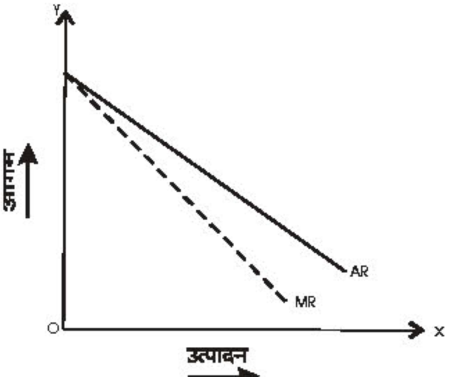

चित्र नं03

(7) एकाधिकार बाजार में यद्यपि विक्रेता तो केवल एक ही होता है परन्तु उपभोक्ता अधिसंख्य होते है परन्तु उपभोक्ताओ की सख्या पूर्ण प्रतियोगिता से कम ही होती है।

(8) दीर्घकाल मे एक एकाधिकारी असामान्य लाभ अर्जित कर सकता है ।

(9) एकधिकारी विभिन्न स्थानो पर विभिन्न उपभोक्तओ को भिन्न कीमतो पर उत्पाद बेच सकता है।

2.5.1 एकाधिकार के कारण एवं प्रकार

एकाधिकार प्रतियोगिता की उत्पत्ति तथा रहने का कारण वे कारक है जो बाजार में अन्य प्रतियोगियों के प्रवेश को रोकते है तथा वर्तमान फर्मो को बाहर निकालने में सहायक होते है। अतः प्रवेश के लिए प्रतिबन्ध, एकाधिकार बाजार को रखने में एक महत्वपूर्ण कारक होते है। बाजार में प्रवेश को प्रतिबन्धित करने वाले कारक निम्न रूप में हो सकते है।

2.5.1.1 कानूनी प्रबिन्ध

कुछ प्रकार के एकाधिकारो को जनहित में ध्यान रखकर कानूनी प्रतिबन्धों के द्वारा बनाया जाता है। भारत में बहुत से क्षेत्र ऐसे है जिनमें सरकारी नियन्त्रण उदाहरणार्थ डाक विभाग, विद्युत विवरण, भारतीय रेल आदि। इस प्रकार को क्षेत्रों में प्रवेश के लिए भारत सरकार द्वारा विभिन्न ऐसे कानूनी पहलू डाले गये है। जो बाजार में नये प्रतियोगियों को प्रवेश से वंचित करते है । जब कि राज्य या केन्द्र सरकार निजी क्षेत्रों में भी लाइसेन्स या पेटेण्ट के द्वारा एकाधिकार स्थापित कर सकते है तथा सरकार के द्वारा जनहित में ऐसे भी नियम बनाए जा सकते है कि निजी कम्पनियॉ कीमतों में कमी करें तथा नये नये अभिष्कारों के द्वारा उपभोक्ताओं को सुविधाएं दे तथा कीमतों को कम रखें। उदाहरणार्थ टेलीफोन सेवाओं में सरकार के हस्तक्षेप के द्वारा ही आज एस0टी0डी0 काल रेट एक रूपया तथा लोकल कॉल 50 पैसे में सम्भव हुयी है। कभी कभी सरकार, निजी क्षेत्रों को भी एकाधिकार में साझेदारी को प्रोत्साहन देती है तथा इसे हम फ्रेचाइर्जी एकाधिकार कहते है।

2.5.1.2 महत्वपूर्ण कच्चे माल पर नियन्त्रण

कुछ फर्म इसलिए एकाधिकार शक्ति को ग्रहण करती है क्योंकि उनके द्वारा महत्वपूर्ण कच्चेमाल (जो कि कुछ उत्पादों को उत्पादन में आवश्यक होते है जैसे कि बॉक्साइट, ग्रेफाइट, हीरा आदि) पर नियन्त्रण होता है। उदाहरण

NMDC-222

के तौर अमेरिका में द्वितीय विश्वयुद्ध के दैरान अमेरिका की एल्युमिनियम कम्पनी ने इस प्रकार के एकाधिकार को कच्चेमाल का एकाधिकार कहते है। इस प्रकार के एकाधिकार का एक मुख्य कारण यह भी होता है। कि कुछ उत्पादों के उत्पादन के लिए विशेष तकनीकी जानकारी होना भी आवश्यक होता है।

2.5.1.3 कुशलता:

एकाधिकार का एक मुख्य कारण स्केल की मित्त्ययिता (Scale of Economiex) भी होता है। यदि किसी फर्म की दीर्घकालीन न्यूनतम लागत या उत्पादन की मात्रा उसके बाजार के आयतन के समान हो तो बड़ी फर्मे इसको दीर्घकाल लाभकारी हो पाती है। तथा लघुकाल में कीमतें प्रतिस्पर्धा को कम करती है। एक बार इन फर्मो का एकाधिकार स्थापित हो जाता है। तो नयी फर्मो का बाजार में आना तथा बने रहना, असम्भव हो जाता है। इस आधार पर उत्पन्न हुए एकाधिकारों को 'प्राकृतिक एकाधिकार' कहते है। एक प्राकृतिक एकाधिकार का जन्म कुशलता के तकनीकी कारणों से या कुशलता के आधार भूत नियमों के द्वारा हो सकता है।

2.5.2 लघुकाल में कीमत एवं उत्पादन निर्धारण

पूर्ण प्रतियोगिता की ही नीति, एकाधिकार के अन्तर्गत भी कीमत का निर्धारण आगम एवं लागतों की स्थिति के द्वारा ही निर्धारित किया जाता है। यद्यपि लागत स्थितियॉ जैसे की AC एवं MC वक्र एक प्रतियोगी एवं एकाधिकार बाजार साधारणतः समान ही होते है परन्तु आगम स्थितियॉ भिन्न रहती है। आगम स्थितियॉ जैसे कि ARएवं MR वक्र एकाधिकार के अन्तर्गत भिन्न होती है क्योंकि प्रतिस्पर्धी फर्मो के विपरीत, एकाधिकार बाजार का मांग वक्र नीचे की तरफ झुकता हुआ प्रतीत होता है । एक एकाधिकारी अपने कीमतों को कम करके विक्रय बढ़ा भी सकता है तथा कीमत अधिक करके भी अपने कुछ उपभोक्ताओं को बनाए रह सकता है। चूंकि एकाधिकारी फर्म एवं उद्योग लगभग समान ही होते है अतः एक एकाधिकारी फर्म एवं उद्योग के मांग वक्र भी समान होते है जोकि नीचे की तरफ झुकतः प्रतीत होता है।

जब मांग वक्र नीचे की तरफ झुकता है तो सीमान्त आगन MR वक्र AR वक्र के नीचे आ जाता है तथा MR का झुकाव AR को झुकाव का दो गुना होता है। निम्नांकित चित्र संख्या 4 में एक एकाधिकारी फर्म के

लघुकालीन आगम एवं लागत स्थितियों को दर्शाया गया है। फर्म के औसत एवं सीमान्त वक्रो MR एवं AR वक्रों के द्वारा क्रमशः दिखाया गया है एवं इसके लघुकालीन औसल लागत को SAC एवं लघुकालीन सीमान्त लागत को SMC वक्रों के द्वारा दिखाया गया है।

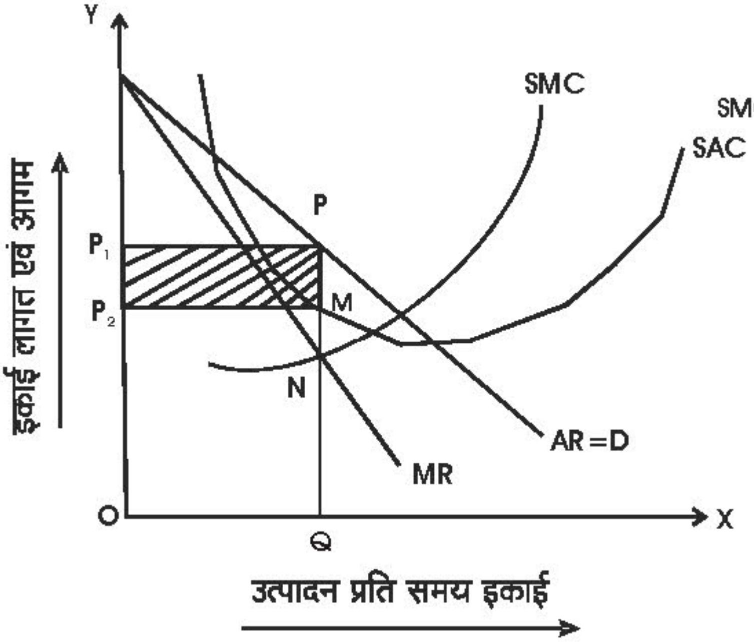

लाभ को अधिकतम करने वाली एकाधिकारी प्रतिस्पधी के कीमत एवं उत्पादन के निर्णय नियम एक प्रतिस्पार्धात्मक उद्योग के समान ही होते है। एक अधिकतम लाभ अर्जित करने वाली एकाधिकारी फर्म एक ऐसे कीमत एवं उत्पादन के संयोजन को पंसद करती है जहॉ MR,SMC के समान होता है MR = SMC चित्रानुसार फर्म के लागत एवं आगम वक्र के दिये होने पर MRएवं SMC एक दूसरे को N बिन्दु पर काटते है।

यदि N बिन्दु से X अक्ष पर एक लम्ब डाला जाए तो फर्म के अधिकतम लाभ के लिए उत्पादन बिन्दु OQ पर प्राप्त होता है। इस उत्पादन पर फर्म का MR, SMC के संमान है (MR = SMC) यदि मांग वक्र D, AR के समान है तो OQ उत्पादन को प्रति समय इकाई पर केवल PQ कीमत पर बेचा जा सकता है और $PQ = OP_1$ अतः उत्पादन के निर्धारण के साथ ही एकाधिकार फर्म की उत्पादन मॉग की कीमत का निर्धारण हो जाता है एक बार कीमत के निर्धारण होने पर फर्म का कुल लाभ भी निर्धारित हो जाता है अतः एकाधिकार फर्म एक साम्यावस्था में है।

उत्पादन के बिन्दु OQ एवं कीमत PQ पर एकाधिकारी फर्म अपनी उत्पाद इकाइयो को एवं लाभ को अधिकतम करती है इस प्रति इकाई

एकाधिकार या आर्थिक लाभ (अर्थात् AR-SAC), (प्रति PQ - MQ) = PM के समान होता है।

इसका कुल लाभ, π = OQ XPM है।

चूकि OQ = P_2M, π P_2M x PM = P_1PMP_2 का क्षेत्रफल

जो कि छाया क्षेत्रफल के द्वारा प्रदर्शित है। चुंकि लघुकाल में लागत एंव आगम की स्थितियॉ बदलती नही है अतः एकाधिकारी फर्म की साम्यावस्था बनी रहती है।

2.5.3 दीर्घकाल में एकाधिकार के अन्तर्गत कीमत एवं उत्पादन

दीर्घकाल में एकाधिकार के उत्पादन एंव कीमत के लिए निर्णय नियम लघुकाल में एकाधिकार के समान ही होते है। दीर्घकाल में एक एकाधिकारी अपने उत्पादन के आयतन को बढ़ा सकता है जिससे कि वह दीर्घ काल में अपने लाभ को बढ़ा सके। उत्पादन संयत्र के आकार में वृद्धि (i) बाजार के आकार (ii) प्रत्याशित आर्थिक लाभ, एवं (iii) कानूनी प्रतिबन्ध के कारण जोखिम पर निर्भर करेगा ।यदि हम परिकल्पना करें कि इनमें से कोई कारक एकाधिकार के वृद्धि या फैलाव को सीमित नही करेगा और इस पर हम दीर्घकाल में कीमत एवं उत्पादन को निर्धारित करने का प्रयास करें। दीर्घ काल में एकाधिकार कीमत एवं उत्पादन निर्धारण की साम्यावस्था को निम्नांकित चित्र संख्या 5 में दर्शाया गया है।

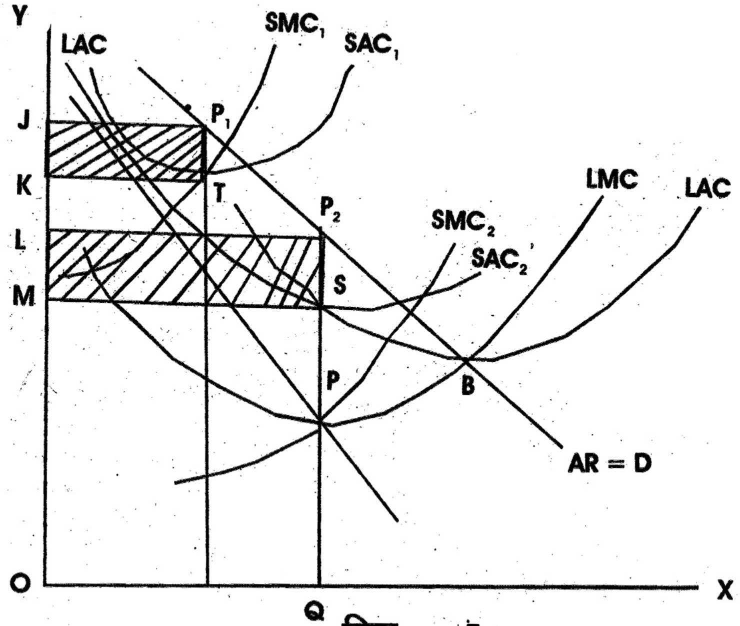

चित्र – 5

दीर्घकाल में एकाधिकार की साम्यावस्था

NMDC-222

AR एवं MR वक्र एकाधिकारी फर्म के औसत आगम एवं सीमान्त आगम वक्रो को दर्शाते है जो कि बाजार की मांग एंव सीमान्त आगम स्थिति को प्रदर्शित करते है। LAC एवं LMC दीर्घकालीन लागत को दर्शाते है। चित्र में हम देख सकते है कि एकाधिकार के LMC एवं MR, P बिन्दु पर अन्तर विभाजित करते है जहाँ उत्पादन OQ है। इसलिए यह अधिकतम लाभ के लिए उत्पादन है। AR वक्र के दिये होने पर P_2Q कीमत पर कुल उत्पादन AR वक्र के दिये होने पर P_2Q कीमत पर कुल उत्पादन OQ को बेचा जा सकता है। इस प्रकार दीर्घकाल में उत्पादन OQ होगा तथा कीमत P_2Q होगी। कीमत एवं उत्पादन का यह संयोग एकाधिकारी के दीर्घकाली लाभ को अधिकतम कर देगा। एकाधिकार के कुल लाभ को $LMSP_2$ क्षेत्रफल के द्वारा दर्शाया जा सकता है।

लघुकालीन साम्यावस्था के तुलना में एकाधिकारी दीर्घकाल में अधिक मात्रा में उत्पादन करते है तथा कम कीमत पर सामान बेचते है और इस प्रकार ज्यादा एकाधिकार लाभ को अर्जित करते हैं। लघुकाल में फर्म की साम्यावस्था OQ_1 उत्पादन पर है जोकि दीर्घ काल के उत्पादन OQ_2 से कम है। परन्तु लघुकाल की साम्यावस्था की कीमत P_1O_1 दीर्घकाल की साम्यावस्था कीमत P_2O_2 से अधिक है। कुल लघुकालीन एकाधिकार लाभ को क्षेत्रफल JP_1TK के द्वारा दिखाया गया है जो कि दीर्घकालीन लाभ क्षेत्रफल LP_2SM से काफी कम है। ये सब लघु एवं दीर्घकाल को लागत एवं आगम स्थितियों पर निर्भर करता है।

यहाँ पर यह भी देखने वाली बात है कि यदि फर्मो के अनुकूलतम उत्पादन स्तर OQ_2 तक नही पहुंच सकती है। और ना ही ये अपनी पूर्ण निर्माण क्षमता पर उपयोग कर पाएगी। किसी फर्म की क्षमता में वृद्धि एवं क्षमता को पूर्ण उपयोग बाजार की परिस्थितियों पर निर्भर करेगी। यदि दीर्घ कालीन बाजार की स्थितियाँ उदाहरणार्थ आगम एवं लागत स्थितियाँ तथा प्रतिस्पधी की अनुपस्थिति आदि स्वीकार करें तो फर्म अपने अनुकूलतम उत्पादन स्तर पर पहुंच सकती है।

2.6 एकाधिकारी एवं एकाधिकृत प्रतियोगिता में अन्तर

एकाधिकृत प्रतियोगिता भी सीमित रूप में एकाधिकारी के रूप में काम करता है। दोनों का मांग वक्र अर्थात औसत आगम वक्र बाये से दांये की ओर झुकता हुआ होता है और सीमान्त आगम से उपर स्थिति होता है दोनों इच्छानुसार कीमत का निर्धारण एवं परिवर्तन कर सकते है। फिर भी दोनों में निम्नांकित अन्तर होते है।

1. एकाधिकार में उत्पादों का अकेला विक्रेता होता है जबकि एकाधिकृत प्रतियोगिता में अधिसंख्य विक्रेता होते है।

2. एकाधिकार में फर्म एवं उद्योग में कोई अन्तर नही होता है जबकि एकाधिकृत प्रतियोगिता में अनेक फर्म मिलकर एक उद्योग का निर्माण करती है।
3. एकाधिकारी वस्तु का कोई भी स्थानापन्न बाजार में उपलब्ध नही होता है जबकि एकाधिकृत प्रतियोगिता में वस्तु का निकट स्थानापन्न उपलब्ध होता है।
4. एकाधिकारी प्रतियोगिता में फर्मो के प्रवेश एवं बहिर्गमन में खासी रूकाबटें होती है जबकि एकाधिकृत प्रतियोगिता में प्रवेश एवं बहिर्गमन पर कोई रोक नही होती है।
5. एकाधिकार में विकय लागतें नही होती है क्योंकि विज्ञापन आदि संवर्धन की आवश्यकता प्रायः नही होती है जबकि एकाधिकृत प्रतियोगिता में गैर मूल्य प्रतियोगिता के कारण विकय लागतों पर व्यय करना आवश्यक होता है।
6. एकाधिकारी अपने समान उत्पादों की भिन्न भिनन कीमतें, भिन्न भिन्न के उत्पादों से वसूल सकता है जबकि एकाधिकृत प्रतियोगिता में अधिसंख्या विकेता होने के कारण कीमत विभेदन प्रायः सम्भव नहीं हो पाता है।
7. एकाधिकार मं मांग वक कम लोचदार होता है तथा औसत आगम वक का ढाल अधिक होता है जबकि एकाधिकृत प्रतियोगिता में मांग वक अधिक लोचदार तथा औसत आगम वक अपेक्षाकृत चपटा होता है।
8. एकाधिकार प्रतियोगिता में दीर्घकाल में भी असामान्य लाभ अर्जित किया जाता है जबकि एकाधिकृत प्रतियोगिता में दीर्घकाल में शून्य लाभ कमाया जा सकता है।

2.8 सारांश

इस प्रकार हम देखते हैं कि लघुकाल में एकाधिकृत तथा एकाधिकार बाजार में कीमत एवं उत्पादन निर्धारण आगम एवं लागतों की स्थिति के द्वारा ही निर्धारित किया जाता है जो कि लाभ को अधिकतम करने वाली एकाधिकारी प्रतिस्पर्धा के कीमत एवं उत्पादन के निर्णय नियम एक प्रतिस्पर्धात्मक उद्योग के समान होते हैं तथा एक ऐसे कीमत एवं उत्पादन को संयोजन को पसंद करती हैं जहां सीमान्त आगम (MR), लघुकालीन सीमान्त लागत (SMC) के समान हो। दीर्घकाल में एकाधिकार के उत्पादन एवं कीमत के लिए निर्णय नियम लघुकाल में एकाधिकार के समान होते हैं। दीर्घकाल में एक एकाधिकारी अपने उत्पादन के आयतन को बढ़ा देता है जिससे कि

वह दीर्घकाल में अपने लाभ को बढ़ा सके।

2.9 महत्वपूर्ण शब्द

एकाधिकार बाजार, एकाधिकृत बाजार, सीमान्त आगम वक्र, औसत आगम वक्र, किन्क्ड (kinked) वक्र।

2.10 अन्य चयनित पाठन

(1) मैनेजीरियल इकॉनोमिक्स - माहेश्वरी

(2) टेक्स्ट बुक ऑफ इकॉनोमिक्स - बोएस

(3) मैनेजीरियल इकॉनोमिक्स - डीन

(4) भारतीय अर्थव्यवस्था विकास एवं आयोजन - ए० के० अग्रवाल

2.11 सन्दर्भ पुस्तकें

(1) मैनेजीरियल इकॉनोमिक्स - मोटे पॉल एण्ड गुप्ता

(2) उच्चतर आर्थिक सिद्धान्त - एच. एल. गुप्ता

(3) मैनेजीरियल इकॉनोमिक्स - थॉमस मॉरिस

2.12 स्व परख प्रश्न

प्रश्नः–1 एकाधिकार प्रतियोगिता क्या है? यह पूर्ण प्रतियोगिता से किस प्रकार भिन्न है?

प्रश्नः–2 अपूर्ण प्रतियोगिता से आप कया समझते है? इसके विशेष लक्षणों की समझायें ।

प्रश्नः–3 अपूर्ण प्रतियोगिता में कीमत निर्धारण कैसे होता है?

प्रश्नः–4 अपूर्ण प्रतियोगिता में दीर्घकाल में कीमत एवं उत्पादन निर्णय कैसे होता है? चित्र द्वारा स्पष्ट करें।

प्रश्नः–5 चैम्बरीलन के सिद्धान्त का अलोचनात्मक विश्लेषण करें।

प्रश्न–6 एकाधिकार के कारण एवं प्रकार समझाते हुए इसमें कीमत निर्धारण को समझाये

प्रश्नः–7 एकाधिकार बाजार की अवस्था मे लघु एवं दीर्घकाल में कीमत निर्धारण कैसे होता है?

प्रश्नः–8 एकाधिकार एवं एकाधिकृत प्रतियोगिता में अन्तर स्पष्ट करें।

प्रश्न–9 एकाधिकार में दीर्घकाल में कीमत एवं उत्पादन निर्णय कैसे लिया जाता है? चित्र द्वारा स्पष्ट करें।

NMDC-222

इकाई 3– अल्पाधिकार

इकाई संरचाना

3.1 उददेश्य

3.2 प्रस्तापना

3.3 अल्पाधिकार की विशेषताएं

3.4 अल्पाधिकार में कीमत एंव उत्पादन निर्धारण

3.5 कीमत में तत्व

3.5 कीमत नेतृत्व

3.5.1 कीमत नेतृत्व की कठिनाइयॉ

3.6 कपट– सन्धायी अल्पाधिकार

3.7 कार्तेल में कीमत तथा उत्पादन माना का निर्धारण

3.8 विकुचित मॉग वक्र

3.9 विकुचिंत मॉग वक्र एंव अल्पाधिकारी की साम्यावस्था

3.10 सांराश

3.11 महत्वपूर्ण शब्द

3.12 अन्य चयनित पाठन

3.13 सन्दर्भ पुस्तकें

3.14 स्वंपररव प्रश्न

3.1 उददेश्य

इस इकाई को पढने के पश्चात

- हम अल्पाधिकार प्रतियोगिता को समझेगे
- अल्पाधिकारी बाजार में कीमत निर्धारण को समझेंगे
- अल्पाधिकारी अनिश्चितता को जानेंगे
- अल्पाधिकार प्रतियोगिता में कीमत ने तत्व को जानेगे

3.2 प्रस्तावना

अल्पाधिकार का शाब्दिक अर्थ कुछ विक्रेताओ के बीच प्रतिस्पर्धा से होता है। अर्थात बाजार में बने अल्पाधिकार की स्थिति उस समय

MDC-222

कही जाती है जब उद्योग मे समरूप उत्पादों का उत्पादों का उत्पादन करने वाली या स्थानापन्न वस्तुओ का उत्पादन करने वाली फार्मे की संख्या की संख्या कम होती है। अथवा दो से अधिक परन्तु बहुत अधिक नही होते है।

यद्यपि कुछ फार्मे या अधिक फार्मे के मध्य कोई निश्चिय सीमा निर्धारण करना कठिन है परन्तु यादि एक पदार्थ के उत्पादकों अथवा बिकेताओ को पदार्थ समान हो तो उसे बिना उत्पाद विभेदीकरण को अल्पाधिकार सा शुद्ध अल्पाधिकार कहा जाता है जब विभिन्न विकेताओ या फार्मे के उत्पाद विभदीकृत परन्तु एक दूसरे के निकट स्थानापन्न हो तो इसे उत्पाद विभेदीकृत अल्पाधिकार कहते है।

3.3 अल्पाधिकार की विशेषताए

अल्पाधिकार की निम्नकिंत मुख्य विशेषताएं होती है।

(क) **विकेताओ की संख्या का कम होना :** अल्पाधिकार प्रतियोगिता में विकेताओ की संख्या कम होती है। बाजार में थोड़े विकेता होने के कारण प्रत्येक विकेता का पूर्ति के एक बडे भाग पर नियन्त्रण होता हैं तथा फलतः वह बाजार में वस्तु की कीमत को प्रभावित करने की स्थिति में होता है। एक विक्रेता की उत्पादन नीति व कीमत नीति का प्रभाव दूसरे प्रतियोगी विक्रेताओं की नीतियो पर भी पडता है।

(2) **समूह व्यवहार :** पूर्ण प्रतियोगिता, एकधिकार तथा एकधिकृत प्रातेयोगिता तीनो व्यक्तिगत व्यवहार के सिद्धान्त पर आधारित है जिनमें व्यक्तिगत फर्मे इस प्रकार व्यवहार करती है कि उनके लाभ अधिकतम हों। इसके विपरीत अल्पाधिकार "समूह व्यवहार" का सिद्धान्त हैं समूह की थोडी सी फर्मे। (जिसमे परस्पर निर्भरता होती है।) सामान्य हितों की रक्षा के लिए कभी कभी सहयोग करती है तो कभी कभी व्यक्तिगत हितो को प्राप्त करने के लिए आपस में संधर्ष पर उतारू हो उठती हैं

(3) **परस्पर निर्भरता :** अल्पाधिकार की प्रमुख्य विशेषता विकेताओ मे स्पष्ट रूप से पारस्परिक निर्भरता का पाया जाना है। यहीं कारण होता है। कि व्यक्तिगत विकेता को अपनी नीतियो के, अपने प्रतियोगियो पर पड़ने वाले प्रभावो और उनकी प्रतिकियाओ पर सदैव ध्यान देना पड़ता है।

(4) **मॉग वक्र की अनिश्चितता :** अल्पाधिकार की मुख्य विशेषता यह होती है कि अल्पाधिकारी फर्मों का मांग वक्र आय वक्र (AR) अनिश्चित

होता है। माग वक्र यह बताता है कि विभिन्न कीमतों पर एक फर्म अपनी वस्तु भी कितनी मात्रा का विक्रय कर सकती है। पूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति में एक व्यक्तिगत फर्म का वक्र निश्चित माँग तथा दिया हुआ होता हैं। पूर्ण प्रतियोगिता में एक पूर्ण प्रतियोगी फर्म समान पदार्थ का अत्पादन करने वाली बहुत फर्मे में एक होती है तथा यह अपने व्यक्तिगत प्रयत्नो द्वारा उत्पाद की कीमत को प्रभावित नही कर सकती है। इसी कारण पूर्ण प्रतियोगिता में एक फर्म जिस माँग वक्र का सामना करती हैं वह दी हुयी कीमत स्तर पूर्ण लोचदार होती है। परन्तु अल्पाधिकार के अर्न्तगत फर्मों की परस्पर निर्भरता के कारण स्थिति भिन्न होती है। अल्पाधिकार में एक फर्म के द्वारा यह जान लेना बड़ा कठिन होता है कि उसके द्वारा कीमत नीति में परिवर्तन करने पर उसके प्रतिद्वन्दी अपनी कीमतो में परिवर्तन करेगे या नही और यदि करेगे तो कितना? चूकि एक फर्म के लिए मॉग वक्र का निर्माण तभी किया जा सकता है जब कि वह निश्चित रूप से पता हो कि प्रतियोगी फर्म की कीमतो में कोई पारिवर्तन होगा। अथवा नही या फिर यह पता हो कि उनकी कीमतो में कितना पारिवर्तन होगा चूकि अल्पाधिकार में अन्य प्रतियोगी फर्मो के व्यवहार के बारे में कोई निश्चित जान कारी नही तो पाती इसलिए एक अल्पाधिकारी फार्मे का मांग वक्र अनिश्चितता लिए होता है।

5. **विज्ञापन तथा विकय लागतो का महत्व** : अल्पाधिकारी फार्मो की परस्पर निर्भरता था एक प्रत्यक्षा प्रभाव यह होता कि उघोग की सभी फार्मो का बाजार पर अपना प्रभुत्व जमाये रखने के लिए विज्ञापन तथा विकय संवर्धन के रूप में बडी मात्रा में विकय लागते खर्च करनी पडती है। वास्तविक रूप में अल्पाधिकार के अन्तर्गत फर्म का अस्तित्व उसके द्वारा किये गये प्रचार तथा विज्ञापन पर निर्भर करता है।

6. **कीमत स्थिरता :** अल्पाधिकार की एक महत्वपूर्ण विशेषता यह भी है कि कीमत में स्थिरता होती हैं अर्थात अल्पाधिकार के अन्तर्गत कीमत एक ही स्तर पर बनी रहती है। चाहे मॉग तथा पूर्ति की दशाओ में कितना ही परिवर्तन क्यो न हो जाए

7. **असंगति :** अल्पाधिकार के अन्तर्गत कार्यरत फर्में एक रूप नहीं होती बल्कि आकार की दृष्टि से एक दूसरे से भिन्न होती हैं। कुछ फर्में आकार में बहुत बड़ी तो कुछ बहुत छोटी हो सकती हैं।

8. **उघोग मे फर्मो के प्रवेश तथा बहिर्गमन में कठिनाई :**

अल्पाधिकारी उघोग में नयी फर्मों का प्रवेश कर पाना कठिन होता है। जिसके कारण (1) फर्मो की संख्या परन्तु आधार में बडा होना है, जिसके कारण नयी फार्मे के प्रवेश करने के लिए अत्याधिक पूँजी की आवश्यकता है जो कठिन होता है। 2 अन्पाधिकारी फर्म कच्चे माल की पूर्ति पर प्रायः पूर्णत स्वामित्व प्राप्त कर लेती है तथा वर्तमान फर्मे भारी पूँजीगत्त विनियोजन के कारण उघोग को आसानी से छोड देती है।

(9) **एक रूप या विभेदित उत्पादन** : अल्पाधिकारी फर्मे एक रूप या विभेदित उत्पादों का निर्माण कर सकती है।

3.4 अल्पाधिकार में कीमत एवं उत्पादन निर्धारण

अल्पाधिकार में फर्मो की परस्पर निर्भरता तथा प्रतिद्वन्दियो के अनिश्चित व्यवहार ढॉचे के कारण अल्पाधिकार समस्या का समाधान सरल एंव निश्चिता नही है। अल्पाधिकार में कीमत एंव उत्पादन निर्धारण का विश्लेषण अल्पाधिकारी समूह से व्यवहार तथा फर्म द्वारा कीमत परिवर्तन के कारण प्रतिद्वदियो के प्रतिक्रिया के द्वारा किया जाता है ।

प्रतिद्वन्दी आपस में मिलजुलकर अपने उददेश्यो को प्राप्त करने का निर्माण कर सकते है कम से कम वहॉ तक जहॉ तक वे ऐसा कर सकते है। या फिर वे सदैव एक दूसरे से लडते रहे। यदि आपस में समझौता भी करते है तो वह शीघ्र ही दूर जाता है।

प्रो बोमोल क अनुसार, "जब कि व्यापारी यह सोचता है कि उसकी क्रियाओं का फलस्वरूप उसके प्रतिद्वन्दियों की प्रतिक्रिया क्या होगी, तो उसे यह स्वीकार करना होगा कि उसके प्रतिद्वन्दी भी इस परस्पर निर्भरता को ध्यान में रखते है। फर्मो द्वारा एक दूसरे की प्रतिक्रियाओ को पहले से सोचने के कारण अनुमति प्रविधियों तथा प्रतिप्रविधियों की अन्तक्रिया का जन्म होगा जो इतनी उलझी हुयी होती है कि उनका प्रत्यक्ष विश्लेषण नही किया जा सकता।"

इस प्रकार अल्पाधिकार में कार्यरत फर्म को मिश्रित परिकल्पनाओ की असीमित श्रृंखलाओ को सोचना होता है जैसे कि यदि मैने X क्रिया की तब वह Y क्रिया करने की सोच सकता है परन्तु वह तब यह सोच सकता है कि मैं C क्रिया करूंगा उस दशा में और इस प्रकार के सोचने की कोई सीमा नही है।

प्रो0 रॉशचाइल्ड के अनुसार अल्पाधिकारी का उददेश्य तो अपनी सुरक्षा को अधिकतम करना है अर्थात अधिकत लाभों के स्थान पर दीर्घकाल में उचित मात्रा में स्थायी लाभो को प्राप्ता करना। दूसरी ओर प्रो0 बामोल के

NMDC-222

अनुसार अल्पाधिकारी स्थितियो में फर्मो द्वारा बिक्री को अधिकतम करने का उददेश्य पूर्णया उचित होगा। अल्पाधिकारी के वास्ताविक उददेश्य के सम्बन्ध में वाद विवाद के कारण इसमें कीमत और उत्पादन निर्धारण मे और भी अधिक अनिश्चितता आ जाती हैं अतः उपर्युक्त बातो को ध्यान में रखकर अल्पाधिकारी का कोई एक निश्चित समाधान नही है बल्कि बहुत से सम्भावित समाधान है और प्रत्येक समाधान भिन्न भिन्न मान्यताओ पर आधारित होते है। अर्धशास्त्रियो की दृष्टि में जब एक समस्या का कोई एक समाधान सम्भवन नही हो तो सामान्यता इस समस्या का कोई एक समाधान सम्भव नही होता है। प्रो0 फ्रीटज मेक्लॅप ने अनिश्चितता की व्याख्या निम्न प्रकार से की है।" यदि अर्थशास्त्रियो के सम्मुख जो प्रश्न है उसका वे पर्याप्त सूचना के अभाव के कारण निश्चित तथा स्पष्ट उत्तर नही दे पाते है तो वे अनिश्चितता की बात करते है। यदि वे समस्या का समाधान करना चाहते है उदाहरणार्थ कुछ दी हुयी दशाओ में निश्चित वस्तु की कीमत में किस प्रकार परिवर्तन होगें और आते है तो जिन बातो को उन्होने दिया हुआ मान लिया था उनसे दो या अधिक (सम्भवत: असीमित्त) उत्तर मिल सकते है तो वे यह कहे में कि समस्या को कोई निश्चित समाधान नहो है। उपर्युक्त अर्थो में ही अल्पाधिकारी स्थिति में कीमत उत्पादन निर्धारण का निश्चित समाधान नही मिलता। जैसे कि ऊपर बताया गया अर्थशास्त्रियो ने अल्पाधिकार समूह के व्यवहार (उदाहरण वे आपस मे सहायोग करेगे या प्रतिस्पर्धा करॅगे) उनके उददेश्यो के सम्बन्ध मे वे जिनको प्राप्त करना चाहते है (उदाहरणार्थ वे व्यक्तिगत अथवा संयुक्त लाभो को अधिकतम करना चाहते है या सुरक्षा या बिक्री को अधिकतम करना चाहते है।) तथा एवं फर्म द्वारा कीमत व उत्पादन में परिवर्तन से उसकी प्रतियोगी फर्मो के प्रतिक्रिया ढाचे के सम्बन्ध मे बहुत सी अनेक मान्यताओ के आधार पर बहुत से मॉडलो का विकास किया है। इस इकाई में इस निम्नांकित माडलो की व्याख्या करेंगे

(i) कीमत नेतृत्व (Price Leadership)

(ii) कपट सन्धायी अल्पाधिकार (Collusive Oligoboly)

(iii) विकुंचन मॉँग वक्र (kinked Demand Curve)

(iv) कार्टेल में कीमत तथा उत्पादन मात्रा का निर्धारण

3.5 कीमत नेतृत्व (Price Leadership)

कीमत अल्पाधिकारी उघोग की फर्मो के बीच हुए अनौपचारिक समझौते का एक रूप है । कीमत नेतृत्व कीमत निर्धारण की वह रीति है जिसमें कोई एक फर्म जो कि प्रायः बड़ी फार्म होती है, कीमत निर्धारित करती है और बाकी फर्मे इस कीमत का अनुसरण करती है। कीमत निर्धारण की यह रीति

मुख्यतः 'सत्ता शक्तिशाली के हाथ में' "(Survival of the fittest) के सिद्धान्त आधारित है।

3.5.1 कीमत नेतृत्व के प्रकारः

(क) प्रधान फर्म कीमत नेतृत्व : इसके अन्तर्गत उद्योग के कुल उत्पादन अधिकांश भाग केवल एक ही फर्म द्वारा उत्पादित किया जाता है तथा शेष भाग छोटी– छोटी फर्मो के द्वारा पूर्ण किया जाता है। फलस्वरूप यह प्रधान फर्म बाजार पर प्रभुत्व जमा लेती है और उसके द्वारा जो भी कीमत निर्धारित की जाती है अन्य छोटी फर्मे कीमत पर व्यक्तिगत प्रभाव न डाल सकने के कारण उसी कीमत को स्वीकार कर लेती है।

(ख) बैरोमीट्रिक कीमत नेतृत्व : इसके अन्तर्गत उद्योग की सबसे पुराना, अनुभवी तथा कार्यकुशल फर्म अल्पाधिकार बाजार की अन्य सभी फर्मो के लिए संरक्षण का कार्य करती है। इस अनुभवी फर्म के द्वारा बाजार की दशाओं के अध्ययन के उपरान्त जो भी कीमत निर्धारित की जाती है वह सभी फर्मों के लिए अनुकूलतम होती है तथा मान्य होती है।

(ग) आक्रामक कीमत नेतृत्व : इसके अन्तर्गत उद्योग की कोई बड़ी फर्म जबरदस्ती से अर्थात आक्रामक कीमत नीति के माध्यम से अपना नेतृत्व स्थापित कर लेती है और उद्योग की अन्य फर्मो को अपनी कीमत नीति के पालन के लिए बाध्य कर देती है।

3.5.2 कीमत नेतृत्व के द्वारा कीमत निर्धारण

कीमत नेतृत्व की प्रमुख विशेषता यह है कि कीमत नेता फर्म द्वारा जो कीमत निश्चित की जाती है वह उद्योग की अन्य फर्मो के लिए आधार कीमत का कार्य करती है और वे उसी के अनुसार अपनी कीमतें निश्चित कर लेती है। कीमत नेता कीमत निर्धारित करते समय निम्न बातों का ध्यान अवश्य रखता है।

(i) उसकी कीमत नीति पर प्रतियोगी फर्मो की क्या प्रतिक्रिया हो सकती है।

(ii) उसके और उसके प्रतियोगियों के द्वारा उत्पादित वस्तुओं के बीच प्रतिस्थापना को लोच कितनी है, तथा

(iii) उसे अपने प्रतियोगियों की कीमत नीति के बारे में कितना ज्ञान है।

कीमत निर्धारण का कीमत नेतृत्व के अन्तर्गत प्रदर्शन निम्नांकित चित्र संख्या (1) में किया गया है।

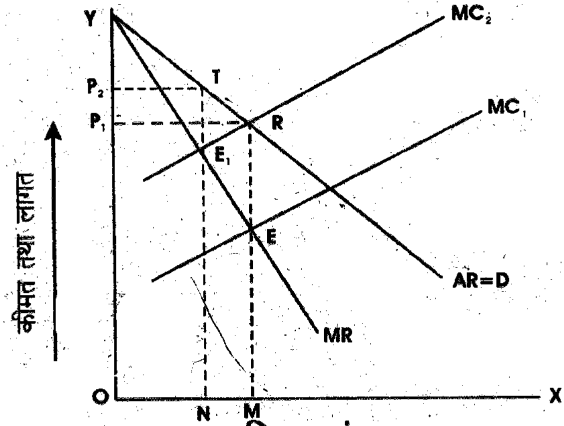

चित्र संख्या 1

उत्पादन की मात्रा

इस सम्बन्ध में हमारी मान्यता यह है कि केवल दो फर्मे A तथा B है और A फर्म को उत्पादन लागत B फर्म से कम है । दूसरी मान्यता यह है कि दोनों फर्मे एक रूप उत्पादों का उत्पादन करती है अतः उपभोक्ताओं को उनमें से किसी एक के लिए कोई विशेष अधिमान या पसन्द नही है।

चित्रानुसार AR औसत आय वक्र या मांग वक्र तथा MR सीमान्त आय वक्र है जो दोनों फर्मो के लिए समान है क्योंकि दोनों एकरूप वस्तुओं का निर्माण करती है।

MC_1 फर्म A का सीमान्त लागत वक्र है जबकि MC_2 फर्म B का सीमान्त लागत वक्र है। MC_1 वक्र MC_2 के नीचे स्थित है क्योंकि हमारी मान्यता के अनुसार फर्म B को तुलना में फर्म A का उत्पादन कम है। फर्म A का साम्य बिन्दु E है। जहाँ MC_1 = MR अतः यह फार्म OM मात्रा का उत्पादन करेगी तथा OP_1 या MR कीमत निर्धारित करेगी दूसरी फार्म का साम्य बिन्दु E_1 जो MC_2= MR से प्राप्त हुआ है तथा इसके अनुसार कीमत OP_2 होगी। चूंकि फर्म A की कीमत OP_1 फर्म B की कीमत से कम है अतः फर्म A कीमत नेता (price leader) होगी तथा फर्म B कीमत अनुकर्ता (price follower) मानी जाएगी अर्थात A फर्म के द्वारा निर्धारित कीमत ही बाजार में मान्य होगी।

स्मरणीय तत्व यह है कि फर्म B को भी OP, कीमत स्वीकार करते हुए OM मात्रा का ही उत्पादन करना होगा क्योंक OP_1 से अधिक कीमत अर्थात OP_2 कीमत वह रख नही सकती है और OM मात्रा से कम उत्पादन करने पर उसे हानि होगी। अतः स्पष्ट है कि कीमत नेतृत्व की स्थिति में दोनों फर्मे एक समान कीमत OP निश्चित करेगी तथा एक समान उत्पादन (OM) करेंगी। परन्तु इस समानता के बावजूद दोनों में एक अन्तर है और वह यह

है कि फर्म A उत्पादन की OM मात्रा पर अधिकतम लाभ अर्जित करेगी जबकि फर्म B उसी कीमत उत्पादन संयोग पर अधिकतम लाभ प्राप्त नही कर सकेगी क्योंकि उसका लाभ तो ON उत्पादन मात्रा को OP_2 कीमत बेचने पर अधिकतम हो सकता है। इस प्रकार फर्म B को अपनी उॅची उत्पादन लागत के कारण कम लाभ पर ही सन्तोष करना पड़ेगा यदि फर्म B की न्यूनतम लागत फर्म A द्वारा निर्धारित कीमत से भी अधिक हैं तो ऐसी स्थिति में फर्म B के लिए उस कीमत पर उत्पादन जारी रखना हानिप्रद होगा जिससे वह उद्योग से बाहर हो जाएगी और फलस्वरूप फर्म का एकाधिकार स्थापित हो जाएगा।

3.5.3 कीमत नेतृत्व की कठिनाइयॉ

व्यवहारिक रूप से कीमत नेतृत्व के सम्बन्ध में निम्नांकित कठिनाइयॉ आ सकती है।

(i) कीमत नेता फर्म की सफलता इस बात पर निर्भर करेगी कि वह कहॉ तक अपनी प्रतिस्पर्धी फर्मो की प्रतिक्रियाओं का सही अनुमान लगा सकता है क्योंकि उसके गलत आकंलन से उसका कीमत नेतृत्व खतरे में आ जाएगा।

(ii) दूसरे कठिनाई प्रतियोगी फर्मो द्वारा गैर कीमत प्रतिस्पर्धा के कारण उत्पन्न होगी। अर्थात प्रतियोगी फर्मे कीमत नेता के द्वारा निर्धारित कीमत पर ही माल बेचने पर, गैर कीमत प्रतियोगिता के द्वारा (उदाहरणार्थ विज्ञापन, विक्रय संबर्धन आदि) अधिक उत्पाद बेचने का प्रयास करेंगी । इस प्रकार कीमत नेता को भी समान गति–विधियों को अपनाना पड़ता है या कीमत घटनी पड़ती है। और हम देख सकते है कि ऐसे में कीमत नेता अपने नेतृत्व को अधिक समय नक नही रख सकता है।

(iii) कभी कभी कीमत नेता के द्वारा निर्धारित कीमत इतनी अधिक होती है कि उसकी प्रतियोगी फर्मो को गुप्त कटौतियॉ काटने के लिए बाध्य होना पड़ता है जिसका असर कीमत नेताओं की विक्री पर भी पड़ सकता है। इसके अतिरिक्त उॅची कीमत से आकर्षित होकर नयी फर्मे उद्योग में प्रदेश कर सकती है जो सम्भवतः उनके नेतृत्व को स्वीकार ही न करें।

(iv) कभी लागतों में अन्तर होने के कारण भी कीमत नेतृत्व असफल सिद्ध हो सकता है। यदि कीमत नेता की उत्पादन लागत उँची है तो उसके द्वारा निर्धारित उँची कीमत प्रतियोगी फर्मो को गुप्त कटौती के लिए प्रेरित करेगी अथवा इससे उद्योग में नयी फर्मो का प्रवेश हो सकता है जो कीमत नेतृत्व को प्रभावित करेगा।

3.6 कपटसंधायी या गुटबन्दी कीमत निर्धारण (Collusive Oligopoly Price Determination)

स्वतन्त्र कीमत निर्धारण नीति की अनिश्चितताओं एवं हानियों से बचने के लिए कभी कभी अल्पाधिकारी फर्मे आपस में कीमत तथा उत्पादन मात्रा के सम्बन्ध में गुटबन्दी या एक गुप्त समझौती कर लेती है। इस कपट संन्धि का एक मात्र उद्देश्य परस्पर मिलकर अपने हितों की सुरक्षा करना है। जब विभिन्न फर्मे आपस में मिलकर एक औपचारिक समझौता कर लेती है तो उसे कार्टेल (Cartel) या उत्पादक संघ कहते है। यह समझौता अथवा कपट सन्धि पूर्ण हो सकती है या अपूर्ण । पूर्ण गुटबन्दी सम्पूर्ण कार्तेल के अन्तर्गत एक केन्द्रीय संस्था का निर्माण किया जाता है और उसके सभी सदस्य कीमत या उत्पादन सम्बन्धी अपने समस्त अधिकार इस संस्था को सौंप देते है। इसके विपरीत अपूर्ण गुटबन्दी या अपूर्ण कार्टेल के अन्तर्गत किसी प्रकार की कोई केन्द्रीय संस्था नही होती बल्कि फर्मो के बीच भले आदमियों के रूप में समझौता हो जाता है और प्रत्येक फर्म को कुछ सीमा तक कीमत तथा उत्पादन की मात्रा में परिवर्तन करने का अधिकार बना रहता है।

पूर्ण कार्टेल के अन्तर्गत यह निर्णय केन्द्रीय संस्था को लेना होता है कि विभिन्न सदस्य कितना कितना उत्पादन करेगें तथा किस कीमत पर अपने उत्पादों को बेंचेगें। पूर्ण कार्टेल के अन्तर्गत कीमत निर्धारण प्रायः एकाधिकार का जितना कोटा निश्चित करती है उसका निर्धारण इस प्रकार किया जाता है कि कुल उत्पादन की कुल लागत न्यूनतम बनी रहे। लेकिन यहाँ यह प्रश्न उठ सकता है कि विभिन्न फर्मो को आंबटित कोटे की मात्रा कितनी हो जिससे कुल लागत न्यूनतम हो सकें। कुल लागत उस स्थिति में न्यूनतम होती है जब कार्टेल की सभी सदस्य फर्मे इन विभिन्न मात्राओं का उत्पादन करें कि जिससे उनकी सीमान्त लागते एक दूसरे की समान बनी रहे। इसका कारण यह है कि सभी फर्मो की सीमान्त लागते समान नही होती है तो कम लागत वाली फर्मे अधिक लागत वाली फर्मो की तुलना में वस्तु का कम लागत पर पैदा कर सकने के कारण विद्रोह कर सकती है और फलस्वरूप

NMDC-222

कार्टेल या सन्धि के भंग होने की संभावना बढ़ जाती है।

3.7 पूर्ण कार्टेल के अन्तर्गत कीमत निर्धारण

आइए अब हम केन्द्रीय संस्था या कार्टेल के द्वारा कीमत निर्धारण की चर्चा करेगें। माना तीन फर्म आपस में एक कार्टेल का निर्माण करती है जिसका उद्देश्य अधिकतम संयुक्त लाभ को प्राप्त करना है। उत्पादन की उस मात्रा पर उद्योग का लाभ अधिकतम होगा जहॉ पर उद्योग की कुल सीमान्त लागत (TMC) उसकी कुल सीमान्त आय (TMC) के समान ही जाती है।

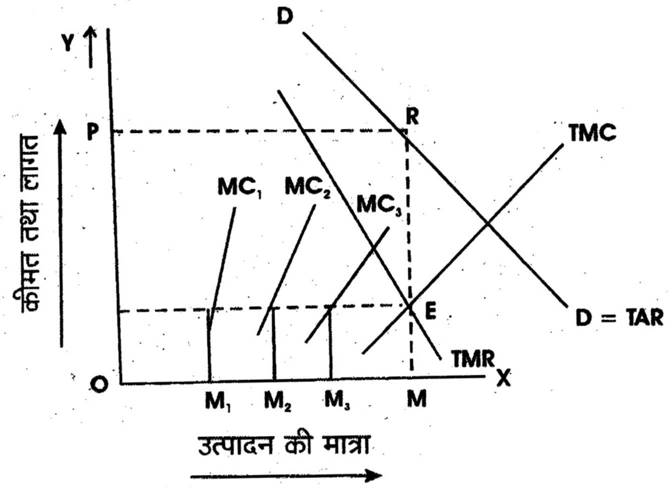

चित्र संख्या 2

उपर्युक्त चित्र संख्या (2) में उद्योग का मांग वक्र DD या कुल औसत आय वक्र (TAR) है जिसे बायी ओर नीचे गिरता हुआ दिखाया गया है। कुल सीमान्त आय वक्र TMR उसके नीचे स्थित है। MC_1, MC_2 तथा MC_3 तीनों फर्मो के क्रमशः सीमान्त लागत वक्र है जो तीनों फर्मो समान सीमान्त लागत को दर्शाते है। इन तीनों वक्रों को क्षैतिज रूप से जोड़कर सम्पूर्ण उद्योग की कुल सीमान्त लागत TMC वक्र तैयार किया गया है।

TMC तथा TMR वक्र एक दूसरे को E बिन्दु पर काटते है जो E साम्यावस्था है। उद्योग की उत्पादन मात्रा OM है तथा कीमत OP या MR हैं तीनो फ़र्मो का उत्पादन का कोटा OM_1, OM_2 तथा OM_3 उघोग के कुल उत्पादन OM के समान है। अर्थात $OM = OM_1 + OM_2 + OM_3$

अतः स्पष्ट हैं कि कार्टेल के द्वारा OM माना का उत्पादन करने तथा OP कीमत निश्चित करने पर फर्मो के संयुक्टा लाभ अधिकतम योगे इस संयुक्ता लाभ का वितरण तथा के बीच उनकी उत्पादन मात्राओ के अनुपात में किया जा सकता हैं या उनकी सापेक्षिक सौदा करने की शक्ति के आधार पर किया जा सकता है या लाभ वितरण उस समझौतो के अनुसार

NMDC-222

किया जा सकता है जो कार्टेल तैयर करते समय किया गया था। एक बात निश्चित हैं। कि इस संयुक्त लाभ मे से प्रत्येक फर्म को मिलने वाला मान उसने लाभ राशि से अधिक होगा जो गुटबंदी या कार्टेल के अभाव में उन्हे प्राप्त होता

वास्तविकता में पूर्ण कार्टेल एक काल्पनिक स्थिति है तथा इसका होना अत्यना ही दुर्लभ है। सभी फर्मे इस प्रकार की केन्द्रीय संस्था को स्वीकार नही कर सकती है और फिर इस प्रकार की सन्धि करना प्रायः गैर कानूनीं होता है। केन्दीय संस्था के गठन पर यह माना जाता है कि कोई अन्य फर्म प्रवेश नहीं करेगी परन्तु दीर्घकाल मे यह संभव नही हैं लाभ के वितरण के प्रश्न पर कोई सर्वमान्य सूत्र तैयार नही हो पाता जिससे प्रायः ऐसी सान्धि भंग हो जाती है।

3.8 विकुचित मांग वक्र

विकुचत मांग वक्र सिद्धान्त अल्पाधिकार में कीमत निर्धारण की व्याख्या नही करता, यह केवल इतना बताता है कि जब एक बार अल्पाधिकार में कीमत निर्धारित हो जाती है तो यह अपरिवर्तित या स्थित क्यो रहती है। इस सिद्धान्त के अनुसार अल्पाधिकारी जिस मांग वक्र का सामना करता है। उसमे वर्तमान कीमत के स्तर पर विकुचन (Kink) होता है।

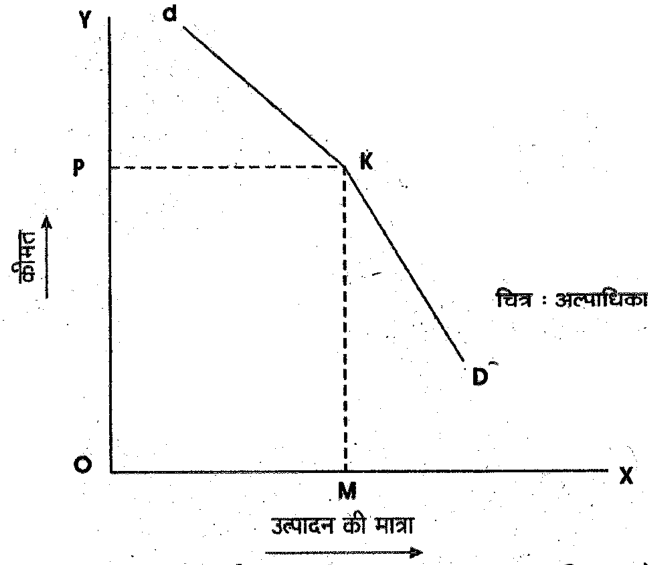

चित्र : अल्पाधिकार में विकुंचित मांग वक्र

विकुंचन वर्तमान कीमत स्तर पर इसलिए होता है क्योकि माग वक्र का नीचे का भाग जो वर्तमान कीमत से उपर है अत्यन्त लोचदार होता है। तथा वर्तमान कीमत से मांग वक्र का नीचे का भाग वे लोचदार ऊपर दिये चित्र में dD एक विकुचित मांग वक्र है जिसमे K बिन्दु पर विकुंचन है। वर्तमान कीमत स्तर OP है तथा फर्म OM मात्रा का उत्पादन व बिक्री कर

रही है। dD मांग वक्र का ऊपर वाला भाग dD अपेक्षाकृत लोचदार है, तथा निचला भाग KD अपेक्षाकृत बेलोचदार है। लोचो मे अन्तर उस विशेष प्रतियोगी प्रतिकिया ढॉचे के कारण होता है जिसकी परिकल्पना विकुंचन माग वक्र सिद्धान्त मे की गयी है। विकुंचन माग वक्र सिद्धान के अनुसार प्रतियोगी प्रतिकिया को हम इस तरह समझने का प्रत्यत्न करेगे, प्रत्येक अल्पाधिकार यह विश्वास करता है कि यादि वह अपनी कीमत को वर्तमान स्तर से नीचे गिरा देता हैं तो उसके प्रतिद्वन्दी भी ऐसा ही करेगे और अपनी–अपनी कीमतों को गिरा देंगे, परन्तु यदि वह कीमत में वृद्धि कर देता है। (वर्तमान स्तर की कलना में) तो उसके प्रतिद्वन्दी ऐसा नही करेगे अर्थात अपनी अपनी कीमत में वृद्धि नही करेगे। अपने प्रतिद्वन्दियों को दो प्रकार की प्रति– कियाओं (कीमत बढ़ने पर एक प्रकार की तथा कीमत कम होने पर दूसरी प्रकार की) के कारण वक्र का वर्तमान कीमत स्तर से उपर का भाग अपेक्षाकृत लोचदार होता है तथा इससे नीचे का भाग अपेक्षाकृत बेलोचदार। इसका व्याख्या निम्न प्रकार से की गयी है ।

(क) कीमत में कमी करना: चित्रानुसार यदि अल्याधिकारी अपनी विकी बढ़ाने के उद्देश्य से अपनी वस्तु की कीमत की वर्तमान कीमत स्तर OP से कम कर देता है। तो उसके प्रतिद्वन्दियों को यह भय होता है कि उनके केता उस अल्पाधिकारी की वस्तु को खरीदना प्रारम्भ कर देगें, जिसने कीमत कम कर दी है। अत: अपने उपभोक्ताओं को अन्य विकेताओं के पास जाने से रोकने के लिए उनको भी अपनी कीमतों में उतनी ही कमी करनी पड़ेगी जितनी पहले वाले उत्पादक ने की थी। इस प्रकार एक अल्पाधिकारी द्वारा कीमत कम करने पर उसके प्रतिद्वन्दी द्वारा उसके अनुकरण किए जाने के कारण उसकी बिकी में कोई विशेष वृद्धि नही होगी। वर्तमान स्तर से नीचे कीमत गिराने से एक एक उत्पादक की बिकी में थोड़ी से वृद्धि का अभिप्राय यह है कि वर्तमान कीमत से नीचे उसके लिए मॉग बेलोचदार अथवा मूल्य निरपेक्ष है। इस प्रकार दिये गये चित्र में मांग का वक्र का KD भाग जो कि वर्तमान कीमत OP से नीचे हैं बेलोचदार है जोकि यह दर्शाता है कि कीमत के कम करने पर अल्पाधिकारी की बिकी में कोई विशेष वृद्धि नही होगी।

(ख) कीमत वृद्धि : अल्पाधिकारी यदि अपनी कीमत को वर्तमान स्तर से बढ़ा देता है तो उसकी विकी बहुत घट जाएगी। क्योंकि उसकी कीमत में वृद्धि के कारण उसके उपभोक्ता उसकी वस्तु को खरीदने के स्थान पर उसके प्रतियोगियों की वस्तुओं को खरीदने लगेंगें। उसके प्रतियोगी नये केताओं का स्वागत करेंगे और उनकी विकियों में वृद्धि हो जाएगी। अत: इन प्रसन्न प्रतियोगियों में कीमत वृद्धि की कोई प्रेरणा नही होगी। जिस

अल्पाधिकारी ने अपनी कीमत में वृद्धि की है वह केवल अधिक अधिमान वाले उपभोक्ताओं को ही रोकने में सक्षम होगी या फिर इन उपभोक्ताओं को रोकने में सक्षम होगें जो उसके प्रतियोगियों से उनकी सीमित उत्पादन क्षमता के कारण पर्याप्त मात्रा में वस्तु को प्राप्त नहीं कर पाते। वर्तमान स्तर से कीमत बढ़ने के कारण अल्पाधिकारी की बिक्री में तीव्र कमी के कारण यह स्पष्ट है कि वर्तमान कीमत से ऊँची कीमतों पर मांग अत्यधिक लोचदार है। इस प्रकार चित्रानुसार मांग वक्र का dK भाग जो वर्तमान स्तर OP से उपर है अधिक लोचदार अथवा मूल्य सापेक्षा है जो इस बात को बताता है कि यदि उत्पादक अपनी कीमत बढ़ा देता है तो उसकी बिकी में अधिक मात्रा में गिरावट आ जाती है।

उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि प्रत्येक अल्पाधिकारी अपने आपको ऐसी स्थिति में पाता है जिसमें उसका अनुमान यह है कि यदि वह कीमत बढ़ाने की सोचता है तो उसके प्रतिद्वन्दी ऐसा नही करेंगे परन्तु उसके द्वारा कीमत गिराते ही अन्य प्रतिद्वन्दी तुरन्त उतनी ही कीमत गिरा देंगे जितनी उसने गिराई है। इस दिये हुए प्रत्याशित प्रतियोगी प्रतिकिया ढॉचे की स्थिति में प्रत्येक अल्पाधिकारी की मांग वक dD विकुंचित है जिसमें dK उपर वाला भाग अपेक्षाकृत लोचदार है तथा नीचे वाला KD भाग अपेक्षाकृत बेलोचदार है।

3.9 विकुंचित मांग वक तथा अल्पाधिकारी की साम्यावस्था

विकुंचित मांग वक की स्थिति में अल्पाधिकारी को वर्तमान कीमत स्तर पर अधिकतम लाभ प्राप्त होगा। अधिकतम लाभ प्रदान करने वाले कीमत उत्पादन संयोग को पता लगाने के लिए दिये गये चित्र में विकुंचित मांग वक को तदुनुखपी सीमान्त आय वक MR बनाया गया है।

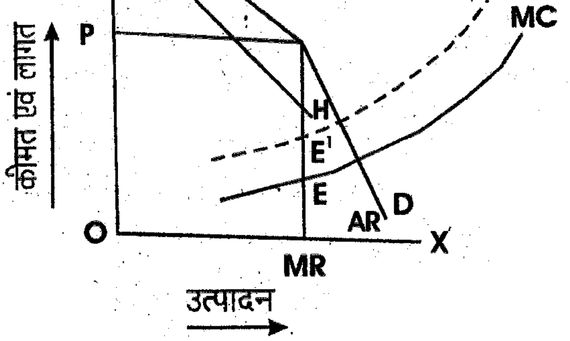

चित्र

विकुंचित मांग वक से सम्बन्धित सीमान्त आय वक में सान्तरता होती

है या अन्य शब्दों में इसमें उदग्र खण्डित भाग होता है इस सान्तरता की लम्बाई इस बात पर निर्भर करेगी कि मांग वक्र के K बिन्दु पर इस के दो भागों dk तथा KD की लोचों में क्या अन्तर है। दोनों लोचों में अन्तर जितना अधिक होगा, सान्तरता की लम्बाई भी उतनी ही अधिक होगी। दिये गये चित्र में dD विकुंचित मांग वक्र से तदुनुरूप सीमान्त आय वक्र MR बनाया गया है जिसमें HR सान्तर भाग या अन्तराल है। अब यदि अल्पाधिकारी का सीमान्त लागत वक्र इस प्रकार का हूँ कि यदि सीमान्त आय वक्र के सान्तर भाग HR में जो गुजरता है तो अल्पाधिकारी को वर्तमान कीमत स्तर OP पर ही अधिकतम लाभ प्राप्त होगें। अर्थात वह E बिन्दु पर अथवा OP वर्तमान कीमत तथा उत्पाद मात्रा OM पर सन्तुलन में होगा। अल्पाधिकारी चुंकि सन्तुलन में है अथवा अन्य शब्दों में वर्तमान कीमत स्तर पर अपने लाभों को अधिकतम कर रहा है उसके लिए कीमत में परिवर्तन करने के लिए कोई प्रेरणा नही होगी। यदि लागतों में परिवर्तन होता है जब तक सीमांत वक्र सीमान्त आय वक्र के HR अन्तराल से गुजरता है तब तक कीमत स्थिर रहेगी। उपर्युक्त दिये गये चित्र में जब लागतों में वृद्धि के कारण सीमान्त लागत वक्र MC से विवर्तित होकर MC[1] हो जाता है तो सन्तुलन कीमत या साम्यावस्था कीमत तथा उत्पादन में कोई परिवर्तन नहीं होता क्योंकि नया सीमान्त लागत वक्र MC भी अन्तराल HR में से गुजर रहा है।

इसी प्रकार विकुंचित मांग वक्र सिद्धान्त स्पष्ट करता हूँ कि मांग दशाओं में परिवर्तन की स्थिति में भी कीमत स्थिर रहती है। इसको हम निम्नांकित चित्र की समझने का प्रयास करेंगें । चित्रानुसार जबकि अल्पाधिकारी के पदार्थ की मांग dkD से बढ़कर d[1]k[1]D[1] हो जाती है तो दिया हुआ सीमान्त लागत वक्र MC नये सीमान्त आय वक्र MR[1] के अन्तराल से गुजरता है अर्थात अल्पाधिकार के अन्तर्गत कीमत OP प्रचलित रहेगी।

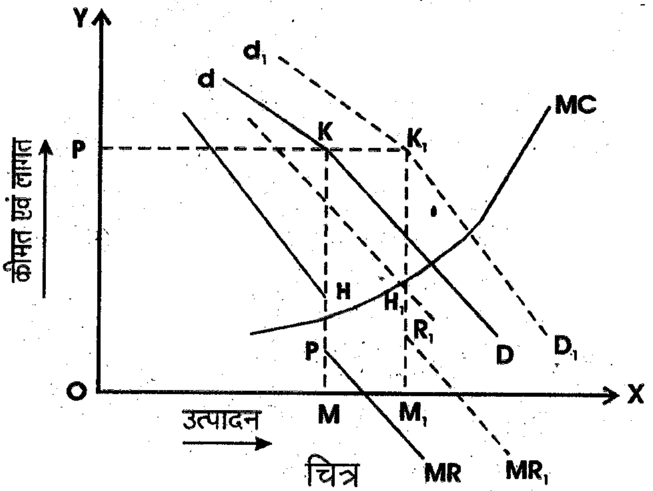

चित्र

विकुंचित मांग वक्र से हम यह नही कह सकते है कि जब भी लागत व मांग दशाओं में परिवर्तन आता है तो कीमत पूर्व की ही भांति रहती है। लागत एवं मांग दशाओं में परिवर्तन होने पर कब काम में परिवर्तन होने की सम्भावना है और कब इसके बदल जाने की, इसकी हम निम्न प्रकार से समझने का प्रयास करते है।

(1) जब उत्पादन लागत में कमी होती है तो कीमत के स्थिर रहने की सम्भावना अधिक होती है। जब उत्पादन लागत गिरती है तो वर्तमान कीमत से मांग वक्र का उपर का भाग अधिक लोचदार बन जाएगा क्योंकि कम लागतों के साथ इस बात की अधिक निश्चित सम्भावना है कि अल्पाधिकारी द्वारा बढ़ाए जाने पर उसके प्रतिद्वन्दी अपनी कीमतों में कमी नही करेंगें और इसके अल्पाधिकारी की विक्री बहुत मात्रा में घट जाएगा। दूसरे दृष्टिकोंण से लागतों में कमी होने पर वर्तमान कीमत के नीचे वाला मांग का वक्त का भाग अधिक बेलोचदार बन जाएगा क्योंकि लागतों में गिरावट के कारण इस बात की निश्चित सम्भावना है कि अल्पाधिकारी द्वारा कीमत के कम किये जाने पर उसके प्रतिद्वन्दी भी कीमत के कम कर देगें।

(2) लागत में वृद्धि होने पर कीमत स्थिर या दृढ़ नहीं रहेगी। जब उद्योग की लागत बढ़ जाती है तो एक अल्पाधिकारी यह उचित रूप से सोच सकता है कि उसके द्वारा कीमत में वृद्धि करने पर उद्योग के अन्य उत्पादक भी उसका अनुसरण करेंगे। इसके फलस्वरूप वर्तमान कीमत स्तर से माग के वक्र का उपर वाला भाग कम लोचदार बन जाएगा। अतः dPD कोण अधिकोण बन जाने कारण सीमांत आय वक्र में अन्तराल छोटा हौने पर ऊँचा सीमांत लागत वक्र इसको H बिन्दु से ऊपर काटेगा जो बढ़ी हुई साम्यावस्था कीमत तथा साम्यावस्था उत्पादन को दर्शाता है। अतः विंकुचित मांग वक्र से यह ज्ञात होता है कि लागत वृद्धि की दशा में कीमत के स्थिल रहने की संभावना नहीं है।

(3) यदि मांग में कमी आती है तो इसकी सम्भावना अधिक है कि कीमत स्थिर या दृढ़ रहेंगी और इसमें गिरावट नही होगी। जब मांग गिरती है तो यह निश्चित हो जाता है कि यदि कोई अल्पाधिकारी कीमत में कमी की किया की प्रारम्भ करता है तो अन्य उसका अनुसरण करेंगे जिसका परिणाम होगा कि मांग वक्र का निचला भाग अधिक

NMDC-222

बेलोचदार होगा। दूसरी ओर मांग के कम होने की स्थिति में यह प्रायः निश्चित है कि एक अल्पाधिकारी द्वारा कीमत में वृद्धि करने की स्थिति में अन्य अल्पाधिकारी उसका अनुसरण नही करेगें। फलतः माग वक्र का ऊपर वाला भाग अधिक लोचदार अर्थात लगभग क्षैतिज बन जाता है। उपरी भाग में लोच वृद्धि एवं नीचे वाले भाग में लोच की कमी के कारण सीमान्त आय वक्र में अन्तराल बढ़ जाएगा अतः मांग वक्र dPD नीचे की ओर विवर्तित होता है। सम्भावना इस बात की अधिक है कि दिया हुआ सीमांत लागत वक्र सीमान्त आय वक्र का अन्तराल के अन्दर ही काटेगा तथा यह स्पष्ट हो जाता है कि मांग में कमी होने पर कीमत अपरिवर्तित रहने की सम्भावना होती है।

(4) यदि मांग में वृद्धि हो जाए तो कीमत के स्थिर रहने की सम्भावना नहीं होगी जब कि इसके स्थान पर कीमत में वृद्धि की सम्भावना होती है। मांग में वृद्धि की दशा में एक अल्पाधिकारी यह आशा कर सकता है कि वह कीमत में वृद्धि करता तो उसके प्रतियोगी सम्भवतः उसका अनुसरण करेगें। अतः मांग वक्र का उपर वाला भाग dP कम लोचदार बन जाएगा और dPD कोंण अधिक कोंण होना फलतः सीमांत आय वक्र में HR अन्तराल कम हो जाएगा और यदि यह अन्तराल बहुत कत हो जाता है तो इस बात की सम्भावना अधिक है कि सीमान्त लागत वक्र सीमान्त आय वक्र को H बिन्दु के उपर अर्थात अन्तराल के उपर कटेगा। इससे यह पता चलता है कि कीमत OP से अधिक हो जाएगी।

3.9 सारांश

हम यह कह सकते है कि अल्पाधिकारी का विकुंचित मांग वक्र विश्लेषण गिरती लागतों या गिरती मांग की दशाओं में कीमत स्थिरता की व्याख्या करता है जबकि लागतो के बढ़ने या मांग को बढ़ने पर कीमतों में बढ़ने की सम्भावना होती है।

3.10 महत्वपूर्ण शब्द

समूह व्यवहार, परस्पर निर्भरता, कीमत नेतृत्व, कपट संधायी या गुटबन्दी कीमत निर्धारण विकुंचित मांग वक्र

3.11 अन्य चयनित पाठन

1. मैनेजीरियल इकॉनोमिक्स– माहेश्वरी
2. टेक्स्ट बुक ऑफ इकॉनोमिक्स– बोएस
3. मैनेजीरियल इकॉनोमिक्स– डीन
4. भारतीय अर्थव्यवस्था विकास एवं आयोजन– ए0के0अग्रवाल

3.5 सन्दर्भ पुस्तकें

1. मैनेजीरियल इकॉनोमिक्स– मोते, पॉल एण्ड गुप्ता
2. उच्चतर आर्थिक सिद्धान्त– एच0एल0 आहूजा
3. मैनेजीरियल इकॉनोमिक्स– थॉमस मॉरिस

3.14 स्व परख प्रश्न

प्रश्न:–1–अल्पाधिकार से आप क्या समझते है? इसकी विशेषताओं का वर्णन करें।

प्रश्न–2– अल्पाधिकार में कीमत एवं उत्पादन निर्धारण कैसे होता है?

प्रश्न–3– अल्पाधिकार के सम्बन्ध में कीमत नेतृत्व माडॅल को समझाइये। इसके कितने प्रकार है।

प्रश्न–4– कीमत नेतृत्व के द्वारा कीमत निर्धारण कैसे होता है इसकी क्या क्या कठिनाइयॉ है?

प्रश्न–5– अल्पाधिकार के सम्बन्ध में कपटसंधायी कीमत निर्धारण माडल को समझाइये।

प्रश्न–6– पूर्णकार्ते के अन्तर्गत कीमत निर्धारण कैसे होता है। चित्र द्वारा समझाये।

प्रश्न–7– विकुचित मॉग वक्र को समझायें।

प्रश्न–8– विकुचित मॉग वक्र तथा अल्पाधिकार की साम्यवास्था को चित्र द्वारा समझाइये ।

इकाई 4 गैर कीमत प्रतिस्पर्धा (Non price computation)

इकाई संरचना

4.1 उद्देश्य

4.2 प्रस्तावना

4.3 विक्रय लागत एवं समूह साम्य

2.4 गैर कीमत प्रातस्पर्धाएं

4.4.1 उत्पादन नवीनीकरण

4.4.2 विज्ञापन

4.5 सारांश

4.6 महत्वपूर्ण शब्द

4.7 अन्य पाठ्य स्त्रोत

4.8 सन्दर्भ पुस्तकें/स्त्रोत

4.9 स्व–परख प्रश्न

4.1 उद्देश्य

इस इकाई को पढने के उपरान्त छात्र निम्नांकित उददेश्यो को पूर्ण करने में सफल होगें।

> गैर कीमती प्रतिस्पर्धा के अवयवों को पहचानने में

>विक्रय लागत एवं समूह साम्य की अवस्था को समझने में

> गैर कीमत प्रतिस्पर्धा की रणनीतियो को समझने में

> उत्पादो के सफल विकय में विज्ञापन के महत्व को समझने मे

4.2 प्रस्तावना

अभी तक की इकाइयो में हमने मूल्य/कीमतो सम्बन्धी प्रतिस्पर्धात्मक कारको का अध्ययन किया तथा इसमें फर्म के उत्पादन एंव लाभ साम्यो पर सीधे रूप से प्रभाव पडता है। चैम्बरलिन के विश्लेषण को यदि हम देखे तो हम कह सकते हैं कि कीमत प्रतिस्पर्धा से सदैव फर्मो को हानि ही होती है। अर्थात सभी फर्मे हानि वहन करती हैं तथा कोई भी फर्म लाभ अर्जित नहीं

NMDC-222

करती है। इस कारण फर्म कीमत प्रतिस्पर्धा में अतिरिक्त अन्य गैर कीमती प्रतिस्पर्धाओ को प्रयोग में लाती हैं जिससे कि उनकी हानि कम हो तथा वे लाभ अर्जित कर सके और इस प्रकार अपने बाजार में भागीदारी को भी बढा सकें।

सामान्यतया गैर–कीमत प्रतिस्पर्धात्मक तरीके में विज्ञापन एंव उत्पाद नवीनीकरण मुख्य है। वास्तविकता तो यह हैं कि उत्पाद नवीनीकरण एवं विज्ञापन दोनो साथ–साथ होते हैं। यदि किसी उत्पाद में कोई नवीनीकरण लाया जाता हैं तो उस उत्पाद की सफलता विज्ञापन पर ही निर्भर होगी। यदि विज्ञापन के द्वारा उपभोक्ताओ को उत्पाद के नवीनीकरण की उपयोगिता समझ में आती है। तो उपभोक्ताओ मे ऐसे उत्पादो की स्वीकार्यता बढ़ जाती है। एकाधीकृत प्रतिस्पर्धा में विज्ञापन के लागत के अतिरिक्त फर्म अपने विक्रय को बढाने के लिए अन्य प्रतिस्पर्धात्मक तरीकों पर भीं खर्च करती है। उदाहरणार्थ विक्रयकर्मियो पर डीलरो पर सैम्पल देने में प्रदर्शन करने में उपभोक्ताओ को मुफ्त सैम्पल देने एवं उपहार देने में तथा वस्तुओ की आकर्षक पैकेजिंग इत्यादि में आने वाले खर्च इस प्रकार की सभी लागतें एवं विज्ञापन लगाते एक फर्म की विक्रय लागतो में वृद्धि करती है।

विक्रय हेतु लागतो में वृद्धि से विक्रय मे वृद्धि होती हैं परन्तु इसकी मात्राऍं भिन्न– भिन्न होती हैं। सामान्यतः प्रारम्भ में तो विक्रय वृद्धि बढ़ी हुयी दर पर होती हैं। परन्तु शनैः–शनैः यह घटती हुयी दर पर होती है। इस प्रकार से विक्रय की औसत लागत प्रारम्भ में तो घटती है परन्तु अन्ततः बढ़ ही जाती है। इस कारण औसत विक्रय वक्र U आकार का होता है जो परामपरागत औसत लागत वक्र के समान ही होता है। इससे यह प्रतीत होता है कि कुल विक्रय बढ़ती हुयी विक्रय लागत से घटते आगम की विषय वस्तु होती है।

4.2 विक्रय लागत एवं समूह साम्यावस्था (Selling Cost & Group Equilibrium)

किसी फर्म के समूह साम्य को विक्रय लागत के साथ विश्लेषण करने के लिए हम यह मानते है कि किसी भी फर्म का मुख्य उददेश्य लाभ अधिकतम करना ही होता हैं। जब फर्म अपनी विक्रय लागतो में वृद्धि करती है। तो इनका मुख्य उददेश्य अपनी फर्म को लाभांश में वृद्धि करना है। प्रारम्भ की इकाई में लागत एंव आगम सम्बन्धी सभी पूर्व धारणाएँ समान रहेंगी। नीचे दिये गये चित्र में समूह साम्य को प्रदर्शित किया गया है।

NMDC-222

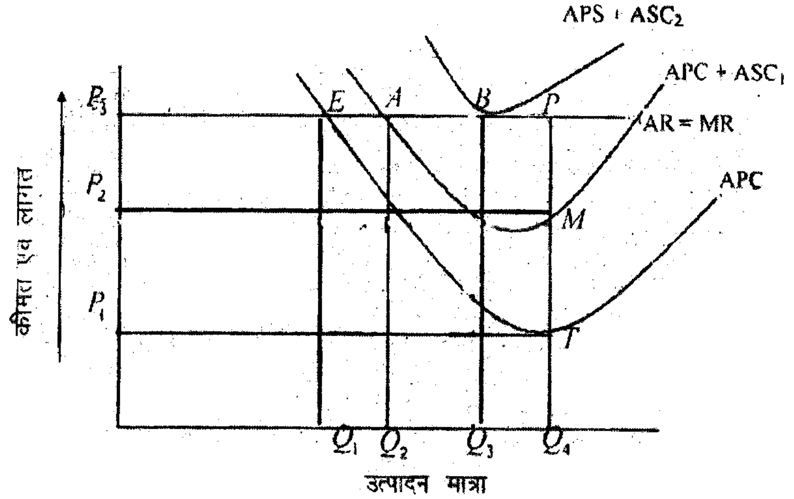

चित्र-1 : विक्रय लागत एवं समूह साम्य

चित्र – 1 : विक्रय लागत एवं समूह साम्य

माना कि APC औसत उत्पादन लागत को दर्शाती है तथा इसकी कीमत QP_3 पर प्रदर्शित हैं। यहाँ पर किसी भी फर्म में कोई विक्रय लागत नही है। माना कि सभी फर्में E बिन्दु पर साम्यावस्था में हैं जहाँ वे अपना साधारण लाभांश अर्जित करती है। माना कि अब एक फर्म अपनी विक्रय लागत को बढाती है तथा इस कारण औसत उत्पादन लागत APC_3 औसत विक्रय लागत ASC के साथ मिलकर चित्र में वक्र $APC + ASC_1$ तक बढ़ जाती हैं तथा कुल विक्रय OQ_4 तक बढ़ जाता है। उत्पादन मात्रा OQ_4 पर फर्म असाधारण लाभ P_3 PMP_2 अर्जित करती है। यह लाभ तभी तक सम्भव है जब तक कि अन्य फर्में भी अपने उत्पादों के लिए विज्ञापन प्रारम्भ नहीं कर देती हैं। यदि अन्य फर्में भी अपने उत्पादों का विज्ञापन का प्रारम्भ कर देती हैं और उनकी विक्रय लागत भी इसी मात्रा में बढ़ जाती है तो सर्वप्रथम विज्ञापन करने वाली फर्म का लाभ समाप्त हो जाता है तथा उत्पादन OQ_2 तक गिर जाता है। वास्तविकता में सभी फर्मे साम्यावस्था के बिन्दु A पर पहुँच जाती हैं तथा OQ_2 इकाइयों का उत्पादन करती हैं। परन्तु इनकी दूरदृष्टि दोष के कारण वे अपनी विक्रय लागत को बढ़ाने के लिए मजबूर हो जाते हैं क्योंकि वे अपनी औसत उत्पादन लागत (APC) को, उत्पादन बढ़ाकर कम करना चाहते हैं। बढ़ी हुयी विक्रय लागत के साथ उनके APC+ASC वक्र पुनः ऊपर की ओर विस्थापित हो जाते हैं। यह प्रक्रिया APC + ASC के, AR=MR तक स्पर्श रेखा होने तक चलती है। इस स्थिति को B बिन्दु पर प्रदर्शित किया गया है। B बिन्दु के पश्चात् किसी फर्म को विज्ञापन करते हुए नहीं देखा जाता है। साम्यावस्था B बिन्दु पर ज्यादा समय तक स्थिर रहती है जहाँ प्रत्येक फर्म OQ_3 मात्रा उत्पादित करती है तथा सामान्य लाभ अर्जित करती है।

आइए अब हम अन्य गैर कीमत प्रतिस्पर्धात्मक विधियों का संक्षेप में अध्ययन करेंगें।

4.4 गैर कीमत प्रतिस्पर्धाएं (Non-Price Competitions)

जैसा कि हमने पहले के बिन्दुओं में पढ़ा कि गैर कीमत प्रतिस्पर्धाओं में मुख्यतः विज्ञापन एवं उत्पाद नवीनीकरण विधियाँ आती हैं। इस भाग में हम इन विधियों का विस्तृत वर्णन करेंगे।

4.4.1 उत्पाद नवीनीकरण (Product Innovation)

जैसे–जैसे प्रतिस्पर्धा तकनीकि का विकास हुआ है वैसे–वैसे उत्पाद नवीनीकरण एवं नये उत्पादों का सृजन एक आम बात हो गयी है। भरतीय अर्थव्यवस्था एक विकासशील अर्थव्यवस्था है तथा इसमें कुछ शाक्तिशाली उपभोक्ताओं के हाथ में ही अधिकांश उत्पादों की सफलता प्रायः रहती है। जिस प्रकार से विगत दो दशकों में भारतीय अर्थव्यवस्था का सकारात्मक विकास हुआ है उसमें उत्पाद नवीनीकरण की संभावनाएं एवं सफलता की प्रबलताएँ काफी बढ़ गयी हैं। तकनीकि एवं वैश्वीकरण के प्रभाव से उत्पादों की डिजाइन, स्टाइल एवं पैकेजिंग आदि से सम्बन्धित कारक आज के युग में अत्यन्त महत्वपूर्ण हो गये हैं तथा उत्पाद लागतों को तो प्रत्येक फर्म ध्यान में रखकर कम करने में लगी है। उत्पाद नवीनीकरण की रणनीतिक आवश्यकता को हम निम्न सारणी की सहायता से समझ सकते हैं।

	वर्तमान उत्पादन (Existing Product)	नवीन उत्पादन (New Product)
वर्तमान बाजार (Existing Market)	बाजार में घुसने की रणनीतियाँ (Market Penetration Strategies)	उत्पादन किकास रणनीतियाँ (Product Development Strategies) उत्पाद
	बाजार की साझेदारी में वृद्धि	सुधारीकरण
	उत्पाद के प्रयोग की आवृत्ति में वृद्धि	उत्पाद रेखा विस्तार
	उत्पाद के प्रयोग की आवृति में वृद्धि	समान बाजार के लिए नये उत्पाद
	उत्पाद की मात्रा में वृद्धि	
	उत्पाद के नये प्रयोग	

उपर्युक्त सारणी में स्पष्ट हैं कि विपणन राणनीति के अन्तर्गत जब हमको वर्तमान बाजार में वर्तमान उत्पाद के साथ ही प्रतिस्पर्धा करनी होती है तो उत्पाद विकास की रणनीतियाँ महत्वपूर्ण होती हैं तथा जब नये बाजार में नये उत्पाद नवीनीकरण एवं नये उत्पाद विकास की आवश्यकता होती है। नये उत्पाद से हमारा तात्पर्य भिन्न–भिन्न परिस्थितियों में भिन्न हो सकता है। नये उत्पादों के सिद्धान्त को हम निम्न प्रकार से समझने का प्रयास कर सकते हैं।

(1) विपणन नवीनीकरण (Marketing Innovation)

जब कम्पनी वर्तमन उत्पादों में ही कुछ सुधार करती है तथा इनको बाजार में उतारती है। उदाहरण के लिए पेप्सी एवं कोक पेय पदार्थो को टिन कैन में उतारना, मारूती 800 के वाह्य ढाँचे की बनावट में एवं हेडलाइट तथा बैकलाइट के परिवर्तन करना, साबुनो के आकार में बदलाव करना आदि इस प्रकार किये बदलावों के प्रति उपभोक्ता को स्वयं की उत्पाद आदतों में बहुत बदलाव नहीं करना पड़ता है तथा उनका संतुष्टि स्तर कुछ बढ़ जाता है। जबकि नये उपभोक्ता इस प्रकार के सुधार उत्पादों के प्रति आकर्षित हो जाते है। इस प्रकार के उत्पादो को विपणन नवीनीकरण की श्रेणी में इसलिए रखा गया है क्योंकि सुधार का मुख्य आधार विपणन के अवयवों के द्वारा ही निध ारित होता है जैसे कि पैकेजिंग में बदलाव, ब्रॉडिंग में बदलाव, आसान उपलब्ध ता आदि।

2. उत्पाद सुधारीकरण (Product Improvements)

जब उत्पाद तो अपने मूलभूत श्रेणी में उपलब्ध रहता हैं परन्तु तकनीकि तथा डिजाइन रूपी परिवर्तन से वह श्रेणी में नया मालूम प्रतीत होता है। उदाहरणार्थ 100CC स्ट्रीट दोपहिया वाहनं हीरो हॉण्डा के द्वारा एंव स्कूटी का बाजार में उतारा जाना । इस प्रकार के उत्पादो का निर्माण नये उपभोक्ताओ को आकर्षित करने के लिए होता है। उदाहरणार्थ स्ट्रीट एवं स्कूटी उत्पादो को बाजार में मुख्यत: लडकियों/स्त्रियों एवं बुर्जुग उपभोक्ताओ के उपयोग के लिए उतारा गया था। इस प्रकार के उत्पादो की सफलता के लिए विपणनंकर्ता को अपने उपभोक्ताओ को यह समझना पड़ता है कि उस समय के वातावरण में यह उत्पाद किस प्रकार ज्यादा उपयोगी है। उदाहरणार्थ स्कूटी में गियर

NMDC-222

का न होना तथा ब्रेक हाथों में ही होना, वजन कम होना, माइलेज अधिक होना, प्रदूषण न्यूनतम होना, आज के वातावरण में इसकी उपयोगिता को सिद्ध करता है

3. **तकनीकी नवीनीकरण** (Technological Innovations)

सूचना क्रांति के युग मे कम्प्यूटर्स की मदद से कई नयी तकनीकियों का विकास हुआ है। यदि हम कम्प्यूटर्स की बात करें तो पेण्टियम प्रोसेसर से लेकर P_1, P_2, P_3, P_4 डुअल कोर एवं कोर टू ड्यो माइक्रोप्रोसेसर इसी का एक उदाहरण है। इसी प्रकार नोकिया कम्पनी ने मोबाइल फोन सेट में आधुनिकतम तकनीकी बदलाव उदाहरणार्थ 3G तकनीकी आदिलाकर एक अच्छी बाजार साझेदारी को प्रदर्शित किया है।

उत्पाद नवीनीकरण/नये उत्पाद विकास के तरीके :–

(क) तकनीकी का स्थानान्तरण (Transfer of Technology)

(ख) नये बाजार में घुस बैठ (Penetration in New Market)

(ग) नये उत्पाद रेखा (New Product Line)

(घ) लागत मे कमी (Cost Reduction)

(ड़.) उत्पाद रेखा में विस्तार (Extension in Product Line)

(च) उत्पाद की पुनिर्स्थिति अथवा पुनः उतारना (Repositioning or Relaunch of product)

(क) तकनीकि का स्थानान्तरण (Transfer of Technology)

जैसे जैसे नयी–नयी तकनीकियो का विकास हुआ है। वैसे–वैसे नये उत्पादों को बाजार में उतारा गया है। उदाहरणार्थ 3G मोबइल फोन, पेन ड्राइव, वेब कैमरा इत्यादि

(ख) नये बाजार में घुस पैठ (Penetration in New Market)

किसी नये बाजार में भी घुस पैठ बनाने के लिए नसे उत्पादो को उस बाजार में उतारा जाता है। उदाहरणार्थ डाइबिटीज के उपभोक्ताओ को या कैलोरी सजग उपभोक्ताओ के लिए डाइट कोक, महिलाओ के लिए वोदका शराब ग्रामीण क्षेत्रो के बच्चों के लिए छोटे पैक में बिस्कुट, ग्रामीण स्थातियों

के लिए राजदूत मोटर साइकिल आदि उत्पाद विस्तृतीकरण भी इसी का एक उदाहरण है।

(ग) उत्पाद रेखा में विस्तार (Extension in Product Line)

प्रायः यह देखा गया है कि उपभोक्ताओं की बढ़ती माँग को दृष्टिगत करते हुए कम्पनियाँ अपने उत्पाद रेखा (श्रेणी) में कुछ और उत्पादों को जोड़ देती है। उदाहरणार्थ, वीडियोकॉन कम्पनी ने व्हाइट गुड्स श्रेणी में वाशिंग मशीन के साथ–साथ रेफ्रीजरेटर आदि उत्पादों को भी बनाना प्रारम्भ किया। इसी प्रकार गोदरेज ने भी नॉन ड्यूरेबल्स उत्पादों के साथ–साथ व्हाइट गुड्स जैसे कि रेफ्रिजरेटेर आदि को उत्पाद श्रेणी को बनाना प्रारम्भ किया। इसके अतिरिक्त ऑफिस फर्नीचर आदि भी इसकी उत्पाद रेखा (श्रेणी) में शामिल है।

(घ) वर्तमान उत्पादों में सुधारीकरण (Improvements in Existing Products)

बढ़ती हुयी प्रतिस्पर्धा में अच्छी गुणवत्ता एवं अलग लक्षणों के लिए कम्पनी प्रायः अपने वर्तमान उत्पाद रेखा के उत्पादों में सुधार करती है या नयी रेंज उतारती है। उदाहरणार्थ लाइफबॉय साबुन के अतिरिक्त लाइफबॉय प्लस, लाइफबॉय इण्टरनेशनल एवं लाइफबॉय गोल्ड ब्राण्डों का उत्पादन। बजाज ऑटो के द्वारा RTZ एवं विण्ड एवं कैलिवर मोटर साइकिलों को बन्द करें डिस्कवर एवं पल्सर मोटरसाइकिलों का उत्पादन भी इसी का एक उदाहरण है।

(ड़) लागत में कमी (Cost Reductions)

बाजार में प्रतिस्पर्धा को जीतने के लिए कम्पनियाँ अपने उत्पादों की लागत में कमी करके अथवा कम लागत से बजे कम कीमत के उत्पादों को बाजार में बेचकर भी अपनी स्थिति को सुदृढ़ करती है। उदाहरणार्थ Ariel Compact के अतिरिक्त पर Ariel Gain मध्यम वर्गीय लोगों के लिए एक तुलनात्मक सस्ता वाशिंग पाउडर था। इसी प्रकार Ariel एवं Surf की तुलना में Tide भी एक तुलानात्मक रूप से सस्ता उत्पाद है।

(च) उत्पाद को पुनः उतारना (Product Relaunch)

कभी–कभी उत्पाद/ब्राण्ड की घटना मॉग को देखते हुए उसे नये

डिजाइन या लक्षण के साथ बाजार में उतारा जाता है। उदाहरणार्थ, मारूती 800 के स्थान पर New Maruti 800 का उत्पादन, स्प्लेण्डर के स्थान पर स्प्लेण्डर प्लस, व्हील के स्थान पर ब्लू या व्हील ग्रीन आदि इसके उदाहरण है।

4.4.2 विज्ञापन (Advertising)

विज्ञापन संप्रेषण का एक ऐसा माध्यम है जिसके द्वारा हम सीधे तौर पर अपने उपभोक्ता को प्रभावित करके उत्पाद के विक्रय को बढ़ाने का प्रयत्न करते हैं। यदि हम विज्ञापन को परिभाषित करें तो यह सम्प्रेषण का एक ऐसा प्रकार है जिसमें विपणनकर्ता या प्रायोजक किसी उत्पाद के संवर्धन के लिए उपभोक्ता को उत्पाद खरीदने के लिए किसी उचित माध्यम के प्रयोग के द्वारा संदेश के द्वारा प्रेषित करता है तथा यह सम्प्रेषण गैर वैयक्तिक होता है। विज्ञापन के द्वारा किसी ब्राण्ड की एक विशेष पहचान को दर्शाया जाता है तथा निम्न प्रकार से विज्ञापन किसी उत्पाद के लिए एक स्वीकार्य विधि का कार्य करता है। अर्थात निम्न प्रकार से उत्पाद की स्वीकार्यता में विज्ञापन मदद करता है।

उत्पाद/ब्राण्ड की जागरूकता उत्पन्न करना → उत्पाद या ब्राण्ड में रूचि पैदा करना

उत्पाद या ब्राण्ड का मूल्यांकन करना

उत्पादन या ब्राण्ड को प्रयोग करके देखना

उत्पाद या ब्राण्ड के लम्बे समय के लिए स्वीकार करना।

4.4.2.1 विज्ञापन एवं विपणन मिश्रण:–

बजार में प्रतिस्पर्धा को जीतने के लिए विज्ञापन का प्रयोग कोई भी विक्रेता निम्न प्रकार से कर सकता है।

(1) विज्ञापन की मात्रा, जोर तथा समय उत्पाद के जीवन चक्र की अवस्था पर निर्भर करता है। उदाहरणार्थ यदि हम उत्पाद जीवन चक्र के प्रारम्भिक अवस्था में है तो इस उत्पाद के प्रति जागरूकता बढ़ाने के लिए हमें अधिकतम विज्ञापन का प्रयोग करना होता है।

(2) विपणन शोध के द्वारा हम यह जान सकते है कि कोई उपभोक्ता किसी उत्पाद के प्रति किन अभिप्रायों को ध्यान में रखकर खरीदता है तथा इन अभिप्रायों को हम विज्ञापन में प्रयोग करके उत्पाद को सफलता से बाजार में बेंच सकते हैं।

(3) किसी विज्ञापन की प्रति (Ad Copy) अथवा विधि में ब्राण्डिंग अथवा ब्राण्ड नाम की महत्वपूर्ण होती है। उदाहरणार्थ नाइकी जूतों के विज्ञापन में (Just do it) का प्रयोग, एक्शन शूज में कार्य करने की क्षमता का प्रयोग आदि।

(4) किसी भी उत्पाद की छवि विज्ञापन के द्वारा ज्यादा निखर के आती है क्योंकि विज्ञापन में हम किसी भी ब्राण्ड अम्बेसडर या सेलिब्रिटी का प्रयोग करते है जो उसके समतुल्य छवि का निर्माण करता है। उदाहारणार्थ यदि ब्राण्ड को सचिन तेन्दुलकर या अभिताभ बच्चन के साथ दिखाया जाए तो भारतीयों में उसकी स्वीकार्यता बढ़ जाती है।

(5) किसी विज्ञापन का निर्माण अर्थात् उसकी पृष्ठभूमि एवं रचनात्मकता उत्पाद के खण्ड के उपभोक्ताओं को दृष्टिगत रखते हुए किया जाता है। अर्थात उपभेक्ता की पृष्ठभूमि, उसकी जीवन शैली, उसकी आय आदि मुख्य कारक होते हैं।

(6) पैकेजिंग की विज्ञापन में अति महत्वपूर्ण भूमिका होती है। उदाहरणार्थ सॉफ्ट ड्रिंक्स की बोतलों का आकार, साबुन के आकार आदि, साथ ही पैकेजिंग में रंगों का इस्तेमाल भी विज्ञापन को आकर्षक बनाने में मदद करता है।

(7) वितरण बिन्दुओं पर भी विज्ञापन के विभिन्न माध्यमों का प्रयोग करके उत्पाद की स्वीकार्यता को बढ़ाया जा सकता है।

(8) विज्ञापन के द्वारा उपभोक्ता की उत्पादों/ब्राण्ड में रूचि बनायी रखी जा सकती है तथा इसके द्वारा उपभोक्ताओं में स्वामिभक्ति (Loyalty) को भी बनाया रखा जा सकता है।

4.5 सारांश

चूँकि आज के प्रतिस्पर्धात्मक युग में अनन्य उत्पाद (ब्राण्ड) बाजार में

उपस्थित हैं अतः कम्पनी ब्राण्ड के उपभोक्ता को याद रखने के लिए निरन्तर विज्ञापन करती है। ताकि उपभोक्ता उनके ब्राण्ड को भूल न जाए। इस प्रकार से विज्ञापन एवं उत्पाद नवीनीकरण का प्रयोग गैर कीमत रणनीति के तहत किया जाता है कीमत प्रतिस्पर्धा की एक निश्चित सीमा होती है तथा कोई भी कम्पनी एक सीमा के बाद कीमत प्रतिस्पर्धात्मक को बनाए नहीं रख सकती है और यहाँ पर उसे गैर कीमत प्रतिस्पर्धा विधियों को अपनाना पड़ता है। गैर कीमत प्रतिस्पर्धा में एक लाभ यह होता है कि कम्पनी के उत्पाद एवं ब्राण्ड की छवि उपभोक्ता के मस्तिष्क में अधिक समय तक रह सकती है और ज्यादा से ज्यादा स्वामिभक्त उपभोक्ताओं की संख्या कम्पनी के उत्पादों के लिए बनी रह सकती है।

4.6 महत्वपूर्ण शब्द

उत्पाद नवीनीकरण, गैर प्रतिस्पर्धात्मक तरीके, विज्ञापन,
उत्पाद नवीनीकरण, वृद्धि रणनीति, विपणन नवीनीकरण,
उत्पाद सुधारीकरण, तकनीकी सुधारीकरण, उत्पाद विस्तार।

4.7 अन्य पाठ्य स्त्रोत

- मैनेजीरियल इकॉनामिक्स – महेश्वरी
- टेक्स्ट बुक ऑफ इकॉनोमिक्स – बोएस
- मैनेजीरियल इकॉनोमिक्स – डीन
- भारतीय अर्थव्यवस्था विकास एवं आयोजन – ए.के.अग्रवाल

4.8 सन्दर्भ पुस्तकें/स्रोत

- मैनेजीरियल इकॉनोमिक्स – मोते पॉल एण्ड गुप्ता
- उच्चतर आर्थिक सिद्धान्त – एच. एल. आहूजा
- मैनेजीरियल इकॉनोमिक्स – थॉमस मॉरिस

MDC-222

4.9 स्व–परख प्रश्न

प्र.1 गैरकीमत प्रतिस्पर्धा से आप क्या समझते हैं? विक्रय लागत एवं समूह साम्यावस्था की व्याख्या कीजिए।

प्र.2 गैर कीमती प्रतिस्पर्धाओं की उदाहरण सहित व्याख्या कीजिए।

इकाई 5 कीमत विभेद

इकाई संरचना

5.1 उद्देश्य

5.2 प्रस्तावना

5.3 लोच कारक : स्थानिक कारक

5.4 स्थानिक विभाजित बाजारों में डम्पिंग

5.5 कीमत विभेद के लिए आवश्यक परिस्थितियाँ

5.6 सीमाओं के द्वारा कीमत विभेद

5.7 सारांश

5.8 महत्त्वपूर्ण शब्द

5ण9 बोध प्रश्न

5.10 अन्य पाठ्य स्त्रोत

5.11 सन्दर्भ पुस्तकें

5.1 उद्देश्यः

इस इकाई को पढ़ने के पश्चात शिक्षार्थी निम्नांकित उद्देश्यों की पूर्ति करने में सफल होंगे।

- विभिन्न उत्पादों को विभिन्न कीमतों पर बेचने पर के कारणों का विश्लेषण करने में
- कीमत विभेद में लोचकारक को समझने में
- माँग एवं पूर्ति के अनुसार वक्रों के निर्माण में
- सीमाओं के द्वारा कीमत विभेद को परखने में

5.2 प्रस्तावना

कीमत विभेद का तात्पर्य समान अथवा लगभग समान वस्तुयें को उपभोक्ताओं को विभिन्न वर्गों में भिन्न भिन्न कीमतों पर बेचने से होता है। उस प्रकार का कीमत विभेद, लागत के विभेद के कारण नहीं होता है। उपभोक्ताओं का वर्गीकरण हम उनकी आय, खरीदने की क्षमता, भौगोलिक

परिस्थिति, उम्र, लिंग भेद, रंगभेद, वैवाहिक अवस्था, खरीदने की मात्रा या खरीदने के समय इत्यादि के आधार पर कर सकते है। जब इस प्रकार से विभेद किये गये उपभोक्ताओं को भिन्न–भिन्न कीमतों पर समान वस्तुएँ या सेवाएँ प्रदान की जाती है तो इसे कीमत विभेद कहते है। दूसरे प्रकार का कीमत विभेद इस प्रकार से हो सकता है कि विक्रेता भिन्न–भिन्न क्षेत्रों के बाजारों में यहाँ कि उत्पादन लागत भिन्न हो, समान कीमत वसूलते हैं। एक एकाधिकारी विक्रेता के द्वारा कीमत विभेद के उदाहरणों में हम, चिकित्सक एवं अस्पताल, वकील परामर्शक इत्यादि के द्वारा अपने भिन्न वर्गों के उपभोक्ताओं से भिन्न–भिन्न शुल्क निर्धारण के द्वारा समझ सकते है। इसके अन्य उदाहरणों में हम रेलयात्रा, हवाई जहाज यात्रा, सिनेमा तथा अन्य संगीत शो इत्यादि को भी ले सकते है।

5.3 लोच कारक: स्थानिक कारक (Elasticity factors : Spatial factors)

कीमत विभेद को हम किसी समान उत्पाद के लिए दो अथवा अधिक कीमत के निर्धारण के द्वारा परिभाषित कर सकते है। कीमत विभेद के अन्तर्गत हम एक ही उत्पाद के लिए भिन्न–भिन्न कीमत निर्धारिंत करते है। अथवा भिन्न–भिन्न उत्पादों के लिए एक ही कीमत निर्धारित करते है श्रीमती जान रॉबिन्सन की भाषा में हम कीमत विभेद् को इस प्रकार से परिभाषित कर सकते है कि, यह विक्रय की एक क्रिया है जिसके अन्तर्गत एक ही नियन्त्रण में उत्पादित समान उत्पादों को भिन्न–भिन्न ग्राहकों को भिन्न –भिन्न कीमतों पर बेचा जाता है। यदि हम हवाई यात्रा का उदाहरण ले तो इकॉनामी क्लास एवं एक्जीक्यूटिब क्लास टिकट के लिए भिन्न–भिन्न कीमतों का निर्धारण कीमत विभेद का एक उदाहरण नहीं होता है क्योंकि दोनों ही क्लास के यात्रियों को भिन्न–भिन्न कीमतों पर भिन्न–भिन्न सुविधाएं मिलती है। कीमत विभेद के अन्तर्गत वस्तु का समान होना आवश्यक है तथा एक आवश्यक शर्त यह होती है कि माँग की लोच में अन्तर होना चाहिए अर्थात समान उत्पाद/वस्तु की माँग की लोच में भिन्नता होनी चाहिए। यदि हम जॉन रॉबिन्सन के अनुसार इस शर्त को समझने का प्रयास करें तो, उपबाजारों को उनकी लोच के आरोहरण के कम में व्यवस्थित करते हैं जब कि उच्चतम कीमत का निर्धारण सबसे कम लोच वाले बाजार में करते है तथा निम्नतम कीमत का निर्धारण सबसे अधिक लोच वाले बाजार में करते है।

NMDC-222

इस प्रकार का पदानुक्रम का अपनी प्रवृति में स्थानिक होना आवश्यक नहीं है। एक ही शहर में हम इसे देख सकते है। मित्रों, हम इसको एक उदाहरण के द्वारा समझ सकते हैं। प्रतिदिन हम लोग अपने सुबह के नाश्तें में ब्रेड का सेवन करते है। प्रायः आपने दुकानों पर देखा होगा कि कुछ ब्राण्ड का मूल्य अन्य ब्राण्ड की तुलना में अधिक होता है क्योंकि धनाड्य वर्ग मँहगी वस्तुओं को खरीदकर कर ही अधिक सन्तुष्टि अनुभूति करते हैं। इसी प्रकार यदि कुछ ऐसे रेस्टॉरेन्ट में गये हों जहॉ A C एवं Non A C केबिन होते है तो समान खाद्य पदार्थो की कीमतें भिन्न होती हैं अन्तर केवल वातावरण का होता है न कि सुविधाओं का। कीमत विभेद परिवहन कीमत से अधिक नहीं होना चाहिए अर्थात यदि एक स्थान A पर कीमत X हो जो कि कम हैं तो X तथा Y का अन्तर इतना नही होना चाहिए कि उपभोक्ता B स्थान से उत्पाद को लेकर A स्थान पर बेंचे तथा उससे लाभ अर्जित कर सकें कीमत विभेद प्रायः भिन्न आर्थिक बाजारों में प्रयोग किया जाता है न कि स्थानिक बाजारों के अलग होने की स्थिति में, जब तक कि स्थानिक अलगाव स्वयं न हो तथा आर्थिक विभेद पैदा न कर दे। यदि कुछ स्थानों पर प्राकृतिक रूप से भिन्नता के होने के कारण अधिक लोग अधिक आय अर्जित करते हैं तो इस स्थिति में एकाकी विकेता इस स्थान के ग्राहकों से अधिक कीमत वसूल सकता है। जिसकी सीमा इस ग्राहक की क्षमता के अनुसार मापी जा सकती है यदि किसी एकाकी निर्माता/विकेता के पांच स्थानों पर उत्पादन इकाइयाँ हैं तथा उत्पादन की लागत में भिन्नता के कारण कीमतों का निर्धारण भिन्न होता है तो इस प्रकार से कीमत में आयी भिन्नता को हम कीमत विभेद की श्रेणी में नही रख सकते है। इसी प्रकार यदि हम वस्तुओं के परिवाहन में आने वाले अतिरिक्त खर्च या लागत को सन्तुलित करने के लिए कीमत में विभेद करते है तो इसे भी कीमत विभेद का उदाहरण नही मान सकते है यदि हम उपभोक्ताओं के भिन्न उपयोग को दृष्टि में रखते हुये कीमतों में भेद करते है तो यह कीमत विभेद का एक उदाहरण होगा। यदि बिजली की आपूर्ति एक ही क्षेत्र के ग्रामीण क्षेत्र में सस्ते दर पर तथा शहरी क्षेत्र में मंहगी दर पर की जाये तो यह कीमत विभेद का ही एक उदाहरण होगा यहॉ पर क्योंकि कीमत विभेद में स्थान एक आवश्यक कारक नहीं है तथा स्थानों के भिन्न होने के कारण ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्रों में भिन्न कीमत पर बिजली का वितरण नही होता है। दो भिन्न आर्थिक बाजारों में, जो कि स्थानिक रूप से अलग नही

NMDC-222

होते है, कीमत विभेद को निम्न प्रकार से दर्शाया जा सकता है।

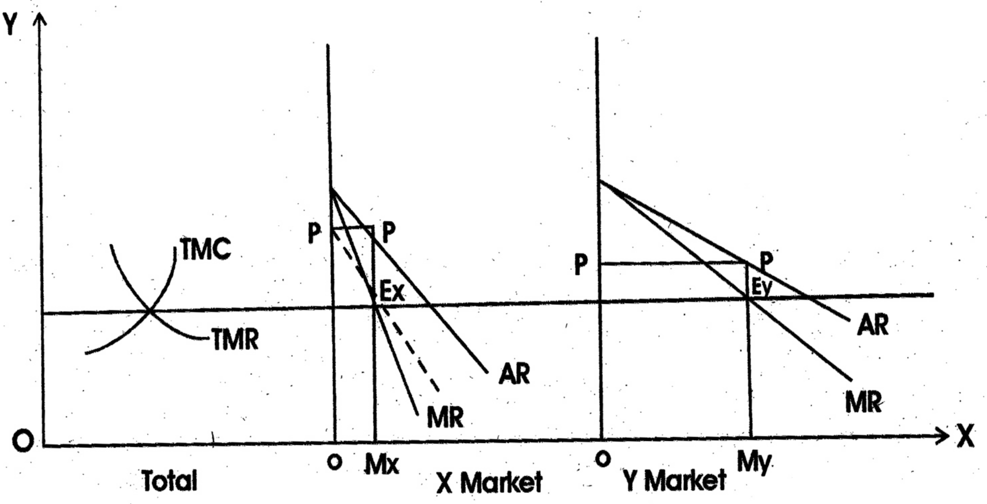

चित्र– क

चूंकि सभी विभिन्न बाजारों में बेचे जाने वाले उत्पादों का उत्पादन एक ही संयंत्र में किया जाता है। अतः इन सभी वस्तुओं की लागत विभिन्न बाजारों में समान ही रहेगी। इन उत्पादों की मात्राओं को इस प्रकार बेचा जाएगा कि सीमान्त लागते एवं सीमान्त प्रतिफल (Marginal Revenue) विभिन्न बाजारों में सामान होगी। चित्र 'क' के प्रथम भाग में निर्धारित साम्यावस्था उत्पादन (Equillibrium out put) को दो बाजारों के बीच बाजारों की मूल्य देने की क्षमता के अनुसार वितरित किया जाना है। अर्थात दोनों बाजारों की मूल्य देने की क्षमताएं (Paying capacities) भिन्न होगी X बाजार में मांग अलोचपूर्ण (Elastic) है अतः (AR\MR) वक्र खड़े रूप में हैं, अर्थात कम अंश के कोण बनाते हुए प्रतीत होते है जबकि y बाजार में चूँकि माँग कुछ लोचपूर्ण है (Elastic) है अतः (AR\MR) वक्र कुछ क्षैतिज प्रतीत होते है अर्थात समानान्तर रूप में प्रतीत होते हैं। इस प्रकार से हम देखते है कि X बाजार में उसी वस्तु को अधिक तथा Y बाजार में उसी वस्तु की कम कीमत निर्धारित की गयी है। दोनों बाजारों में साम्यावस्था उत्पादन (Equillibrium out put) उस विन्दु पर प्राप्त होगा जहाँ MC (Total), व्यक्तिगत बाजार के MR के समान होता है जो कि क्रमशः बिन्दु Ex एवं Ey पर मिलते है। प्रायः यह देखा गया है कि 'विभेद' विपरीत या विरोधाभास को प्रकट करता है। जबकि एकाधिकारी Monipolists के द्वारा कीमत विभेद का सीधा फायदा गरीबों को मिलता है। चूंकि गरीबों वाले बाजारों में मांग लोचपूर्ण है अतः इस बाजार में कम कीमत वसूल की जाती है तथा अमीरों के बाजार में मॉग

NMDC-222

अलोचपूर्ण होती है तो उनसे अधिक कीमत वसूल की जाती है। एकाधिकारी के द्वारा कीमत विभेद का प्रयोग सामाजिक विषयों के अनुसार भी किया जा सकता है। उदाहरणार्थ सिंचाई के लिए दी जाने वाली बिजली के लिए कम कीमत वसूलना आदि ।

इसी प्रकार सरकारी क्षेत्र के एकाधिकार के द्वारा एकाधिकार कीमत में विभेद को केवल लाभ को वृद्धि के लिए ही नही वरन सामाजिक एवं आर्थिक उपयोगिता एवं कल्याण के दृष्टिकोण से भी उपयोग किया जा सकता है।

5.4 स्थानिक विभाजित बाजारों में डम्पिंग (Dumping in Spatially)

डम्पिंग (Dumping) अपने प्रतियोगी को बाजार से बाहर करने के लिए वह रणनीति है जिसमें उत्पादक अपने उत्पाद को, प्रतियोगी के उत्पाद के मूल्य से कम में बेचते है या फिर कभी कभी उत्पादन लागत से भी कम मूल्य पर बेच देते है। कभी कभी इस खेल में हानि भी हो जाती है जो कि दूसरे बाजारों से क्षतिपूर्ण की जाती हैं या फिर प्रतियोगी के भागने के पश्चात उस बाजार से की जाती है। डम्पिंग एक प्रकार का द्वेशपूर्ण विभेद है। विभेदित कीमतें आगम की अधिवकता के लिए उपभोक्ता से लिए जाते है : इसमें उत्पादन output इतना अधिक हो भी सकता है तथा नहीं भी। यदि घरेलू बाजार में एकाधिकार है तथा विदेशी बाजार में पूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति हो, तो प्रतियोगी बाजार में प्रतियोगी कीमत वसूली जाती है। घरेलू बाजार में निर्धारित कीमत एकाधिकार कीमत Monopoly price होगी तथा यह AC से अधिक होगी, परन्तु विदेशी बाजार में कीमत घरेलू बाजार में कीमत से कम होगी तथा परन्तु दोनो ही बाजारों में MR को समान करने के लिए प्रयास करने होगें। यदि यह प्रतियोगियों के लिए एक अच्छी स्थिति है तो एकाधिकारी Monopolists बिना किसी नुकसान के डम्प करेगें, यदि AC कवर कर ली गयी है परन्तु इस फर्म की AC अन्य फर्मो की AC से कम है। अन्य परिस्थितियों में AC घरेलू बाजारों में AR से कम हो सकता है परन्तु विदेशी बाजार में AR से अधिक हो सकती है जबकि AR स्वंय में अन्य प्रतियोगियों के द्वारा वसूली जा रही कीमतों से कम हो।

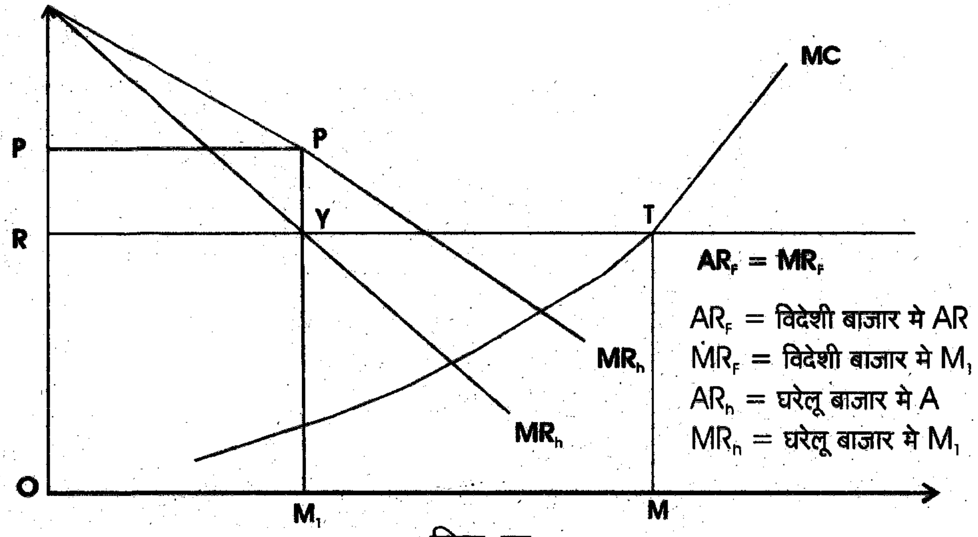

चित्र ख :

उपर्युक्त चित्र में क्षैतिज रेखा से AR_f\MR_f को दर्शाती है। तथा औसत एवं सीमान्त आगम को विदेशी बाजार में दर्शाते है। चुंकि बाजार प्रतियोगी है अतः कीमतें सभी के लिए समान होगी। उत्पादन घरेलू तथा अन्तर्राष्ट्रीय बाजार में समान है। अतः कीमतें सभी के लिए समान होंगी। उत्पादन घरेलू तथा अन्तर्राष्ट्रीय बाजार में समान है अतः MC वक सामान है साम्यावस्था उत्पादन वहाँ होगा जहाँ MR_f, कुल उत्पादन के MC के समान है। इस उत्पादन (Output) को घरेलू तथा अन्तर्राष्ट्रीय बाजारों में समान रूप से वितरित करते है। AR_h तथा MR_h जैसे घरेलू बाजार के सापेक्ष होते है तो गिर रहे है। Y बिन्दु पर MR_f तथा MR_h समान है तथा दोनों सीमान्त लागत MC के बराबर है जैसे T बिन्दु क्षैतिज रेखा पर Y के ही समान है।

कुल उत्पादन OM का OM' घरेलू बाजार में उच्चतर कीमत OP पर बेचा जाता है जो कि डम्पिंग कीमत OR से अधिक है। डम्प बाजार में निपटाया गया उत्पादन (Output) MM' है। यदि डम्पिंग के लिए दो से अधिक अन्तर्राष्ट्रीय बाजार होते है तो कीमत निर्धारा के लिए दो से अधिक घरेलू (राष्ट्रीय) उप बाजारों के लिए, उत्पादन मात्रा का बँटवारा तथा कीमत निर्धारण उपर्युक्त के अनुसार ही होगा।

4.5 कीमत विभेद के लिए आवश्यक परिस्थितियाँ

प्रथम, विभेदीकृत कीमतों को विक्रेता के द्वारा अभ्यास में लाने के लिए विभिन्न बाजार अलग अलग होने चाहिए। उपभोक्ताओं के स्तर को भिन्न भिन्न बाजारों को अलग होना चाहिए ताकि एक स्तर के उपभोक्ता दूसरे स्तर के उपभोक्ताओं के बाजार में जाकर समान को बेचकर लाभ न अर्जित कर

NMDC-222

सकें। बाजारों का अलगाव (क) भौगोलिक दूरी के अनुसार कर सकते है, जिसमें परिवहन की लागत अधिक हो जैसे कि घरेलू एवं विदेशी बाजार: (ख) वस्तुओं एवं सेवाओं के भिन्न उपयोगों के द्वारा उदाहरणार्थ डॉक्टर की सेवाएँ :(ग) वितरण मार्ग की कमी होने पर उदाहरणार्थ घरेलू इस्तेमाल में कम दर पर विद्युत आपूर्ति तथा औद्योगिक इस्तेमाल में अधिक दर पर विद्युत आपूर्ति।

द्वितीय, माँग की लोच भिन्न भिन्न बाजारों में भिन्न भिन्न होनी चाहिए। कीमत विभेद का उद्देश्य, भिन्न कीमत लोच वाले बाजारों को उपयोग करके लाभ को अधिकतम करना है। यह लोच में एक अन्तर ही होता है जो कीमत विभेद के लिए अवसर प्रदान करता है। यदि मांग की कीमत लोच (Price elosticitites of demond) विभिन्न बाजारों में समान होती है तो कीमत में विभेदी करण, उच्च कीमतों वाले बाजारों में मांग करके लाभ को कम कर देगा।

तृतीय, बाजार में अपूर्ण प्रतियोगिता अवश्य होनी चाहिए। एक फार्म विभिन्न वर्गो के उपभोक्ताओं को विभेद करने वाले उत्पादों की पूर्ति पर एकाधिकार होना चाहिए तथा भिन्न भिन्न कीमतें वसूल करनी चाहिए।

चतुर्थ, लाभ को अधिकतक करने वाला उत्पादन एक अकेले बाजार या उपभोक्ता वर्ग में मांग की मात्रा से बहुत अधिक होता है।

4.6 सीमाओं के द्वारा कीमत विभेद (Price Discrimination by degrees)

कीमत विभेद की सीमा का तात्पर्य उस क्षेत्र तक है जिसमें एक विक्रेता एक बाजार को या उपभोक्ता को विभाजित करने तथा अतिरिक्त उपभोक्ताओं से अधिक लाभ अर्जित कर सकें। आर्थिक दृष्टि से कीमत विभेद की तीन सीमाएं हो सकती है।

प्रथम सीमा, कीमत विभेद की प्रथम सीमा, कीमत के विभेदी करण की अन्तिम सीमा होती है। यदि एक विक्रेता को यह ज्ञात होता है कि उसका उपभोक्ता या उपभोक्ता समूह कितनी कीमत देने की इच्छा रखता है (अर्थात वह जनता है कि उसके उत्पाद के लिए उपभोक्ता का मॉग वक्र क्या है) तो, वह उसके ही अनुसार कीमत का निर्धारण करता है तथा अतिरिक्त उपभोक्ताओं से लाभ अर्जित करता है। इसके अन्तर्गत एक विक्रेता सर्वप्रथम अपने उत्पाद की कीमत सर्वोच्च स्तर पर निर्धारित करता है और यह वह इस प्रकार से

NMDC-222

करता है कि इस वर्ग का प्रत्येक उपभोक्ता कम से कम एक इकाई अवश्य खरीद ले तथा पुनः दूसर वर्ग के उपभोक्ताओं के लिए वह पुनः दूसरी कीमत निर्धारित करता है जो प्रथम वर्ग से कम होती है और वह इस वर्ग के भी अतिरिक्त उपभोक्ताओं से लाभ अर्जित करता है इसी प्रकार इस प्रक्रिया को वह तब तक चालू रखता है जब तक पूर्ण अतिरिक्त उपभोक्ता एक ऐसी कीमत पर प्राप्त होते रहे जहॉ (MC=MR) हो जाती है। यहॉ इस चिकित्सीय सेवाओं का उल्लेख कर सकते है जहॉ एक चिकित्सक को पता होता है कि उसके मरीज की कीमत देने की क्षमता क्या है और वह धनाड्य वर्ग से अधिकतम तथा गरीब वर्ग से निम्नतम कीमत वसूलता है।

द्वितीय सीमा, जहॉ बाजार का आकार बहुत बड़ा होता है, पूर्ण विभेद न तो सम्भव होता है और न ही आवश्यक होता है। इस स्थिति में एक एकाधिकारी द्वितीय डिग्री का विभेदन या ब्लॉक कीमत निर्धारण विधि अपनाता है।

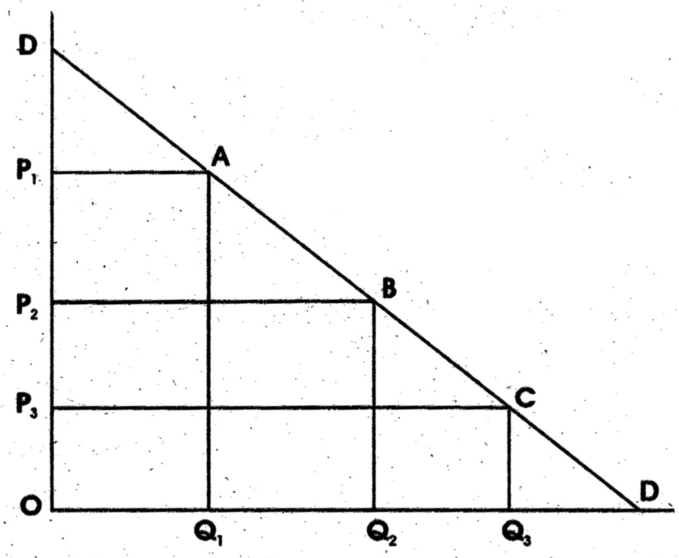

चित्र गः– द्वितीय डिग्री कीमत विभेदन (Second degree price discrimination)

एक एकाधिकारी जो द्वितीय डिग्री के कीमत विभेदीकरण को अपनाता है वह अतिरिक्त उपभोक्ताओं के केवल मुख्य भाग को ही लाभ अर्जन के लिए चुनता है तथा सारे उपभोक्ता वर्ग को नहीं । इस स्थिति में एक एकाधिकारी उपभोक्ताओं को विभिन्न ब्लाकों में विभाजित कर लेता है जैसे कि अमीर, मध्यम वर्ग तथा निम्न या गरीब वर्ग। अब वह अपनी वस्तुओं या सेवाओं को इन वर्गो में उदाहरणार्थ पहले अमीरों को अधिकतम मूल्य पर फिर मध्यम को मध्यम कीमत पर तथा फिर निम्नतक वर्ग को सबसे कम कीमत पर बेचता है।

द्वितीय डिग्री का कीमत विभेदन तभी सम्भव है जबकि (i) उपभोक्ताओं की संख्या अधिक हो तथा कीमतो की राशन व्यवस्था की जा सके उदाहरणार्थ उपयोगी सेवाओं जैसे टेलीफोन, पानी के गैलन इत्यादि में (ii) सभी उपभोक्ताओं के मांग वक्र समान हो : (iii) बड़ी संख्या में उपभोक्ताओं पर एक ही दर लागू हों। जैसा कि चित्र ग में दिखाया गया है कि एक एकाधिकारी विक्रेता द्वितीय स्तर के कीमत विभेद को अपनाते हुए, QP_1 कीमत OQ_1 इकाइयों के लिए तथा कुछ कम कीमत OP_2 इकाइयों के लिए तथा निम्नतम कीमत Q_1Q_2 इकाइयों के लिए तथा निम्नतम कीमत OP_3,Q_2Q_3 इकाइयों के लिए लागू करता है। इस प्रकार एक एकाधिकारी विक्रेता ब्लाक कीमत विधि को अपनाते हुए अपने अगाम को अधिकतम करेगा। $TR=(OQ_1-AQ_1)+(Q_2Q_3.CQ_3)$

तृतीय सीमा (Third Degree) जब कोई लाभ अधिकतम करने वाला एकाधिकारी विभिन्न लोच वाले मांग वक्रों के विभिन्न बाजारों में भिन्न भिन्न कीमतो का निर्धारण करता है तो उसे तृतीय डिग्री का कीमत निर्धारण कहते है। प्रायः ऐसा होता है कि एक विक्रेता को अपना सामान दो से अधिक बाजारों में बेचना पड़ता है जबकि एक दूसरे बिल्कुल प्रथक होते है तथा उनकी मांग वक्र की लोच भी अलग अलग होती है। लाभों को कम होने से बचने के लिए इन सभी बाजारों में समान मूल्य —— का निर्धारण नही किया जा सकता है। इस प्रकार एक एकाधिकारी को विभिन्न कीमत मात्रा के संयोजन बनाने पड़ते है जो प्रत्येक बाजारों में इनके लाभ को बढ़ा सकें। इसके लिए वह MC(सीमान्त लागत) तथा MR (सीमान्त आगम) को प्रत्येक बाजार में समान करता है तथा इसके अनुसार ही कीमत का निर्धारण करता है।

उदाहरण के लिए माना किसी एकाधिकारी विक्रेता के केवल दो बाजार A तथा B है। मांग वक्र DA तथा सीमान्त आगम वक्र (MRA)चित्र नं0 (छ) के अनुसार दर्शित है तथा औसत आगम एवं सीमान्त आगम वक्र A बाजार में है जबकि चित्र (च) में D_a तथा D_b का क्षैतिज योग दोनों बाजार A तथा B के लिए मांग वक्र देते है जैसा कि चित्र घ में दर्शित है।

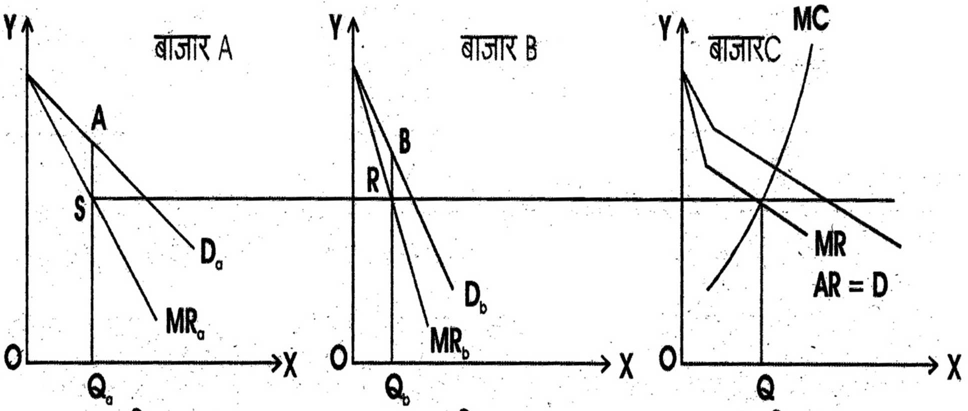

चित्र (घ) चित्र (च) चित्र (छ)

चित्र घः–

प्रति यूनिट समय पर मात्रा की मांग

MR_a तथा MR_b का क्षैतिज योग संकलित सीमान्त आगम (MR)को दर्शाता है। फर्म की सीमान्त लागत को MC के द्वारा दर्शाया गया है जो MR के T बिन्दु पर काटती है । दिये गये MR एवं MC वक्रों के लिए, फर्म के अनुकूलतम उत्पादन का निर्धारण QO पर होता है। उत्पादन के इस स्तर पर MR, MC के समान होता है। एकाधिकारी विक्रेता की समस्या यह होती है कि वह सारी का सारी उत्पादन मात्रा QO को एक ही बाजार में बेंचकर अधिकतम लाभकारी मूल्य का निर्धारण नही कर सकता है इसलिए एकाधिकारी को अपने उत्पादन मात्रा को दोनों बाजारों में इस प्रकार से बॉटना होगा कि लाभ की वृद्धि को स्थिति दोनों ही बाजारों में सन्तुष्ट हो सकें।

अर्थात MC(=TQ) को MR के समान दोनों ही बाजारों में होना पड़ेगा। इसको अर्जित करने के लिए T बिन्दु से X अक्ष के समानान्तर एक रेखा को MR_b एवं MR_a से होते हुए खींचते है। MR_a तथा MR_b पर कटान बिन्दु क्रमशः S एवं R बाजार में अनुकूलतम हिस्सो को निर्धारित करते है।

चित्र के अनुसार एकाधिकारी बाजार A में अपने लाभ को OQ_a यूनिट AQ_a कीमत पर बेच कर तथा बाजार B में OQ_b यूनिट OQ_b पर पर बेचकर लाभ अर्जित करता है तथा OQ_a+OQb=OQ है। तृतीय डिग्री के कीमत निर्धारण को किसी भी दो या दो से अधिक प्रथक बाजारों में जो कि भौगोलिक दूरी के द्वारा या परिवहन बन्धन के द्वारा या परिवहन की लागत के द्वारा या विधिक बन्धन जो कि वस्तुओं के अन्तर्राष्टीय परिवहन के लिए

NMDC-2222

प्रतिबन्धित होते है के द्वारा पृथक होते है की स्थिति में सही रूप में लागू कर सकते है।

7.7 सारांश:

इस प्रकार हमने एक इकाई में यह पढ़ा कि कीमत विभेद को जानने के लिए उपभोक्ता के वर्गीकरण के साथ साथ लोचकार स्थानिक कारक, स्थानिक विभाजित बाजारों में डम्पिंग के फलस्वरूप कीमत में विभेद, परिस्थितियों के आधार उदाहरणार्थ भौगोलिक परिस्थितियों के कारण, वितरण मार्ग की सुगमता या दुर्गमता के कारण आदि, सीमाओं के द्वारा कीमत विभेदन हो सकता है।

5.8 महत्वपूर्ण शब्द:

लोच कारक, कीमत विभेदन, स्थानिक कारण, डम्पिंग।

5.9 स्व परख प्रश्न

प्रश्न—1- कीमत विभेद से आप क्या समझते है?

प्रश्न—2— कीमत विभेद के अन्तर्गत लोच कारक का चित्र द्वारा स्पष्टीकरण दीजिए।

प्रश्न—3— स्थानिक विभाजित बाजारों में डम्पिंग का क्या तात्पर्य है ? चित्र द्वारा स्पष्ट कीजिए।

प्रश्न—4— कीमत विभेद के लिए आवश्यक परिस्थितियों को स्पष्ट करें।

प्रश्न—5— सीमाओं के द्वारा कीमत विभेद कैसे होता है?

प्रश्न—6— द्वितीय डिग्री कीमत विभेदन से आप क्या समझते है? चित्र द्वारा स्पष्ट करें।

प्रश्न—7— **टिप्पणी लिखिए—**

1. स्थानिक कारक
2. कीमत विभेद
3. कीमत विभेद के लिए आवश्यक परिस्थितियॉ
4. सीमाओं द्वारा कीमत विभेद

5.10 अन्य पाठ्य स्त्रोत :–

1. मैनेसीरियल इकॉनोमिक्स– माहेश्वरी
2. टेक्स्ट बुक ऑफ इकॉनोमिक्स– बोएस
3. मैनेसीरियल इकॉनोमिक्स– डीन
4. भारतीय अर्थव्यवस्था विकास एवं आयोजन– ए0के0अग्रवाल

5.11 सन्दर्भ पुस्तकें:–

1. मैनेजीरियल इकॉनोमिक्स–मोते पॉल गुप्ता
2. उच्चतर आर्थिक सिद्धान्त– एच0एल0आहूजा
3. मैनेजीरियल इकॉनोमिक्स– थॉमस मॉरिस

इकाई–6 उत्पाद विभेदन (Product Differentiation)

इकाई संरचना

6.1 उद्देश्य

6.2 प्रस्तावना

6.3 बाजार वृद्वि की उत्पाद द्वारा सम्भावनाएं

6.4 उत्पाद विभेदन रणनीतियॉं

6.4.1 उत्पाद का स्वरूपः एक उत्पाद विभेदन रणनीति

6.4.2 गुणवत्ता एवं कार्यक्षमताः एक उत्पाद विभेदन रणनीति

6.4.3 विशेषीकरण एवं स्टाइलःएक उत्पाद विभेदन रणनीति

6.4.4 उत्पाद डिजाइनःएक उत्पाद विभेदन रणनीति

6.4.5 उत्पादो की रेन्ज एवं विविधताःएक उत्पाद विभेदन रणनीति

6.4.6 सेवा गुणवत्ताःएक उत्पाद विभेदन रणनीति

6.4.7 पैकेजिंगःएक उत्पाद विभेदन रणनीति

6.5 उत्पाद विभेदन रणनीति एवं पोजिशनिंग रणनीति

6.6 सारांश

6.7 बोध प्रश्न

6.8 अन्य चयनित पाठन

6.9 सन्दर्भ पुस्तके

6.1 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के पश्चात छात्रों को

> बाजार में उत्पाद विभेदन के द्वारा विभिन्न उपभोक्ता वर्गो की सन्तुष्टि की जानकारी होगी।

> उत्पाद विभेदन की विभिन्न सम्भावित रणनीतियॉं समझने में मदद मिलेगी।

> उत्पाद विभेदन की आवश्यकता को समझने में समझने में सहायता मिलेगी।

> उत्पाद विभेदन एवं बाजार पोजीशनिंग में महत्व समझने को मिलेगा।

6.2 प्रस्तावना

विगत इकाई में हमने पढ़ा कि कैसे कीमत विभेदन के द्वारा विभिन्न बाजारों में भिन्न भिन्न प्रकार के उपभोक्ताओं को भिन्न भिन्न कीमतों पर उत्पाद एंव सेवाओं की मुहैया करा के कम्पनी लाभ को अर्जित करती है। इसी प्रकार से उत्पाद विभेदन के द्वारा भी हम विभिन्न वर्गो के उपभोक्ताओं को उत्पाद अथवा सेवा के द्वारा उपयोगिता के साथ साथ मानसिक संतुष्टि देते है। भारत वर्ष में जन संख्या को विभिन्न कारकों के आधार पर विभिन्न वर्गो में बॉट सकते है जैसे की आय, लिंग, जीवन शैली, शिक्षा, आयु, भौगिलिक परिस्थिति, कार्य क्षेत्र इत्यादि । यह एक मानव प्रवृत्ति है कि वह अपने अपने वर्गो में स्वंय को दूसरे से कुछ भिन्न बनाये यदि हम विपणन की परिभाषा को दृष्टिगत करें तो विपणन को एक सामाजिक किया कहा गया है। ऐसा इसलिए कहा गया है कि किसी भी विकेता उत्पाद को समाज में उपस्थित वर्ग विशेष की आवश्यकताओं एवं सन्तुष्टि कारकों को ध्यान में रखकर ही उत्पादों एवं सेवाओं का उत्पादन एवं वितरण करना होगा। यदि हम एक उदाहरण के रूप में उत्पाद विभेदन के महत्व को समझना चाहें तो जब 1990 के आस पास मारूति की मारूति 1000 ब्राण्ड को टक्कर देने के लिए डेबू मोटर्स ने सीयलो ब्राण्ड कार बाजार में उतारी थी तो उसकी पोजीशनिंग उस समय में निम्न उच्च आय वर्ग Lower income Group के लिए की गयी थी। कम्पनी इस के बेहतर रूप को उपभोक्ताओं ने महत्व दिया तथा उस समय इसे 5 लाख की कीमत पर बाजार में उतारा गया था। कार की सफलता को देखते हुए कम्पनी ने अधिक लाभांश के लिए कार की कीमत 4 लाख रूपये कर दी ताकि निचले वर्ग के लोग भी इस कार को खरीद पाते। परन्तु कम्पनी की यह रणनीति इसके लिए घातक सिद्ध हुयी क्योंकि यदि उसे निम्न वर्ग के ग्राहकों को सन्तुष्ट करना था तो वह एक नया ब्राण्ड बाजार में उतार सकती थी परन्तु ऐसा न करने से उच्च वर्ग के सम्मान को कही न कहीं यह ठेस लगी कि निम्न वर्ग का व्यक्ति भी उसको प्रयोग करके उनके स्टेटस को घटा रहा है तथा एक यह धारणा भी लोगों के मन में आई कि कम्पनी हमसे एक लाख रूपये ज्यादा वसूल करके धोखा कर रही थी जबकि शायद कम्पनी अपने इस घटी कीमत को अधिक संख्या में बेचकर क्षतिपूर्ति करती और इस उत्पाद विभेदन रणनीति को नजर अन्दाज करने का फल यह हुआ

NMDC-222

कि प्रारम्भिक सफलता मिलने के बाद भी यह ब्राण्ड बाजार से गायब हो गया। निश्चित ही इस ब्राण्ड की असफलता के कुछ अन्य कारण भी होगें परन्तु कीमत कम करने के बाद से ही उत्पाद के विक्रय में आई अचानक गिरावट को उपर्युक्त व्याख्यानुसार समझा जा सकता है। उत्पाद विभेदन की रणनीति मुख्य रूप से अपूर्ण प्रतियोगी बाजार के अन्तर्गत आती है क्योंकि विक्रेता एवं क्रेता दोनों ही अधिसंख्य होते है और ऐसे में प्रतियोगिता का स्तर बहुत बढ़ जाता है तथा उपभोक्ताओं की सन्तुष्टि के लिए उत्पादों में विभेद करके इनको बाजार में सफलता प्रदान कराई जा सकती है।

6.3 बाजार वृद्धि की उत्पाद के द्वारा सम्भावनाएं

बाजार की वृद्धि में उत्पादों का कितना महत्वपूर्ण योगदान हो सकता है इसे हम निम्नांकित चित्र की सहायता से समझने का प्रयास करेंगें।

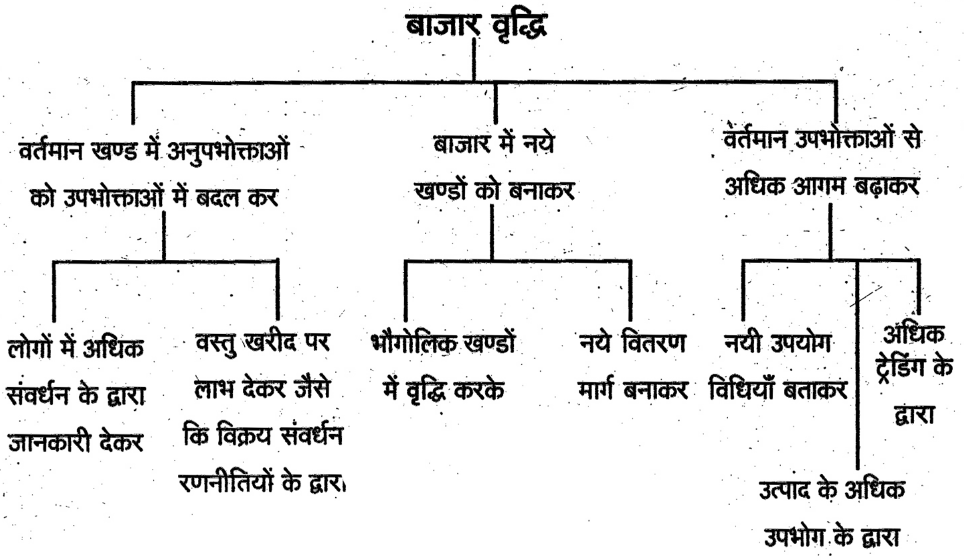

चित्र 1 उत्पाद रणनीतियॉं एवं बाजार वृद्धिः—

उपर्युक्त चित्र के अनुसार जब किसी भी बाजार में उत्पाद के विक्रय आयतन में कमी होती है या विक्रेता बाजार में छिपी हुयी सम्भावनाओं को दृष्टिगत करते हुए अपने लाभांश की बढ़ाना चाहतता है तो उत्पाद विभेदन रणनीतियों के द्वारा वह अपने निर्धारित उद्देश्यों की पूर्ति करने में सक्षम होता है। वैसे भी बाजार की वृद्धि के लिए यह आवश्यक है कि बाजार में उपस्थित उपभोक्ताओं को उनके विभिन्न गुणों एवं प्रकृतिक आधार पर चिन्हित करके खण्डों (Segmants) में बॉटा जाए तथा उनकी आवश्यकताओं एवं इच्छाओं के

अनुरूप एवं सेवाओं को विभेदित किया जाए। चित्रानुसार बाजार की वृद्धि के मुख्य 3 मार्ग है । पहले चरण में कोई भी विक्रेता अपने वर्तमान बाजार खण्ड में उपस्थित गैर उपभोक्ताओं को उपभोक्ताओं में बदलने का प्रयास करता है। जैसे कि मारूति 800 ने जब एस0बी0आइ0 बैंक के साथ मिलकर रूपये 2599/ प्रतिमाह की किश्त पर मारूति 800 को खरीदने का ऑफ़र दिया थां इस का मुख्य उद्देश्य संभावित उपभोक्ताओं को ऐसी सुविधा देना था जिसके अन्तर्गत वे उसी कीमत की कार को ऋण अदायगी की आसान सुविधा के मिलने पर इसका प्रयोग कर सकते थे।

दूसरे प्रकार के नंये खण्डों को पहचानता तथा इनमें अपने उत्पादों को बेचना आता है । उसका एक आसान सा उदाहरण फेयर एण्ड लवली क्रीम के द्वारा फेयर एण्ड हैण्डसम नामक ब्राण्ड को लड़कों के लिए ऑफर करना थां। इसी प्रकार से भौगोलिक परिदृश्य में बहुत सी कम्पनियॉ अब ग्रामीण क्षेत्रों को अपने बाजार का खण्ड बना रही है। तीसरे प्रकट के मार्ग में हम अपने वर्तमान उपभोक्ताओं से ही अपना आगम (Revenue) बढ़ाते है उदाहरणार्थ यदि उत्पाद के नये नये उपयोग हम उपभोक्ता का बताते है तो यह वर्तमान उपभोक्ता से ही अपना आगम बढ़ाने की बात होगी। जैसे कि डिटौल एन्टीसेप्टिक लोशन के विक्रय को बढ़ाने के लिए उसके बहुतिकल्पीय उपयोग को विज्ञापनों के द्वारा दर्शाया गया । जिसमें छोटे बच्चे के कपड़े धोने में, शेंविंग करने के पानी में, चोट की सफाई करने में, नहाने आदि में डिटॉल का प्रयोग उपभोक्ता को समझाया गया।

इस प्रकार उपर्युक्त चित्र में बाजार की वृद्धि के विभिन्न स्रोत था मार्ग दिये गये है जिनको हमने उपर्युक्त व्याख्या में समझने का प्रयास किया।

6.4 उत्पाद विभेदन की रणनीतियॉ : (Steretgies ForProduct Differentiation)

एक कम्पनी जो कि विविधरूपीय (heterogenous) बाजार में विपणन का कार्य करती है वह यह महसूस करती है कि किसी बाजार खण्ड में उपस्थित सभी उपभोक्ताओं को सन्तुष्ट नही किया जा सकता है क्योंकि उपभोक्ता अधिसंख्य होते है साथ ही साथ ये उपभोक्ता इधर उधर फले हुए होते है और इनकी खरीदने की आवश्यकताएं भी भिन्न होती हैं। इस प्रकार के अपूर्ण प्रतियोगी बाजार में कोई भी विक्रेता सभी उपभोक्ताओं की वस्तुएं

अथवा सेवाएं ने बेचकर ऐसे बाजार खण्डों को चिन्हित करता है जिनकी आवश्यकता एवं क्रयशान्ति के अनुरूप उत्पादों को बनाकर बाजार में सफलतापूर्वक बेचा जा सके। जैसे कि आय के आधार पर अमीर वर्ग या उच्च्च आय समूह (High Incomegoup) विक्रेताओ को सबसे ज्यादा आकर्षित करता है। यहॉ पर यह कहना अति आवश्यक होगा कि केवल बाजार खण्ड का आकर्षक होना ही काफी नही वरन उपभोक्ता के पास इस बाजार खण्ड की आवश्यकताओं को पूर्ण करने के लिए उत्पाद निर्माण में उपयुक्त होने वाली तकनीक मानव संसधन, पूंजी निदेश आदि का होना भी आवश्यक होता है। जिस प्रीमियम/बाजार खण्ड की हम बात कर रहे है उसकी विशेषता यह है कि उपभोक्ता प्रायः धनाड्य होते है किसी भी उत्पाद अथवा सेवा के लिए अधिक धन खर्च करने के लिए तैयार रहते है तथा कीमती वस्तुओं के उपयोग के द्वारा ही वे अपने स्टेटस को समाज के अन्य व्यक्तियों की तुलना में उँचा रखना चाहते है। जैसे कि कार्य क्षमता, गुणवत्ता, अच्छी डिजाइन अथवा पूर्ण रूप से एक अच्छे उत्पाद की आकांक्षा करते है जबकि अस्पर्शनीय लाभों जैसे स्टेटस, मूल्य तथा इमेज आदि का अनुभव करते है।

प्रायः आपने देखा होगा कि महगे उत्पादों के प्रचार प्रसार में समाज के उच्च्च वर्ग को दर्शाया जाता है। जैसे कि रीड एण्ड तेलर ब्राण्ड के कपड़ो के विज्ञापन मे प्रारम्भ में जेम्स बाण्ड की भूमिका अदा करने वाले अन्तर्राष्ट्रीय अभिनेता को दिखाया था तथा बाद में भारतीय परिदृश्य में अमिताभ बच्चन को दिखाया गया। कम्पनियॉ अपने उत्पादों के प्रचार में समाज में उच्च्च की व्यक्तियों या कलाकारों को जोड़कर उसकी इमेज को उँचा करके दिखाना चाहते है या फिर कम्पनियॉ इन उत्पादों के उपयोग के वातावरण वर्गो उच्च्चवर्ग के वातावरण से जोड़कर दिखाते है जिससे कि उस वर्ग के व्यक्ति इस प्रकार के उत्पादो को स्वयं की जीवन शैली से जोड़कर देख सके। ग्रासिम की सूटिग के विज्ञापन में एक बडी लम्बी गाडी जिसको 10–12 मोटर साइकिलों पर गार्डस यायलट करते हैं आकर रूकती है तथा इसमें से एक सूट को निकाल कर दिखाया जाता है। इस सूटलेथ की कीमत 79000 रूपया प्रति मोटर था तथा जिस प्रकार का वातावरण सूटिग के विज्ञापन में दिखया गया वह उसके उपभोक्ता को साफ तौर से प्रदर्शित करता है।

उत्पाद विभेदन के लिए सर्वप्रथम लक्ष्य बाजार खण्ड को चिन्हित करना आवश्यक होता है अर्थात एक ऐसी प्रक्रिया जिसके अर्न्तगत एक विशेष उपभोक्ताओ के समूह को चिन्हित करते है जिनकी आवश्यकता उनकी जीवन शैली या अन्य ऐसे कारको के कारण समान होती है तथा वे उस श्रेणी के

उत्पादो को खरीदते है। उदाहरणार्थ निरमा वाशिंग पाउडर निम्न आय वर्ग के लिए एवं सर्फ एक्सेल य एरियल को उच्च के लिए लक्ष्य किया गया है। द्वितीय चरण में हम विभेदीकरण (Differentiation) करते है। अर्थात चिन्हित किये गये वर्ग की आवश्कता एवं स्टेतस के अनुसार उत्पादो के गुणो एवं बनावट के द्वारा उस वर्ग के लिए उत्पादो को न्यायपूर्ण ठहराया जाता है। उदाहरणार्थ रिन साबुन को मध्यम की के लिए दर्शाने हैं कि कविता जी को विज्ञापन मे दिखाया गया था वास्तविक रूप में इस उत्पादो की गुणवत्ता सेवाए तथा अन्य विशेषताऐ लक्ष्य किये गये समूह या खण्ड के अनूसार ही रखते है। और इसका एक अवयव कीमत भी है। तृतीय चरण में इस स्थितिकरण (Positioning) करते है अर्थात इसके अन्तर्गत कम्पनी के द्वारा बनाए जा रहे उत्पाद की सरंचना तथा इमेज इस प्रकार की होनी चाहिए कि इस वर्ग के उत्पाद के उपभोक्ता के मस्तिष्क मे इस उत्पाद की स्थिति सदैव सर्वश्रेष्ठ स्थान पा सके। कम्पनी को यह ध्यान में रखना चहिए कि उसके उत्पाद मे ऐसा कौन सा अन्तर है जो उपभोक्ताओ को आकर्षित करेगा। उदाहरणार्थ जब हीरो हॉण्डा ने स्ट्रीट मोटर साइकिल को बाजार मे उतारा था हो साथ तौर पर उसमे बिना गियर की तकनीक को दर्शायी गयी थी तथा स्ट्रीट का आने का लुक स्कूटर की भॉति तथा पीछे का भाग मोटर साइकिल की भॉति बनाने का उददेश यह था कि महिलाए तथा बुर्जुग दोनो ही उसको मध्यम वर्ग का उत्पादन मान कर अपना सकें।

यदि हम मंहगे एवं सस्ते उत्पादो के माध्यम से उत्पाद विभेदन कि रणनीति को समझने का प्रयास करें तो ये तीन निम्नप्रकार से हो सकते है

पैमाना	उत्पाद विभेद	उत्पादों/बाण्ड के उदाहरण
उत्पाद लक्षण	महंगे उत्पाद	स्कार्पियोकार, वाशिंग मशीन, सोनी प्लाज्मा टीवी
	सस्ते उत्पाद	मारूति ८००, नैनो, वीडियोकॉन वाशिंग मशीन, टीसीरीज टी.वी.
क्रियाशीलता गुणवत्ता	महंगे उत्पाद	जिलेट मैक् ३, डव साबुन, हिमालय शैम्पू
	सस्ते उत्पाद	टोपाज ब्लेड/रेजर, निरमा साबुन, वाटिका शैम्पू
विशिष्टीकरण एवं स्टाइल	महंगे उत्पाद	टाइटन घड़ी, जोडियाक/वान ह्यूसन शर्ट्स,
	सस्ते उत्पाद	मैक्सिमा घड़ी, चार्ली आउटलॉ शर्टस
उत्पाद डिजाइन	महंगे उत्पाद	मार्क लार्ड वेयर, रीबॉक जूते
	सस्ते उत्पाद	लोकल हार्ड वेयर, लखानी जूते
सेवा गुणवत्ता	महंगे उत्पाद	ICICI/HDFC/AXIS बैंक
	सस्ते उत्पाद	सहकारी/ग्रामीण बैंक

चित्र नं02 उत्पाद विभेदन रणनीति का उदाहरण :–

इसके अतिरिक्त अन्य लक्षणो को भी उत्पादन विभेदन को समझा जा सकता है आइये अब उत्पादन विभेदन की रणनीतियो को विस्तृत रूप से समझने का प्रयास करे।

6.4.1 उत्पाद स्वरूपः– एक उत्पाद विभेदन रणनीतिः–

उत्पाद का स्वरूप उसके लक्षणो को परिलक्षित करता है जोकि उत्पाद के आधरभूत कार्यक्षमताओं को प्रभावित करता है। बाजार की प्रकृति को दृष्टिगत रखते हुए उत्पादक को अपने लक्ष्य किये हुऐ खण्ड या उपभोक्ता वर्ग के लक्षणो के अनुसार उत्पाद को स्वरूप एवं लक्षणो का निर्णय लेना चाहिऐ। जैसे कि उच्चवर्ग के उपभोक्ताओं को उत्पाद में अधिक लक्षणों अथवा गुणों की आवश्यकता होती हैं उदाहरण के रूप में मारूति कार के Sx4 मे जो गुण एवं लक्षण है वे उच्च वर्ग की आवश्यकताओं को सन्तुष्ट करते है इसी प्रकार IFB की वाशिंग मशीन में पूर्ण स्वचलित के जो गुण है वे उच्च वर्ग को पंसद है। इसी प्रकार सोनी के प्लाज्मा टीवी में सुन्दर एवं आकर्षक डिजाइन के ही दीवार पर लगने की सुविधा, अच्छे रंग, गेम खेलने की सुविधा के अतिरिक्त अन्य अनेक ऐसी सुविधाएं है जो उच्च वर्ग के द्वारा पंसद की होती है। विक्रेता इस प्रकार उपभोक्ता की इच्छाओं के अनुसार उत्पादों में विशेष गुण एवं लक्षणों को डालकर उनसे अधिक कीमत वसूल करके अपने लाभांश को बढ़ा सकते है।

6.4.2 गुणवत्ता एवं कार्य क्षमताः एक उत्पाद विभेदन रणनीतिः

किसी उत्पाद की आधारभूत गुणवत्ता एवं कार्यक्षमता से तात्पर्य उसके प्राथमिक उपयोगिता हेतुकार्य क्षमता से होता है । उदाहरणार्थ कोई भी उपभोक्ता साबुन का प्रयोग अपने शरीर की स्वच्छता के लिए करता है अतः अन्य गुणों के साथ इसमें इसके प्राथमिक गुण का होना आवश्यकता है। परन्तु इसके अतिरिक्त साबुन में एण्टीबैक्टीरियल गुण को होना, आयुर्वेदिक गुणों का समावेश होना, अच्छी अच्छी खुशबू होना आदि उत्पाद को उच्चवर्ग की उपयोगिता के अनुसार डाले जाते है। यदि साबुन शरीर के मैल को साफ करने के अतिरिक्त त्वचा का भी उपचार करता है तो यह उच्चवर्ग के उपभोक्ताओं की आवश्यकता हो सकती है अन्यथा निम्न वर्ग के उपभोक्ताओं

NMDC-222

की दृष्टि में साबुन का प्रयोग केवल शरीर के साफ रखने के लिए होता है। इसी कारण निम्न आय वर्ग के उपभोक्ताओं में ब्राण्ड भक्ति (Brand loyalty) कम होती है और इसका मुख्य कारण यह है कि वे साबुन में केवल प्राथमिक उपयोगिता को ही ध्यान में रखकर खरीदते है जो किसी भी साबुन से मिल जाता है। इसी प्रकार यदि हम मंदिरा के ब्राण्ड का उदाहरण दें तो उच्चवर्ग अच्छी गुणवत्ता के मंहगे ब्राण्ड को प्रयोग करते है जैसे कि टीचर्स, 100 पाइपट्स, सिग्नेचर्स, जौनीवाकर ब्लैक इत्यादि। इन मदिरब्राण्ड में गुणवत्ता अधिक होती है, महक कम से कम होती है तथा बनाने की विधि अत्यन्त गुणवत्ता परक होती है और इसी कारण धनाड्य वर्ग इन उत्पादों को प्रयोग करते है। मंहगे उत्पाद को खरीदना पंसद करते है तो उन उत्पादों मे वे उसी प्रकार की गुणवत्ता एवं कार्यक्षमता भी देखना पंसद करते है।

यदि धनाड्य वर्ग मर्सडीज बेन्ज कार का प्रयोग करते है। तो स्टेट्स सिंबल के अतिरिक्त इस कार इन्जन शक्ति सुरक्षा प्रबन्ध, आन्तरिक साज सज्जा, एअर कण्डीशनिंग एवं वाहय बॉडी डिजायन इत्यादि भी उसी के अनुरूप होती है।

6.4.3. विशिष्टीकरण एवं स्टाइलः एक उत्पाद विभेदन रणनीतिः

जब से फैशन के युग में आधुनिकता का तथा वैश्विक सभ्यताओं का समावेश हुआ है तब से माध्यम वर्ग से लेकर उच्चवर्ग तक के उपभोक्ताओं में स्टाइल की मांग काफी बढ़ गयी है और यह प्रायः दोपहिया एवं चार पहिया वाहनों मे, कपड़ो में, घड़ियों में, चश्मों आदि उत्पादों में अधिक देखने को मिलता है। विक्रेता कम्पनियॉ केवल स्टाइल एवं विशिष्टीकरण के लिए ही उत्पादों की अधिक कीमत वसूलते है और आज का उपभोक्ता इसे देने को तत्पर है। उत्पाद को इस कारक का फायदा यह है कि वे अपने उत्पादों को दूसरे उत्पादों से भिन्न भी दर्शा पाते है। यदि आपने आमिर खान को विभिन्न स्टाइल की टाइटन घड़ियों का प्रचार विज्ञापन में करते हुए देखा तो या शाहरूख खान को बेलमॉण्ट सूट्स के विज्ञापन में देखा है। यह रितिक रोशन को जॉन प्लेयर नामक कपड़ों के ब्राण्ड का प्रचार करते विज्ञापनों में देखा हो तो ये सभी उत्पाद स्टाइल के नाम पर महगे उत्पादों की श्रेणी में आंते है। तानिष्क, जि टी, डी–अमास आदि हीरे एवं स्वर्ण आभूषण की कम्पनियॉ

विशिष्टीकरण एवं स्टाइल को ध्यान में रखकर ही उत्पादों की बनाती है। इसी प्रकार उच्च एवं धनाड्य वर्ग के लिए वान हयूसन, लुई फिलिप, जोडियाक आदि ब्राण्ड की शर्ट एवं टाई बाजार में स्टाइल एवं विशिष्टीकरण के उद्देश्य की पूर्ति के लिए है। इन सभी शर्ट एवं टाई की कीमतें प्रीमियम रेन्ज में है तथा रूपया तीन हजार से आगे की रेन्ज की कीमत होने के कारण इनकी स्वीकृति केवल धनाड्य एवं उच्च वर्ग के लिए ही है।

6.4.4 डिजायनः एक उत्पाद विभेदन रणनीतिः

जैसे जैसे बाजार में प्रतियोगिता बढ़ती जाती है वैसे वैसे उत्पादों के भिन्न होने पर ही उसकी स्वीकृति की संभावनाएं बढ़ जाती है। वास्तविकता तो यह है कि जब बाजार में उपस्थित सभी उत्पाद प्राथमिक उपयोगिताओं की पूर्ति करते नजर आते है तो ऐसे में जो उत्पाद अतिरिक्त उपयोगिताओं एवं अधिक आकर्षक डिजायनों में मिलते है उन्हीं की ओर उपभोक्ता आकर्षित होते है जैसे कि मोटर साइकिलों में प्रतियोगिता काफी अधिक है तथा यमाहा कम्पनी जोकि, विगत लगभग डेढ़ दशक से पिछड़ गयी थी उसकी बाजार में पुनः एक जगह, अच्छी एवं आकर्षण डिजायन वाली मोटर साइकिलों FZ एवं R15 के द्वारा बनती प्रतीत हुयी है। इसी प्रकार डिजायन को महत्व देते है हीरो होण्डा की करिज्मा, होण्डा की स्टनर, रॉयल एनफील्ड की मै किस्मों आदि मोटर साइकिले बाजार में प्रतिस्पधी दे रही है। इसी प्रकार कार बाजार में भी हुण्डई की आई टेन, आई टवेपटी, मारूती की स्विफ्ट एवं ए स्टार आदि ब्राण्डों में भी उत्पाद रणनीति के तहत डिजाइन को महत्व दिया है। एअर कण्डीशन उत्पादों में चित्रो। सीनरी। का उपयोग भी उत्पादों में डिजाइनों की महत्व को दर्शाता है। इसके लिए निश्चित ही उत्पादों की लागत में वृद्धि होती है। जो कि उच्च एवं धनाड्य वर्गो को प्रभावित करती है। वी0आई0पी0 कम्पनी की स्ट्ाली एवं अन्य बैग भी आकर्षक डिजायनों में मिलते है जो कि उच्च वर्ग के विशिष्टीकरण को परिभाषित करते नजर आते है तथा इसी कारण उच्च वर्ग में ही अधिक प्रचिलित होते है जब कि मध्यम वर्ग के लिए साधारण डिजाइनों में भी बैग एवं स्ट्ाली बैग उपलब्ध है। इसी प्रकार टाइटन ने वर एवं वधू के लिए विवाहोत्सव पर आकर्षक डिजाइनों में घड़ियाँ निर्मित की है जो कि इस

विशेष प्रकार अवरसर पर अधिक लोकप्रिय है तथा प्रचिलित भी है। इसी प्रकार ड्यूरिन फर्नीचर ने भी डिजाइन एवं विशिष्टीकरण को ही अपने उत्पाद विभेद की रणनीति बनाया है तथा इसका प्रचलन भी उच्च मध्यम आय वर्ग से लेकर उच्च वर्ग तक सीमित है।

6.4.5 उत्पादों की विस्तृतता एवं विविधताः एक उत्पाद विभेदन रणनीति

प्रायः आय जब बाजार में जाते है तो एक उपभोक्ता के रूप में आप यही चाहते है कि किसी भी उत्पाद के विविध मॉडल आपको मिले जिससे कि आप अपनी इच्छानुसार उत्पाद को खरीद पाएं। यदि किसी कम्पनी के उत्पादों में अधिक विविधता नही होती है जो जल्दी ही उपभोक्ता ऊब जाता है तथा नये उत्पाद की खोज में लग जाता हैं । परन्तु यह भी सत्य है कि किसी उत्पाद के विविध मॉडलो में उत्पादन लागत भी बढ़ जाती है तथा इस उत्पादन लागत को कवर करने के लिए विकेता को इन उत्पादों पर अधिक कीमत निर्धारित करनी पड़ती है। अर्थात इस प्रकार की विविधता वाले उत्पाद भी प्रायः उच्च में ही प्रचलित होते है। जैसे लेक्मे, रेवलॉन आदि इस प्रकार के ब्राण्ड है जिनमें लिपिस्टक के अधिकाधिक सेड मिलते है तथा यह अन्य ब्राण्डों की तुलना में मंहगे भी होते है। इसी प्रकार बुडलैण्ड शूज, रीवॉक शूज आदि ऐसे ब्राण्ड है जिनमें विविधता होती है तथा उपभोक्ता इन विधि मॉडलो के प्रयोग के द्वारा अपनी इच्छाओं की सन्तुष्टि करता है तथा एक बार उत्पाद से मन भर जाने पर वह दूसरी कम्पनी के उत्पाद को चुनने के बजाय उसी कम्पनी के उत्पादों में अपनी सन्तुष्टि को पूर्ण करता है।

इसी प्रकार कॉश एण्ड लॉम्ब नामक कम्पनी के द्वारा रेबैन ब्राण्ड के धूप के चश्में विधि डिजायनों एवं माडलो में उपलब्ध है तथा यह प्रीमियम रेन्ज में आते है और उच्च वर्ग के उपभोक्ताओं के लिए बने है इसमें गोल्ड प्लेटेड फ्रेम के भी चश्में आते है जो कि उच्च वर्ग के उपभोक्ता के लिए बने है। इसमें गोल्ड प्लेटेड फ्रेम के भी चश्में आते है जो कि उच्च वर्ग के उपभोक्ताओं को आकर्षित करते है। इसी कम्पनी के द्वारा कुछ मध्यम रेन्ज के चश्में मध्यम वर्ग के लिए भी है।

NMDC-222

6.4.6 सेवा गुणवत्ता: एक उत्पाद विभेदन रणनीति :—

आपके युग में जहाँ एक ओर उपभोक्ता की कय शक्ति बड़ी है तो इसका कारण निजी कम्पनियों के द्वारा अच्छे वेतन का मिलना है तथा यह भी कि महिलाओं की भी भागेदारी नौकरियों मे बढ़ती जा रही है जिससे कि व्यक्ति के पास समय का अभाव है। इस प्रकार के वातावरण में जो भी कम्पनियॉ अपने उपभोक्ताओं को अधिक से अधिक सेवाए, उत्पादक साथ में देगी उन्ही को बाजार में अधिक प्राथमिकता मिलती है। उदाहरणार्थ आज व्यक्ति सेवाओं को दृष्टिगत करते हुए ही एक निजी कम्पनी जहाँ कि आई सी सी आई या एच0डी0एफ0सी0 बैंक में खाता खुलवाता है तथा अपना अधिक से अधिक लेनदेन करता है। इसी प्रकार आज बिल के जमा करने के झंझट से बेचने के लिए उपभोक्ता वोडाफोन, एअरसेल, रिलायन्स आदि कम्पनियॉ के फोन की सेवाओं का प्रयोग करते है क्योंकि इन कम्पनियॉ के द्वारा उपभोक्ताओं को अधिकाधिक सेवांए मिलती है। इसी प्रकार मंहगा होने के बावजूद भी लोग निजी अस्पतालों में मरीज को भरती कराते है क्योकि वहॉ आधुनिकतम मशीनों एवं उपकरणो के द्वारा तथा ट्रेन्ड स्टाफ के द्वारा मरीज की अधिक से अधिक देखभाल की जाती है हॉ थोड़ा धन अवश्य ही अधिक खर्च करना पड़ता है। सेवाओं का दूसरा पहलू यह की है कि मारूति कम्पनी अपनी विस्तृत सेवा के लिए उपभोक्ताओं में लोकप्रिय है। प्रायः यह देखा गया है कि उत्तर प्रदेश में यदि किसी व्यक्ति के पास किसी सी ग्रेड शहर में सेवरोलेट्स की गाड़ी है या फोर्ड की गाड़ी है तो उसे गाड़ी की सर्विस के लिए किसी A या B ग्रेड के शहर में आना होगा क्योंकि इन अन्तर्राष्टीय कम्पनियॉ का सेवा नेटवर्क अभी इतना विस्तृत नही हुआ है अर्थात ड्यूरेबल उत्पादों में सेवा का एक विशेष स्थान है तथा विकेता इसको एवं रणनीति इसको एक रणनीति के रूप में प्रयोग करता है।

6.4.7 पैकेजिंग : एक उत्पाद विभेदन रणनीति

यदि हम पैकेनिंग की बात करें तो यह न केवल उत्पाद को सुरक्षा प्रदान करती है अपितु उत्पाद के बारे में महत्वपूर्ण सूचनाएं भी देती है परन्तु यहॉ पैकेजिंग की हम एक विपणन रणनीति के सन्दर्भ में ही चर्चा करेगें । यदि दो दशक पूर्ण विस्कुट की पैकेजिंग वैक्स पेपर होती थी तथा यदि

बरसात के मौसम में बिस्कुट सीले हुए थे तो आप उसको आसानी से स्वीकार लेते थे। यहाँ तक नमकीनों का एवं चिप्स का सवाल था तो मे प्रायः खुले रूप में मिलते थे तथा पैकेजिंग थी भी तो वह साधारण तथा गर्म करके पोलीथिन को बन्द करने वाली या स्टैपिल की हुयी होती थी। परन्तु आज के युग में पैकेजिंग के आयाम नहीं बुलन्दियों को छूते प्रतीत होते है। खाद्य पदार्थो में हल्दीराम ने अभूतपूर्ण आयाम हासिल किये थे। ये उसकी एक पैकेपिंग रणनीति ही थी जो दिल्ली के चॉदनी चौक से आज हल्दीराम एक अन्तर्राष्ट्रीय उत्पाद बन गया। इसी के साथ साथ बिस्कुट एवं अन्य खाद्य पदार्थो को उपभोक्ताओं आज पैकेजिंग का ध्यान में रखकर खरीदना पसंद करता है। पदार्थ या वस्तु पैकेजिंग के अन्दर कितनी सुरक्षित है यह एक आवश्यक उत्पाद विभेदन रणनीति का तत्व होता है इसी प्रकार टीचरस, 100 पाइपर्स आदि मदिरा के ब्राण्ड भी एक हाई केस में बन्द आते है ज़ो केवल उत्पाद के अच्छी गुणवत्ता एंव स्टाइल का प्रतीक है अपितु उपभोक्ता इसमें आसानी भी महसूस करता है। इसी प्रकार से स्थानीय स्तर पर साड़ी एवं सूट विक्रेता या आभूषणों के विक्रेता खरीद के साथ साथ एक आकर्षिक बैंग देते है जो कि पैकेजिंग के द्वारा संवर्धन करने में सहायक होता है तथा उपभोक्ता को यह लगता है कि उसे कुछ अतिरिक्त भी मिल रहा है।

6.5 उत्पाद विभदेन रणनीति एवं पोजीशनिंग

यदि हम उत्पाद विभदेन सें अलग हटकर उत्पाद की पोजीशनिंग के बारे में चर्चा करे तो पोजीशनिंग का तात्पर्य कम्पनी के उत्पाद एवं ब्राण्ड को उपभोक्ता के मस्तिष्क में उसकी उत्पाद सम्बन्धी मेमोरी फाइल में उच्चतम स्थान दिलाने से है। अर्थात यदि उपभोक्ता के मस्तिष्क में किसी कम्पनी के उत्पाद या ब्राण्ड की सर्वेच्च स्थिति है तो खरीदने से पहले वह सबसे पहले उसी ब्राण्ड को ध्यान में रखेगा तथा उसी को खरीदने का यथा सम्भव प्रयास करेगा। उत्पाद विभेदन की भी उत्पाद की पोजीशनिंग करने में एक महत्वपूर्ण भूमिका होती है। आइये निम्नांकित चित्र की सहायता से हम बाजार में उपभोक्ता व्यवहार के रूप देने वाला कुछ मूल्यवरक को समझने का प्रयास करें ।

NMDC-222

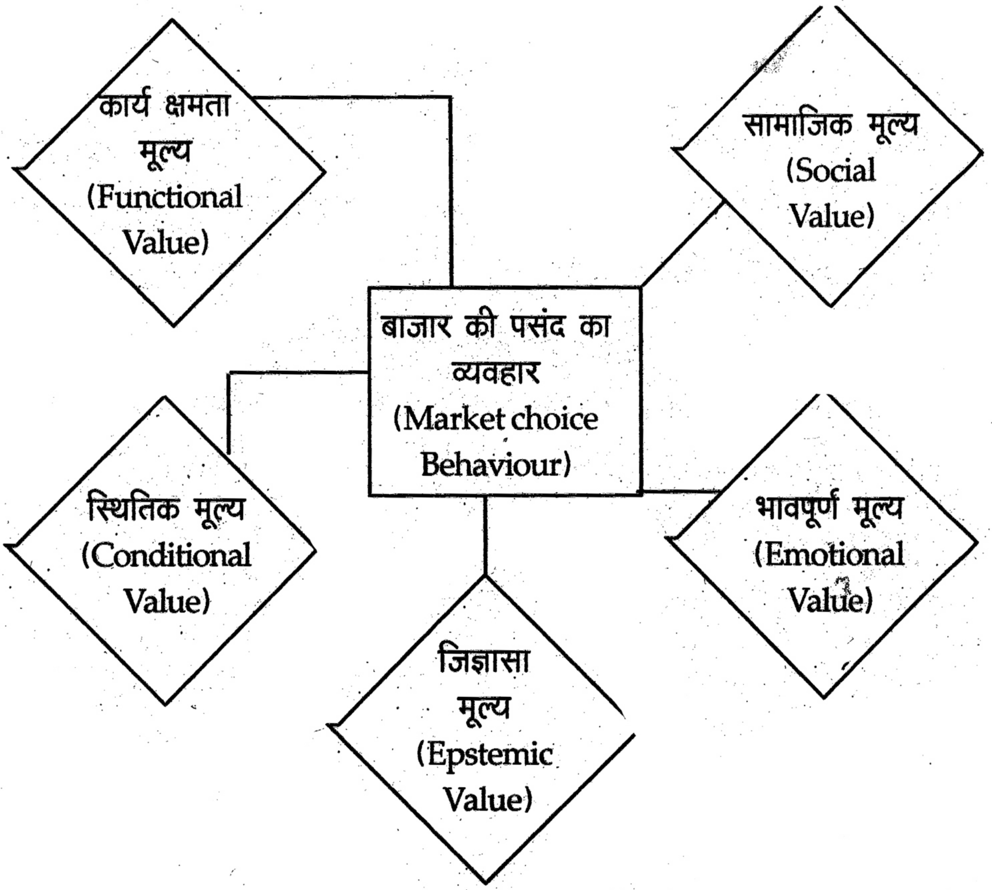

यदि हम उपर्युक्त चित्र में दिये गये कारकों की व्याख्या करें तो कार्यक्षमता मूल्य का प्रयोग हम उत्पादों, को सदैव ही, बाजार की स्थिति एवं प्रतियोगियों के नवीनीकरण से सामन्जस्य स्थापित करते हेतु, आधुनिक बनाने के लिए करते है।

सामाजिक मूल्यों का प्रयोग उत्पादों के विभेदन एवं पोजीशनिंग में उपभोक्ताओं के साथ दीर्घकालिक सम्बन्धों को बनाने तथा समाज की इच्छाओं के अनुसार उत्पादों को भविष्य के अनुरूप बनाने में करते है। जैसे मोबाइल पर बात करने वाले को देखने की तकनीकि सामाजिक इच्छाओं को ध्यान में रखकर करने वाली ही एक रणनीति है। इसी प्रकार भावनात्मक मूल्यों का प्रयोग उपभोक्ताओं को एक मानव के रूप में समझकर उत्पाद विभेदन एवं पोजीशपिंग के लिए करते है उदाहरणार्थ हालमार्क या आर्चीस कार्ड इसी का उदाहरण है जिज्ञासाओं को भी हम उत्पाद विभेदन एवं पोजीशनिंग में प्रयोग करते है तथा अनिश्चिम के माहौल में कोई भी उपभोक्ता अपनी जिज्ञासाओं को शांत करना चाहता है। विभिन्न बीमा उत्पाद तथा अन्य निवेश उत्पाद इसके उदाहरण है।

इसी प्रकार परिस्थितियों के अनुसार भी हम अपने उत्पादों/ बाण्डों की पोजीशनिंग कर सकते है।

इस प्रकार हम देखते है कि बाजार में उपस्थित प्रतियोगी वातावरण एवं उपभोक्ताओं के व्यवहार को दृष्टिगत करते हुए हम अपने उत्पादों की बाजार में स्वीकृति एवं विक्रय वृद्धि के लिए उत्पाद विभेदन का प्रयोग करते है।

6.6 सारांश

इस प्रकार इस इकाई को पढ़ने के बाद हम यह कर सकते है कि उत्पाद विभेदन रणनीति के अन्तर्गत हमें कई सारे अवयव जैसे कि बाजार की वृद्धि एवं विकास, तकनीकि का प्रभाव, समाजिक प्रचलन, सामाजिक मूल्य, मानवीय संवेदनाएं, पैकेपिंग, सेवां क्षेत्र का विस्तारीकरण, इत्यादि असंख्य कारक है। जो हमें उत्पाद विभेदीकरण में सहायता प्रदान करते है।

6.7 स्व परख प्रश्न

प्रश्न–1– उत्पाद विभेदन से आप क्या समझते है? बाजार वृद्धि की स्थिति की उत्पाद की क्या--क्या सम्भावनाएं होती है।

प्रश्न–2– उत्पाद विभेदन की रणनीतियॉ को विस्तार से स्पष्ट करें।

प्रश्न–3– उत्पाद के स्वरूप को एक उपयुक्त उत्पाद विभेदन रणनीति कैसे बनायेंगी?

प्रश्न–4– उत्पाद गुणवत्ता एवं उत्पाद कार्यक्षमता में क्या अन्तर है?

प्रश्न–5– उत्पाद विभेदन रणनीति में पैकेजिंग का क्या महत्व है?

प्रश्न–6– उत्पाद विभेदन रणनीति एवं पोजिशनिंग रणनीति में क्या सम्बन्ध है?

प्रश्न–7– निम्नलिखित पर टिप्पणी लिखें–

1. उत्पाद विशेषींकरण
2. उत्पाद स्टाइल
3. उत्पाद डिजाइन
4. सेवा गुणवत्ता
5. उत्पाद कार्य क्षमता

प्रश्नः— उपभोक्ता के व्यवहार के रूप देने वाले मूल्यपूरक कारक कौन कौन से है।

6.8 अन्य चयनित पाठन

1. मैनेजीरियल इकॉनोमिक्स— माहेश्वरी
2. टेक्स्ट बुक ऑफ इकॉनोमिक्स— बो एस
3. मैनेजीरियल इकॉनोमिक्स— डीन
4. भारतीय अर्थवस्था विकास एवं आयोजन— ए0के0 अग्रवाल

6.9 सन्दर्भ पुस्तकें

1. मैनेजीरियल इकॉनोमिक्स— मोते, पॉल एण्ड गुप्ता
2. उच्चतर आर्थिक सिद्धान्त— एच0एल0 आहूजा
3. मैनेजीरियल इकॉनोमिक्स— थोमस मौरिस

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय

M.Com-106

प्रबन्धीकय अर्थशास्त्र

MANEGERIAL ECONOMICS

खण्ड–4

इकाई – 13 7

उत्पादन अवधारणा (Production of Concept)

इकाई – 14 39

उत्पत्ति के पैमाने की बचतें तथा अबचतें (Economics and Disecomies of Scale Theory)

इकाई – 15 67

आगम विश्लेषण (Revenue Analysis)

इकाई – 16 119

पूँजी बजटिंग और अभ्यास (Capital Budgeting and Practices)

NMDC-222

Curriculum Design Committee

Prof Omji Gupta **Coordinator**
Director,
School of Management Studies, UPRTOU, Allahabad
Dr Gyan Prakash Yadav
Asst Professor **Member**
School of Management Studies, UPRTOU, Allahabad
Dr Devesh Ranjan Tripathi
Asst Professor **Member**
School of Management Studies, UPRTOU, Allahabad
Dr. Gaurav Sankalp **Member**
School of Management Studies, UPRTOU, Prayagraj
Dr Amrendra Kumar Yadav
School of Management Studies, UPRTOU, Allahabad **Member**

Course Preparation Committee

Dr. Shiv Bhusan Gupta **Author**
Asso. Professor and Head,
Department of Commerce;
M.M. PG College,
Kalakar Pratapgarh U.P.
Prof. Omji Gupta **Editor**
Professor, School of Management Studies
UPRTOU, Prayagraj
Dr. Gaurav Sankalp **Coordinator**
School of Management Studies, UPRTOU, Prayagraj

©UPRTOU, Prayagraj - 2021

ISBN :

©All Rights are reserved. No part of this work may be reproduced in any form, by mimeograph or any other means, without permission in writing from the **Uttar Pradesh Rajarshi Tondon Open University, Prayagraj.**

NMDC-222

UNIT–13 PRODUCTION CONCEPT (उत्पादन अवधारणा)

इकाई की संरचना :–

13.0. उद्देश्य

13.1. प्रस्तावना

13.2. उत्पादन फलन की विशेषतायें

13.3. अल्पकालीन एवं दीर्घकालीन उत्पादन फलन अथवा परिवर्तनशील अनुपातों का नियम

13.4. अल्पकालीन उत्पादन फलन

13.5. नियम की व्याख्या

13.6. किस अवस्था में उत्पादन कार्य लाभप्रद है ?

13.7. परिवर्तनशील अनुपात अथवा उत्पत्ति ह्रास नियम के लागू होने के कारण

13.8. परिवर्तनशील अनुपात के नियम की व्यावहारिकता

13.9. परिवर्तनशील अनुपात के नियम का महत्व

13.10. परिवर्तनशील अनुपात नियम तथा लागतें

13.11. उत्पत्ति ह्रास नियम का क्षेत्र

13.12. उत्पत्ति समता नियम

13.13. उत्पत्ति वृद्धि नियम

13.14. निष्कर्ष

13.15. सन्दर्भ ग्रन्थ

13.16. सम्बन्धित प्रश्न

13.1 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप इस योग्य हो सकेंगे कि—

- उत्पादन फलन की अवधारणा एवं विशेषताओं का वर्णन कर सकें;
- अल्पकालीन एवं दीर्घकालीन उत्पादन फलन का विश्लेषण कर सके;

NMDC-222

➢ उत्पादन फलन की अवस्थाओं की पहचान कर सकें; और

➢ परिवर्तनशील अनुपातों के नियम की व्यवहारिकता का वर्णन कर सकें।

13.1. प्रस्तावना

उत्पादन के सिद्धान्त का प्रथम स्तम्भ उत्पादन फलन है। प्रो. फर्गुसन के अनुसार, ''उत्पादन के सिद्धान्त का अर्थ है एक उत्पादक निश्चित उत्पादन तकनीकि के आधार पर उत्पादन की एक निश्चित मात्रा प्राप्त करने के लिए विभिन्न उत्पत्ति उपादानों का (Inputs) का किस प्रकार कुशलतापूर्वक संयोग करता है। उत्पादन विभिन्न उत्पत्ति के साधनों के सामूहिक प्रयत्नों का फल है। उत्पत्ति के चार आधारभूत साधन — भूमि, श्रम, पूंजी एवं साहस परस्पर विभिन्न अनुपात में एकत्रित एवं कार्यशील होकर एक निश्चित उत्पादन देते हैं। प्रो. लेफ्टविच के शब्दों में, ''उत्पादन फलन का अभिप्राय फर्म के उत्पत्ति के साधनों और प्रति समय इकाई वस्तुओं और सेवाओं के बीच का भौतिक सम्बन्ध है जबकि मूल्यों को छोड़ दिया जाय।''

उत्पादन फलन एक दिये गये समय के लिए उत्पत्ति के साधनों एवं उनके द्वारा उत्पादित उत्पादन की मात्रा के भौतिक सम्बन्ध को बताता है। गणितीय रूप में

$$X = f(A, B, C, D)$$

यहाँ X = उत्पादन फलन तथा

A, B, C, D = विभिन्न उत्पत्ति के साधानों को प्रदर्शित कर रहे हैं।

इस प्रकार उत्पादन फलन एक आर्थिक नहीं वरन तकनीकी समस्या है। किसी फर्म का उत्पादन फलन उत्पादन तकनीकि पर आधारित होता है। एक फर्म उस उत्पादन तकनीकि का चुनाव करेगी जिसकी सहायता से वह अपने पास उपलब्ध उत्पत्ति के साधनों का अनुकूलतम विदोहन (Optimum utilization) करते हुए अपने उत्पादन को अधिकतम कर सके। उत्पादन तकनीि का सुधार निश्चित रूप से उत्पादन में वृद्धि करेगा। इस प्रकार दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि उत्पादन फलन एक ऐसी सारणी पर आधारित है जो दी गयी उत्पादन तकनीकि के अन्तर्गत उत्पत्ति साधनों को एक निश्चित संयोग द्वारा प्रयोग करके प्राप्त होने वाले अधिकतम उत्पादन को प्रदर्शित करती है। उत्पादन फलन में यदि स्थिर तथा दी गयी तकनीकि को सम्मिलित कर लिया जाय, तब

$$X = f(A, B, C, D, T)$$

जहाँ, T = उपलब्ध तकनीकि का सूचक है।

उपर्युक्त विश्लेषण के आधार पर उत्पादन फलन में निहित मान्यताओं को निम्नवत क्रमबद्ध किया जा सकता है—

(1) किसी दिये गये समय में उत्पादन तकनीकि अर्थात तकनीकी ज्ञान का स्तर स्थिर है तथा दिये गये इस समय के अन्तर्गत प्राप्त तकनीकि में कोई परिवर्तन नहीं होता।

(2) एक फर्म दिये गये लागत व्यय (cost outlay) के अन्तर्गत समय विशेष में उस उत्पादन तकनीकि का चुनाव करना चाहेगी जो कि दी गयी परिस्थितियों में अधिकतम कुशल तकनीकि हो।

(3) उत्पादन एक निश्चित समयावधि से सम्बद्ध होता है।

(4) उत्पादन फलन यह मान्यता स्वीकार करता है कि उत्पादन के साधनों की कीमतों में कोई परिवर्तन नहीं होता।

13.2. उत्पादन फलन की विशेषतायें (CHARACTERISTICS OF PRODUCTION FUNCTION)

उत्पादन फलन की प्रमुख विशेषतायें निम्नलिखित हैं —

(1) उत्पादन फलन उत्पत्ति साधनों की मात्रा एवं उनके द्वारा उत्पादित वस्तु मात्रा के भौतिक सम्बन्धों को दर्शाता है अर्थात् साधनों तथा उत्पादन में सम्बन्ध (Input output relation) को अर्थशास्त्र में उत्पादन फलन (Production function) कहते हैं। Output = f (Factors of Production).

(2) उत्पादन फलन का सम्बन्ध उत्पत्ति साधनों की कीमतों एवं उत्पादित वस्तुओं की कीमतों से नहीं होता अर्थात् उत्पादन फलन का सम्बन्ध उत्पत्ति साधनों की कीमतों एवं उत्पादित वस्तु कीमतों से स्वतंत्र होता है।

(3) उत्पादन फलन का सम्बन्ध समय अवधि से है अर्थात् उत्पादन समयावधि के अनुसार उत्पादन फलन का स्वरूप बदलता रहता है। समयावधि के अनुसार उत्पत्ति साधनों की पूर्ति बदलती रहती है जिसके कारण उत्पादन फलन के स्वरूप में परिवर्तन आ जाता है। अल्पकाल में उत्पत्ति के अधिकांश साधन स्थिर होते हैं जबकि दीर्घकाल में उत्पत्ति के सभी साधन परिवर्तनशील होते हैं। समयावधि के अनुसार उत्पत्ति साधनों की स्थिरता एवं परिवर्तनशीलता उत्पादन फलन को बदल देती है।

(4) उत्पादन फलन के स्वरूप पर तकनीकी स्तर का सबल प्रभाव पड़ता है। किन्तु प्रत्येक उत्पादन फलन में सम्मिलित तकनीकी स्तर को स्थिर मान लिया जाता है।

(5) उत्पादन फलन के उत्पत्ति साधनों में स्थानपन्नता का गुण विद्यमान रहता है अर्थात् एक ही उत्पादन फलन के लिए एक साधन के स्थान पर दूसरे साधन का कम अथवा अधिक मात्रा में प्रयोग किया जा सकता है अर्थात् एक ही उत्पादन मात्रा प्राप्त करने के लिए परिवर्तनशील साधनों के कई संयोगों का प्रयोग किया जा सकता है।

13.3. अल्पकालीन एवं दीर्घकालीन उत्पादन फलन (SHORT RUN & LONG RUN PRODUCTION FUNCTION)

आर्थिक सिद्धान्त में हम दो प्रकार के उत्पादन फलनों का विशेष अध्ययन करते हैं। प्रथम हम ऐसे उत्पादन फलन का अध्ययन करेंगे जिसमें कुछ साधनों की मात्रायें स्थिर रहने पर अन्य एक या एक से अधिक साधनों की मात्रा में वृद्धि होती है। साधनों व उनसे प्राप्त उत्पादन में इस प्रकार का सम्बन्ध परिवर्तनशील अनुपातों के नियम (Law of Variable Proportions) का विषय है दूसरे हम सभी साधनों की मात्राओं में वृद्धि से हुए उत्पादन में परिवर्तन के सम्बन्ध का अध्ययन करते हैं जो पैमाने के प्रतिफल (Returns to scale) का विषय वस्तु है।

उत्पादन फलन में समय तत्व एक महत्वपूर्ण स्थान रखता है। उत्पादन फलन की प्रकृति अल्पकाल एवं दीर्घकाल में एक समान नहीं रहती है। अल्पकालीन उत्पादन अवधि का अभिप्राय उस समयावधि से है जिसमें उत्पत्ति के सभी साधनों को परिवर्तित नहीं किया जा सकता। अल्पकाल में

उत्पादन की अल्प समयावधि के कारण जिन उत्पत्ति के साधनों को परिवर्तित नहीं किया जा सकता उन्हें स्थिर साधन (Fixed factors) कहा जाता है। अल्पकाल में कुछ उत्पत्ति के साधन परिवर्तनशील (Variable Factors) होते हैं। मुख्यतः पूंजी, पूंजीगत उपकरण, भूमि, उत्पादन तकनीकि आदि अल्पकाल में स्थिर रहते हैं जबकि श्रम की इकाइयाँ परिवर्तनीय हो सकती हैं। अल्पकाल में उत्पादन के संचय अथवा प्लान्ट का आकार अपरिवर्तित रहता है। इस प्रकार अल्पकालीन उत्पादन फलन में कुछ उत्पत्ति के साधन स्थिर हैं तथा कुछ परिवर्तनीय। परिवर्तनशील साधनों में परिवर्तन करके उत्पादन स्तर में परिवर्तन प्राप्त किया जा सकता है। इसे परिवर्तनशील अनुपातों का नियम (Law of Variable Proportions) कहते हैं।

इसके विपरीत दीर्घकालीन उत्पादन अवधि का अभिप्राय उस लम्बी समयावधि से है जिसमें फर्म अपने उत्पादन क्षेत्र में प्रयोग होने वाली सभी उत्पत्ति के साधनों को आवश्यकतानुसार परिवर्तित कर सकती है। दूसरे शब्दों में दीर्घकाल में कोई भी उत्पत्ति का साधन स्थिर नहीं रहता। अल्पकाल की भांति दीर्घकाल में उत्पत्ति के साधनों को स्थिर एवं परिवर्तनशील साधनों के रूप में विभाजित नहीं किया जा सकता। दीर्घकाल में उत्पत्ति का प्रत्येक साधन परिवर्तनशील होता है। दूसरे शब्दों में दीर्घकाल में उत्पादन पैमाने को पूर्णतयः परिवर्तित किया जा सकता है। इसलिए दीर्घकालीन उत्पादन फलन को 'पैमाने के प्रतिफल'' (Returns to Scale) भी कहा जाता है।

13.4. अल्पकालीन उत्पादन फलन अथवा परिवर्तनशील अनुपातों का नियम (SHORT RUN PRODUCTION FUNCTION OR LAWS OF VARIABLE PROPORTION)

अल्पकाल का अभिप्राय उस समयावधि से है जिसमें उत्पत्ति के समस्त साधनों को परिवर्तित नहीं किया जा सकता। अल्पकाल में अल्प समयावधि के कारण जिन उत्पत्ति के साधनों को

परिवर्तित नहीं किया जा सकता उन्हें स्थिर साधन (Fixed Factors) कहा जाता है। अल्पकाल में कुछ उत्पत्ति के साधन परिवर्तनशील हैं जैसे– पूंजी, पूंजीगत उपकरण भूमि, उत्पादन तकनीकि आदि अल्पकाल में स्थिर हैं जबकि श्रम की इकाइयाँ परिवर्तनशील हो सकती है। अल्पकाल में प्लान्ट का आकार भी स्थिर रहता है। परिवर्तनशील साधनों में परिवर्तन करके उत्पादन स्तर में परिवर्तन अल्पकालीन उत्पादन फलन को 'परिवर्तनशील अनुपात नियम' कहते हैं।

अल्पकालीन उत्पादन फलन की तीन अवस्थायें होती हैं जो निम्नलिखित हैं —

1. उत्पत्ति वृद्धि नियम (Law of Increasing Returns)
2. उत्पत्ति समता नियम (Law of Constant Returns)
3. उत्पत्ति ह्रास नियम (Law of Diminishing Returns)

उत्पत्ति ह्रास नियम अल्पकालीन उत्पादन फलन का तीसरा नियम है। आधुनिक अर्थशास्त्री अल्पकालीन उत्पादन फलन के इन तीनों नियमों को उत्पत्ति का एक ही नियम मानते हैं तथा इसे परिवर्तनशील अनुपात के नियम (Law of Variable Proportions) का नाम देते हैं। प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों ने इसी नियम को उत्पत्ति ह्रास नियम के नाम से पुकारा था। किन्तु प्रो. मार्शल द्वारा प्रतिपादित उत्पत्ति ह्रास नियम को केवल कृषि क्षेत्र तक सीमित रखा गया था किन्तु आधुनिक अर्थशास्त्री इस नियम की क्रियाशीलता को केवल कृषि तक सीमित नहीं रखते बल्कि उत्पादन के प्रत्येक क्षेत्र में इस नियम की क्रियाशीलता को स्वीकार करते हैं।

13.5. नियम की व्याख्या

प्रो. स्टिगलर के शब्दों में, 'जब कुछ उत्पत्ति के साधनों को स्थिर रखकर एक उत्पत्ति साधन की इकाइयों में समान वृद्धि की जाय तब एक निश्चित बिन्दु के बाद उत्पादन की उत्पन्न होने वाली वृद्धि कम हो जायेंगी अर्थात् सीमान्त उत्पादन घट जायेगा।'

श्रीमती जॉन रॉबिन्सन के शब्दों में, 'उत्पत्ति ह्रास नियम यह बताता है कि यदि किसी एक उत्पत्ति के साधन की मात्रा को स्थिर रखा जाय तथा अन्य साधनों की मात्रा में उत्तरोत्तर वृार्द्ध जाय तो एक निश्चित बिन्दु के बाद उत्पादन में घटती दर से वृद्धि होती है। की उपरोक्त सिद्धान्त निम्नलिखित शर्तों (मान्यताओं) पर आधारित है —

(i) उत्पादन तकनीक अथवा संगङ्गन-व्यवस्था में कोई परिवर्तन नहीं होता है।

(ii) उत्पत्ति के साधनों के अनुपात में परिवर्तन करना संभव है और परिवर्तनशील साधनों की सभी इकाईयाँ एक समान कार्यकुशल हैं।

(iii) इस नियम का सम्बन्ध उत्पादन की भौतिक मात्र से है न कि उत्पादित वस्तु या साधन की कीमत से।

(iv) साधनों के संयोग का अनुपात परिवर्तनशील हो अर्थात् कुछ साधनों को स्थिर रखकर एक या अन्य साधनों की मात्रा में परिवर्तन किया जान चाहिये।

परिवर्तनशील अनुपात का नियम इस तथ्य पर आधारित है कि उत्पत्ति के साधन परस्पर स्थानापन्न होते हैं। परिवर्तनशील अनुपात नियम की स्पष्ट व्याख्या निम्नलिखित बिन्दुओं की सहायता से की जा सकती है —

(1) कुल उत्पादकता (Total Productivity) — किसी परिवर्तनशील साधन की निश्चित इकाइयों के अन्य स्थिर साधन इकाइयों के साथ प्रयोग के जो उत्पादन प्राप्त होता है उसे कुल उत्पादकता कहते हैं।

कुल उत्पादकता मुख्यतया परिवर्तनशील साधन की मात्रा पर निर्भर करती है अर्थात्

$$TP = f\,(T\ V\ F)$$

TVF = कुल परिवर्तनशील साधन

(2) औसत उत्पादकता (Average Productivity) — औसत उत्पादकता विभिन्न उत्पादन स्तरों पर उत्पादन साधन अनुपात (Output-Input Ratio) है अर्थात्

$$AP = \frac{TP}{AVF}$$

$$\text{औसत उत्पादकता} \frac{\text{कुल उत्पादकता}}{\text{कुल परिबर्तनशील साधन}}$$

(3) सीमान्त उत्पादकता (Marginal Productivity) — परिवर्तनशील साधन की एक अतिरिक्त इकाई के प्रयोग से, जबकि अन्य साधन स्थिर हैं, कुल उत्पादन में जो वृद्धि होती है उसे उस साधन की सीमान्त उत्पादकता कहते हैं।

$$MP_n = TP_n — TP_{n-1}$$

जहाँ MP_n = nवें साधन की सीमान्त उत्पादकता

TP_n = n साधनों की कुल उत्पादकता

TP_{n-1} = (n–1) साधनों की कुल उत्पादकता

परिवर्तनशील अनुपात नियम को कुल उत्पादकता (TP) औसत उत्पादकता (AP) तथा सीमान्त उत्पादकता (MP) की सहायता से निम्न तालिका द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है

तालिका 1

स्थिर साधन	परिवर्तनशील साधन TVF	कुल उत्पादकता TP	औसत उत्पादकता	सीमान्त उत्पादकता MP	अवस्थाएँ (Stages)
1	1	6	6	6	I Stage
1	2	16	8	10	(उत्पादन की पहली अवस्था)
1	3	30	10	14	
1	4	40	10	10	→मोड़ का बिन्दु
1	5	45	9	5	II Stage
1	6	48	8	3	(उत्पादन की दूसरी अवस्था)
1	7	48	6.8	0	
1	8	44	5.5	– 4	III Stage
1	9	38	4.2	– 6	(उत्पादन की तीसरी अवस्था)

तालिका 1 उत्पादन की तीन अवस्थाओं का स्पष्टीकरण देती है :

प्रथम अवस्था में स्थिर साध के साथ जैसे-जैसे परिवर्तनशील साधनों की इकाइयाँ प्रयोग में बढ़ाई जाती है हमें बढ़ता हुआ उत्पादन प्राप्त होता है जिसका प्रमुख कारण है कि परिवर्तनशील साधन बढ़ने पर स्थिर साधनों का पूर्ण विदोहन सम्भव हो पाता है। इसी कारण आरम्भ में कुल उत्पादकता, औसत उत्पादकता तथा सीमान्त उत्पादकता तीनों बढ़ते हैं।

प्रथम अवस्था में दो भाग हैं। प्रथम भाग में सीमान्त उत्पादकता तथा औसत उत्पादकता बढ़ती है। परिवर्तनशील साधन की तीसरी इकाई पर सीमान्त उत्पादकता (MP) अधिकतम है। चौथी इकाई के लिए सीमान्त उत्पादकता घट जाती है किन्तु औसत उत्पादकता (AP) बढ़ती ही रहती है। प्रथम अवस्था में आरम्भिक भाग में सीमान्त उत्पादकता तथा औसत उत्पादकता दोनों बढ़ती है, ि फन्तु द्वितीय चरण में सीमान्त उत्पादकता (MP) घटते हुए होने पर भी औसत उत्पादकता (AP) बढ़ती है। प्रथम चरण और द्वितीय चरण के बीच के बिन्दु को मोड़ का बिन्दु (Point of Inflexion) कहते हैं। प्रथम अवस्था का समापन उस बिन्दु पर होता है जहाँ औसत उत्पादकता (AP) अधिकतम हो जाए। प्रथम अवस्था में आरम्भ से अन्त तक औसत उत्पादकता (AP) निरन्तर बढ़ती हुई है इसलिए इस अवस्था को बढ़ते औसत उत्पादन की अवस्था (Stage of Increasing Average Return) अथवा उत्पत्ति के बढ़ते प्रतिफल (Increasing Returns Stage) कहा जाता है।

द्वितीय अवस्था में औसत उत्पादन (AP) तथा सीमान्त उत्पादन (MP) दोनों घट रहे हैं। इस अवस्था का समापन उस बिन्दु पर होता है जहाँ सीमान्त उत्पादकता (MP) शून्य हो जाती है। इस अवस्था में

कुल उत्पादन (TP) भी बढ़ता है किन्तु घटती दर से बढ़ता है क्योंकि इस अवस्था में सीमान्त उत्पादन (MP) घट रहा है, किन्तु धनात्मक है (देखें तालिका 1)। इस अवस्था में औसत उत्पादन (AP) घटता हुआ होने के कारण इस अवस्था को घटते औसत उत्पादन की अवस्था (Stage of Decreasing Average Product) भी कहा जाता है।

तृतीय अवस्था में सीमान्त उत्पादकता शून्य से कम अर्थात् ऋणात्मक हो जाती है (देखें तालिका 1)। इसमें सीमान्त उत्पादकता (MP) के ऋणात्मक (Negative) हो जाने के कारण कुल उत्पादकता (TP) घटने लगती है। तालिका 1 में यह अवस्था प्रदर्शित की गई है। घटती हुई कुल

उत्पादकता तथा ऋणात्मक सीमान्त उत्पादकता के कारण इस अवस्था को 'ऋणात्मक प्रतिफल की अवस्था' (Stage of Negative Returns) कहा जाता है।

चित्रीय निरूपण – चित्र 1 में परिवर्तनशील अनुपात का नियम प्रदर्शित किया गया है। अन्य साधनों के स्थिर रहते हुए एक साधन की मात्रा में वृद्धि के फलस्वरूप हुए उत्पादन को तीन अवस्थाओं में बाँटा जा सकता है :

प्रथम अवस्था : बढ़ते प्रतिफल की अवस्था (Stage of Increasing Returns)

चित्र 1 में इस अवस्था में परिवर्तनशील साधन की ON मात्रा तक प्रदर्शित की गई है। इस अवस्था के समापन बिन्दु पर सीमान्त उत्पादकता और औसत उत्पादकता परस्पर बराबर हो जाती है (देखें बिन्दु O)। इस अवस्था में औसत उत्पादकता निरन्तर बढ़ रही है और सीमान्त उत्पादकता धनात्मक एवं औसत उत्पादकता से अधिक होती है जिसके कारण कुछ उत्पादकता तीव्र गति से बढ़ती है। इस अवस्था में बढ़ते प्रतिफल मिलने का मुख्य कारण यह है कि आरम्भ में परिवर्तनशील साधनों की कम मात्रा स्थिर साधनों का पूर्ण विदोहन (Optimum Utilisation) नहीं कर पाती। जैसे-जैसे परिवर्तनशील साधनों की अतिरिक्त इकाइयाँ उत्पादन क्षेत्र में लगाई जाती है, वैसे-वैसे स्थिर साधनों का सघन प्रयोग (Intensive Use) होने के कारण कुल उत्पादन बढ़ता चला जाता है। इस प्रकार परिवर्तनशील साधनों की चित्र 1 अतिरिक्त इकाइयां स्थिर साधन की कार्यक्षमता में वृद्धि करती है। आरम्भ में स्थिर साधन अविभाज्य (Indivisible) होने के कारण तकनीकी दृष्टि से कम मात्रा में प्रयोग नहीं किए जा सकते। इस प्रकार स्थिर साधन अविभाज्य होने के कारण कम परिवर्तनशील साधनों के साथ गहनता से प्रयुक्त नहीं हो पाता। इसलिए स्थिर साधनों के पूर्ण विदोहन के लिए परिवर्तनशील साधनों की मात्राओं में वृद्धि करनी पड़ती है तथा यह साधन की मात्रा वृद्धि उत्पादन को बढ़ाती है। इसे ही बढ़ते प्रतिफल (Increasing Returns) कहा जाता है। इस अवस्था में TP वक्र बिन्दु O से बिन्दु K तक दिखाया गया है। वक्र OK को दो भागों में बांटा जा सकता है। दूसरे शब्दों में, प्रथम अवस्था दो भागों में विभक्त की जा सकती है।

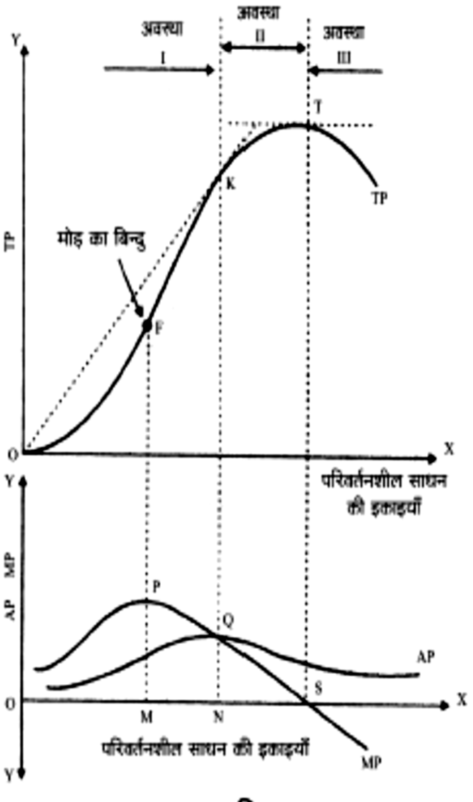

चित्र 1

बिन्दु O से बिन्दु F तक गमन — कुल उत्पादन में बढ़ती दर से वृद्धि हो रही है क्योंकि बिन्दु

P (अथवा बिन्दु F) तक सीमान्त उत्पादकता (MP) बढ़ती हुई है। बिन्दु O से बिन्दु F तक TP वक्र X-अक्ष के प्रति उन्नतोदर (Convex) है।

बिन्दु F से बिन्दु K तक गमन — कुल उत्पादन (TP) बढ़ता अवश्य है, किन्तु घटती दर के साथ क्योंकि इस अन्तराल में सीमान्त उत्पादकता (MP) घटती तो है (देखें बिन्दु P से बिन्दु O) किन्तु धनात्मक है। बिन्दु F से बिन्दु K के मध्य TP वक्र X-अक्ष के लिए अवनतोदर (Concave) है।

जिस बिन्दु पर सीमान्त उत्पादकता अधिकतम होती है (देखें बिन्दु P), उस बिन्दु से सम्बन्धित कुल उत्पादन का बिन्दु (बिन्दु F) मोड़ का बिन्दु (Point of Inflexion) कहलाता है। यही वह बिन्दु है जिसके बाद कुल उत्पादकता में घटती दर से वृद्धि होती है।

द्वितीय अवस्था : घटते प्रतिफल की अवस्था (Stage of Decreasing Returns)

यह अवस्था चित्र में TP वक्र के बिन्दु K तथा बिन्दु T के मध्य प्रदर्शित की गई है। इस अवस्था में कुल उत्पादकता में वृद्धि तो अवश्य होती है किन्तु घटती दर से क्योंकि इस अवस्था में सीमान्त उत्पादकता और औसत उत्पादकता दोनों घटती हुई हैं। इस अवस्था का समापन उस बिन्दु पर होता है जहाँ सीमान्त उत्पादकता (MP) शून्य हो जाती है (देखें बिन्दु S)। जब सीमान्त उत्पादकता शून्य होती है, तब कुल उत्पादकता (TP) अधिकतम होती है। (देखें बिन्दु T)। यह अवस्था यह स्पष्ट करती है कि यदि परिवर्तनशील साधन की OS इकाइयाँ प्रयोग की जायें तो कुल उत्पादकता अधिकतम होगी। इस अवस्था के घटते प्रतिफल का कारण यह है कि अल्पकाल में स्थिर उत्पत्ति साधनों को बढ़ाया नहीं जा सकता। जब स्थिर साधनों पर परिवर्तनशील साधन की ON इकाइयों से अधिक का प्रयोग किया जाता है तो अति-विदोहन (Over-Utilisation) के कारण आन्तरिक हानियाँ (Internal Diseconomies) उत्पन्न होती हैं जिसके कारण सीमान्त उत्पादकता घटकर शून्य तक पहुँच जाती है। दूसरे शब्दों में, दी हुई स्थिर साधनों की मात्रा के साथ बढ़ती हुई परिवर्तनशील साधनों की मात्रा का प्रयोग परिवर्तनशील साधन की सीमान्त उत्पादकता को घटा देता है। इस प्रकार स्थिर साधन एवं परिवर्तनशील साधन के संयोग अनुपात के असन्तुलित हो जाने के कारण घटते प्रतिफल उत्पन्न होते हैं।

तृतीय अवस्था : ऋणात्मक प्रतिफल की अवस्था (Third Stage : Stage of Negative Returns)

इस अवस्था में बिन्दु T के बाद कुल उत्पादन घटना आरम्भ कर देता है क्योंकि बिन्दु T पर परिवर्तनशील साधन की सीमान्त उत्पादकता शून्य है। यदि बिन्दु S के बाद परिवर्तनशील साधन की सीमान्त या एक अतिरिक्त इकाई का प्रयोग किया जाता है तो उस अतिरिक्त इकाई की सीमान्त उत्पादकता ऋणात्मक हो जाती है जिसके कारण कुल उत्पादकता वक्र-घटना आरम्भ कर देती है। इसीलिए इस अवस्था को ऋणात्मक प्रतिफल की आवस्था कहा जाता है। इस अवस्था में परिवर्तनशील साधन स्थिर साधन की तुलना में अत्यधिक हो जाते हैं। यह असन्तुलित अनुपात परिवर्तनशील साधन की सीमान्त उत्पादकता को ऋणात्मक बना देता है।

13.6. किस अवस्था में उत्पादन कार्य लाभप्रद है? (UNDER WHICH STAGE PRODUCTION WORK IS ADVANTAGEOUS?)

एक विवेकशील उत्पादन सदैव द्वितीय अवस्था में उत्पादन कार्य करना पसन्द करेगा। प्रथम अवस्था में जब परिवर्तनशील साधन की मात्रा को बढ़ाया जाता है तब कुल उत्पादकता में वृद्धि

NMDC-222

होती है क्योंकि अविभाज्य स्थिर साधनों का पूर्ण विदोहन हो पाता है। प्रथम अवस्था में ही यदि उत्पादक कार्य रोक देता है। इसका अर्थ है कि वह उस अतिरिक्त लाभ से वंचित है जिसे वह परिवर्तनशील साधन की अतिरिक्त इकाइयाँ उत्पादन क्षेत्र में लगाकर प्राप्त कर सकता है। इस प्रकार उत्पादक के लिए लाभप्रद यह है कि वह परिवर्तनशील साधन की इकाइयों को उत्पादन क्षेत्र तब तक बढ़ाता जाए जब उसे कुल उत्पादकता में तीव्र वृद्धि प्राप्त होती है। एक विवेकशील उत्पादक इस प्रकार परिवर्तनशील साधन की ON इकाइयों से कम का प्रयोग नहीं करेगा। परिवर्तनशील साधन की OS इकाई पर साधन की सीमान्त उत्पादकता शून्य तथा इसके बाद साधन की सीमान्त उत्पादकता ऋणात्मक हो जाती है जिसका अर्थ है कि इस तृतीय अवस्था में उत्पादक के लाभ में कमी होगी। अतः उत्पादक परिवर्तनशील साधन की OS इकाई से अधिक प्रयोग नहीं करेगा। केवल द्वितीय अवस्था — साधन की ON मात्रा से अधिक किन्तु OS मात्रा से कम—ही उत्पादन को सम्भव एवं लाभदायक बनाती है। द्वितीय अवस्था में साधन की सीमान्त उत्पादकता घट तो रही है किन्तु धनात्मक है जो कुछ उत्पादकता में कुछ न कुछ वृद्धि अवश्य करेगी। घटती सीमान्त उत्पादकता उत्पादन के लिए खतरे की सूचना अवश्य देती है क्योंकि घटती सीमान्त उत्पादकता शून्य तक पहुँच कर तदुपरान्त ऋणात्मक भी हो जाती है। उत्पादक तीसरी अवस्था के आरम्भ होने के पहले ही अपने उत्पादन स्तर को नियन्त्रित करता है। इस प्रकार द्वितीय अवस्था ही उत्पादन कार्य योग्य है।

परिवर्तनशील अनुपात के नियम की मान्यताएँ :– परिवर्तनशील अनुपात के नियम की निम्नलिखित मान्यतायें हैं —

1. उत्पादन प्रक्रिया में एक उत्पत्ति साधन परिवर्तनशील रहता है, जबकि अन्य स्थिर रहते हैं।
2. परिवर्तनशील साधन की समस्त इकाइयाँ समरूप (Homogeneous) होती हैं।
3. तकनीकी स्तर में कोई परिवर्तन नहीं होता।
4. स्थिर साधन अविभाज्य (Indivisible) होते हैं।
5. विभिन्न उत्पत्ति साधन अपूर्ण स्थानापन्न (Imperfect Substitutes) होते हैं।
6. स्थिर साधन सीमित एवं दुर्लभ हैं।

13.7. परिवर्तनशील अनुपात अथवा उत्पत्ति ह्रास नियम के लागू होने के कारण

आधुनिक अर्थशास्त्री उत्पत्ति ह्रास नियम लागू होने के निम्न कारण मानते हैं :

(1) एक या एक से अधिक साधनों का स्थिर होना (Fixity of One or More than One Factors of Production) – जब अन्य साधनों की मात्रा को स्थिर रखते हुए एक साधन (माना श्रम) की मात्रा में उत्तरोत्तर वृद्धि की जाती है तो परिवर्तनशील साधन श्रम का स्थिर साधनों के साथ अनुपात परिवर्तित होता चला जाता है। दूसरे शब्दों में, बढ़ती हुई श्रम मात्रा को स्थिर साधनों की ओर कम मात्रा के साथ काम करना पड़ता है। ऐसी दशा में श्रम की उत्पादकता कम होती चली जाती है और उत्पत्ति ह्रास नियम लागू हो जाता है।

(2) साधनों की अविभाज्यता (Indivisibility of Factors) – उत्पत्ति के अधिकांश साधन अविभाज्य होते हैं। ये अविभाज्य साधन अनुकूलतम बिन्दु की प्राप्ति तक तो उत्पादकता को

बढ़ाते हैं किन्तु जब अनुकलतम बिन्दु की प्राप्ति के बाद भी साधनों का निरन्तर उपयोग जारी रहता है तब साधन की उत्पादकता घटने लगती है और उत्पत्ति ह्रास-नियम लागू हो जाता है।

(3) उत्पत्ति के साधनों का पूर्ण स्थानापन्न न होना (Factors of Production are not Perfect Substitutes to Each-other) – श्रीमती जॉन रॉबिन्सन साधनों की अपूर्ण स्थानापन्नता को उत्पत्ति ह्रास नियम की क्रियाशीलता का मुख्य कारण मानती हैं। उनके अनुसार उत्पादकता प्रक्रिया में एक साधन को दूसरे साधन के स्थान पर केवल एक सीमा तक ही प्रतिस्थापित किया जा सकता है। उनके अनुसार उत्पत्ति के विभिन्न साधन परस्पर अपूर्ण स्थानापन्न होते हैं जिसके कारण सीमित साधन की कमी को किसी अन्य साधन से पूरा नहीं किया जा सकता। दूसरे शब्दों में, साधनों की स्थानापन्नता की लोच अनन्त नहीं होती जिसके कारण घटते प्रतिफल उत्पन्न होते हैं।

(4) साधनों की सीमितता (Scarcity of Factors) – कुछ उत्पत्ति के साधनों की पूर्ति स्थिर एवं सीमित होती है जैसे भूमि। अतः जब एक उत्पादन किसी साधन की पूर्ति को नहीं बढ़ा पाता तो उसे उस साधन की सीमित मात्रा से ही काम चलाना पड ता है। परिणामस्वरूप सीमित साधन का अन्य परिवर्तनशील साधनों से प्रयोग अनुपात में बदल जाता है और उत्पत्ति ह्रास नियम क्रियाशील हो जाता है।

13.8. परिवर्तनशील अनुपात के नियम की व्यावहारिकता (PRACTICABILITY OF LAW OF VARIABLE PROPORTION)

स्थिर साधनों की अविभाज्यताओं के कारण ही बढ़ते तथा घटते प्रतिफल उत्पन्न होते हैं। बढ़ते प्रतिफल उत्पादन की प्रथम अवस्था में इसलिए प्राप्त होते हैं क्योंकि आरम्भ में परिवर्तनशील साधन की मात्रा में वृद्धि स्थिर साधनों का पूर्ण उपभोग सम्भव बनाती है। परिवर्तनशील साधन की मात्रा की निरन्तर वृद्धि एक बिन्दु पर स्थिर साधन का पूर्ण विदोहन (Perfect or Optimum Utilisation) कर लेती है। इस बिन्दु पर परिवर्तनशील साधन तथा स्थिर साधनों का सयं ोग अनुपात अनुकूलतम (Optimum Proportion) होता है। यदि इस अनुकूलतम बिन्दु के बाद भी परिवर्तनशील साधन की मात्रा में वृद्धि की जाती है तो स्थिर साधन अति उपयोग (Over- Utilisation) होने के कारण परिवर्तनशील साधन का औसत उत्पादन घटने लगता है। यही घटते प्रतिफल का नियम है। प्रतिष्ठित अर्थशास्त्री रिकार्डो एवं माल्थस ने इस सिद्धान्त को कृषि क्षेत्र पर लागू किया था। उनके अनुसार कृषि क्षेत्र तथा उससे सम्बन्धित व्यवसाय (जैसे मछली पकड़ना आदि) में कुछ समय बाद घटते प्रतिफल उत्पन्न होते हैं। रिकार्डो के अनुसार भूमि की सीमित मात्रा तथा ह्रासमान उर्वरा-शक्ति के कारण कृषि क्षेत्र में घटते प्रतिफल उत्पन्न होते हैं। प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों ने घटते प्रतिफल नियम को केवल कृषि क्षेत्र में लागू करके इसके क्षेत्र को सीमित कर दिया। आधुनिक अर्थशास्त्री उद्योग उत्पादन के सभी क्षेत्रों में इस सिद्धान्त की व्यावहारिकता स्वीकार करते हैं। यह एक सार्वभौमिक (Universal) सिद्धान्त है। चाहे कोई भी क्षेत्र क्यों न हो, अन्य साधनों की तुलना में एक साधन की कमी सदैव घटते प्रतिफल को जन्म देगी। श्रीमती जॉन रॉबिन्सन उत्पत्ति के साधनों की अपूर्ण स्थानापन्नता को घटते प्रतिफल का कारण मानती हैं। उनके अनुसार उत्पत्ति के विभिन्न साधन परस्पर अपूर्ण स्थानापन्न होते हैं जिसके कारण स्थिर साधन की कमी को किसी अन्य साधन से पूरा नहीं किया जा सकता। दूसरे शब्दों में, श्रीमती रॉबिन्सन के अनुसार साधनों में स्थानापन्नता की लोच अनन्त नहीं है जिसके कारण घटते प्रतिफल उत्पन्न होते हैं। घटते प्रतिफल की व्यावहारिकता को देखते हुए विक्स्टीड ने कहा है कि घटते प्रतिफल का नियम 'उतना ही सावभौमिक है जितना कि जीवन का नियम' (as Universal as the Law of Life and Death)।

13.9. परिवर्तनशील अनुपात के नियम का महत्व (IMPORTANCE OF LAW OF VARIABLE PROPORTION)

परिवर्तनशील अनुपात के नियमों का महत्व निम्नलिखित है —

(1) अर्थशास्त्र का आधारभूत नियम (Fundamental Law of Economics) – यह नियम केवल कृषि पर ही लागू नहीं होता बल्कि खनन, मछली-पालन, उद्योग, मकान-निर्माण, आदि सभी उत्पादन क्षेत्रों में क्रियाशील होने के कारण इस नियम का कार्य-क्षेत्र बहुत व्यापक है।

(2) माल्थस के जनसंख्या सिद्धान्त का आधार (Basis of Malthusian Population Theory) – माल्थस का सिद्धान्त यह बताता है कि देश में खाद्यान्नों के उत्पादन में वृद्धि जनसंख्या में वृद्धि से कम होती है। खाद्यान्नों में धीमी वृद्धि के कारण उत्पत्ति ह्रास नियम ही है।

(3) रिकार्डो के लगान सिद्धान्त का आधार (Basis of Recardian Rent Theory) –

रिकार्डो के गहरी खेती व विस्तृत खेती दोनों में लगान उत्पन्न होने का कारण उत्पत्ति ह्रास नियम है। गहरी खेती में जब दिए गए भू-खण्ड पर श्रम व पूँजी के अतिरिक्त इकाइयों का प्रयोग किया जाता है तो उत्तरोत्तर इकाइयों की उत्पादकता घटती जाती है क्योंकि उत्पत्ति ह्रास नियम लागू होता है। सीमान्त इकाई की तुलना में पहले की इकाइयों को जो बचत प्राप्त होती है उसे रिकार्डो ने लगान कहा है। इस प्रकार यह लगान उत्पत्ति ह्रास नियम की क्रियाशीलता का ही परिणाम है।

(4) सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त का आधार (Basis of Marginal Productivity Theory) – इस सिद्धान्त में उत्पत्ति के साधनों को उनकी सीमान्त उत्पादकता के अनुसार पुरस्कार दिया जाता है। उत्पत्ति ह्रास नियम की क्रियाशीलता के कारण परिवर्तनशील साधन की सीमान्त उत्पादकता घटती हुई होती है।

(5) एक क्षेत्र के लोगों का जीवन-स्तर प्रभावित करता है (Affects Standard of Living of People Residing in an Area) – एक क्षेत्र में जनसंख्या उत्पत्ति के अन्य साधनों की तुलना में अधिक तेजी से बढ़ती है तब वहाँ उत्पत्ति ह्रास नियम लागू होने के कारण उस क्षेत्र के लोगों का रहन-सहन स्तर गिर जायेगा।

(6) आविष्कारों एवं खोजों के लिए प्रेरणादायक (Incentive for Inventions) – उत्पत्ति ह्रास नियम की क्रियाशीलता को स्थगित करने के लिए अनेक आविष्कार एवं खोज करने की प्रेरणा मिलती है। इस प्रकार परिवर्तनशील अनुपात के नियम की अवस्थाएँ सैद्धान्तिक एवं व्यावहारिक दोनों दृष्टिकोणों से महत्वपूर्ण है।

क्या घटते अथवा ऋणात्मक प्रतिफल की अवस्थाओं को स्थगित किया जा सकता है?

आधुनिक आविष्कारों के प्रयोग, वैज्ञानिक तकनीकी सुधार, कुशल प्रबन्धन एवं संगठन, कृषि मशीनीकरण, यातायात एवं संचार सुविधाओं में सुधार, आदि अनेक घटकों के कारण उत्पत्ति ह्रास नियम की क्रियाशीलता को कृषि, उद्योग आदि क्षेत्रों में कुछ समय के लिए स्थगित किया जा सकता है, किन्तु इसका अभिप्राय यह नहीं कि उत्पत्ति के घटते प्रतिफल की अवस्था को टाला जा सकता है। वैज्ञानिक एवं आविष्कारों के युग में उत्पत्ति के घटते प्रतिफल की अवस्था की प्रभावी प्रवृत्ति को कुछ समय तक ही स्थगित रखा जा सकता है परन्तु उसे पूर्णतया समाप्त नहीं किया जा सकता।

NMDC-222

13.10. परिवर्तनशील अनुपात नियम तथा लागतें (LAW OF VARIABLE PROPORTION & COSTS)

प्रथम अवस्था : बढ़ते प्रतिफल का नियम अथवा घटती लागत नियम

द्वितीय अवस्था : स्थिर प्रतिफल का नियम अथवा स्थिर लागत नियम

तृतीय अवस्था : घटते प्रतिफल का नियम अथवा बढ़ती लागत नियम

परिवर्तनशील अनुपात नियम एवं लागतों के उपर्युक्त तीनों सम्बन्धों में यह मान लिया गया है कि साधन एवं उत्पादित वस्तु की कीमतें स्थिर रहती हैं।

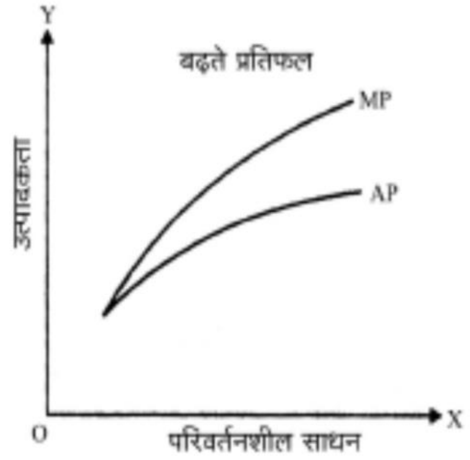

चित्र 2

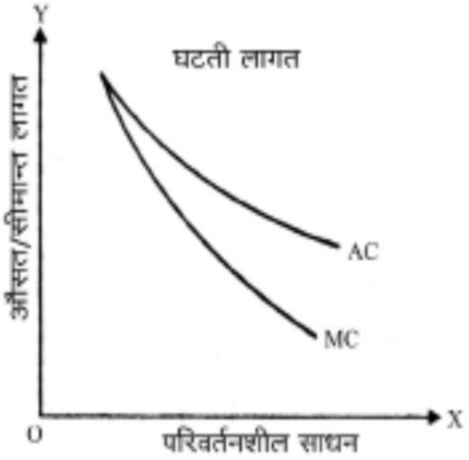

चित्र 3

(I) बढ़ते प्रतिफल नियम के अन्तर्गत परिवर्तनशील साधन की मात्रा को बढ़ाने से सीमान्त प्रतिफल में वृद्धि होती है जिसके कारण औसत लागत एवं सीमान्त लागत घटना आरम्भ कर देती है। बढ़ते प्रतिफल तथा घटती लागतें वस्तुतः स्थिर कीमतों के अन्तर्गत समान ही हैं, इसीलिए बढ़ते प्रतिफल नियम को घटती लागत नियम (Law of Decreasing Cost) भी कहा जाता है।

बढ़ते प्रतिफल नियम में जब औसत उत्पादन (AP) बढ़ता है तब सीमान्त उत्पादन (MP) उससे अधिक तेजी से बढ़ता है। लागत के शब्दों में, जब औसत लागत (AC) गिरती है तो सीमान्त लागत (MC) उससे अधिक तेजी से गिरती है। चित्र 2 तथा 3 में बढ़ते प्रतिफल तथा घटती लागत सम्बन्धी वक्र दिखाए गए हैं।

(II) घटते प्रतिफल नियम अथवा बढ़ती लागत नियम (Law of Diminishing Returns or Increasing Cost) के अन्तर्गत वक्रों की स्थिति चित्र 4 तथा चित्र 5 के अनुसार होंगी।

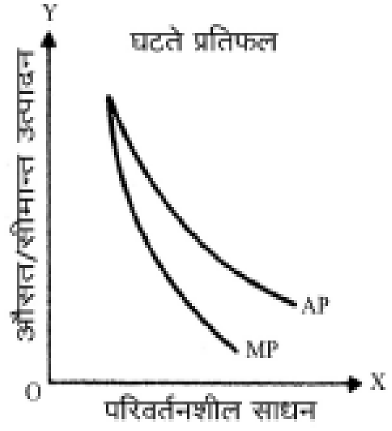

चित्र 4

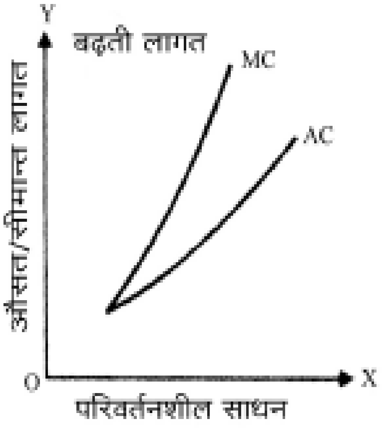

चित्र 5

(III) स्थिर प्रतिफल अथवा स्थिर लागत नियम क्षण भर के लिए ही क्रियाशील होता है और यह बढ़ते प्रतिफल के मध्य की स्थिति है (देखें चित्र 6 तथा 7)।

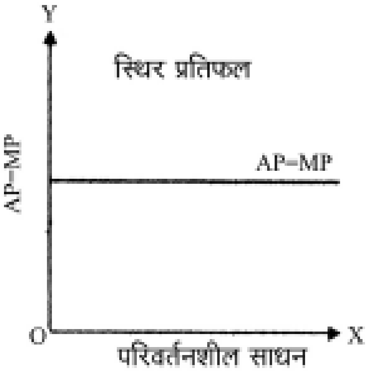

चित्र 6

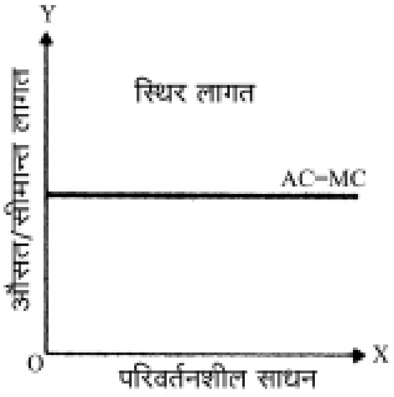

चित्र 7

13.11. उत्पत्ति ह्रास नियम का क्षेत्र (SCOPE OF THE LAW OF DIMINISHING RETURNS)

उत्पत्ति ह्रास नियम निम्न क्षेत्रों में लागू होता है :

(1) खान व्यवसाय में (Mines) – उत्पत्ति ह्रास नियम खान व्यवसाय में निम्न प्रकार लागू होता है :–

(i) प्रथम रीति या विस्तृत रीति (First Method or Extensive Method) – खनिज खदान का मालिक सबसे पहले उस स्थान पर खनिजों की खुदाई करेगा, जहाँ उसे आसानी से श्रमिक, यातायात व बाजार की सुविधा उपलब्ध हो सके। जब ऐसे स्थानों का खनिज समाप्त होता है, तब वह बाजार व आबादी से दूरी की खानों की ओर बढ़ता है। इस प्रकार दूसरी खानों की उत्पादन लागत पहली खानों की उत्पादन लागत की अपेक्षा ऊँची होगी। इससे यह स्पष्ट होता है कि खान व्यवसाय में उत्पत्ति ह्रास नियम लागू हो जाता है।

(ii) द्वितीय रीति या गहरी रीति (Second Method or Intensive Method) – कभी-कभी खान का मालिक एक ही खान से अधिकाधिक खनिज प्राप्त करने का प्रयत्न करता है। जब खान कम गहरी होती है, तब खान के भीतर विशेष प्रयत्न नहीं करने पडते़ हैं। ज्यों-ज्यों खान गहरी होती जाती है, त्यों-त्यों खान के अन्दर मजदूरों के रख-रखाव पर अधिक व्यय करना होता है। रख-रखाव के अन्तर्गत ऑक्सीजन, रोशनी, पानी, आने-जाने, सुरक्षा, पोशाक, क्रेन तथा आधुनिक यन्त्र, आदि की व्यवस्था करना है। इन सब व्यवस्थाओं पर अतिरिक्त खर्च करना पड़ता है। जब खान के मुहाने से खनिज प्राप्त किया जा रहा था तब इस प्रकार के व्यय नहीं होते थे, परिणामस्वरूप, खनिजों की उत्पादन लागत कम बैठती थी, परन्तु अब खनिजों को गहराई से निकाला जा रहा है तब उनकी उत्पादन लागत में वृद्धि हो जाती है। परिणामस्वरूप उत्पत्ति ह्रास नियम क्रियाशील हो जाता है।

(2) मछली पकड़ने के व्यवसाय में (Fisheries) – उत्पत्ति ह्रास नियम मछली पकड़ने के व्यवसाय में भी लागू होता है। नदी, तालाब व झील में ज्यों-ज्यों मछली पकड़ने के लिए जाल डाले जाते हैं त्यों-त्यों मछलियों की मात्रा में कमी आती जाती है जिससे मछली पकड़ने की दर कम होती है और खर्चा बढ़ जाता है।

मछली पकड़ने के व्यवसाय में गहरी व विस्तृत दोनों ही रीतियों को अपनाया जाता है। गहरी रीति से मछली पकड़ने का अभिप्राय यह है कि जब नदी, तालाब व समुद्री सतह पर मछलियों की संख्या कम रह जाती है तब मछुए गहराई की ओर जाने लगते हैं। गहराई में प्रवेश पाने के लिए उन्हें आधुनिक यन्त्रों, उपकरणों व साजो-सामान की आवश्यकता होती है जिस पर अत्यधिक खर्च आता है। अतः सतह पर जितनी कम लागत से मछलियाँ पकड़ी जा सकती हैं उतनी कम लागत पर गहराई से नहीं। ऐसा उत्पत्ति ह्रास नियम के ही कारण है। मछलियों को पकड़ने का दूसरा तरीका विस्तृत है। जब मछलियाँ नदी, झील व समुद्र के किनारे समाप्त हो जाती हैं, तब मछुआरों को

नावों में बैठकर आधुनिक जालों के साथ दूर-दूर तक भटकना पड़ता है जिसमें समय, साधन और अधिक जोखिम झेलनी पड़ती है जिससे उत्पादन लागत बढ़ जाती है, परिणामस्वरूप उत्पत्ति ह्रास नियम क्रियाशील हो जाता है।

(3) मकान व दुकान बनाने में (Building) – भवन-निर्माण में भी उत्पत्ति ह्रास नियम क्रियाशील होता है। यह बात बहुमंजिली इमारतों में लागू होती है। एक मंजिल की अपेक्षा दूसरी मंजिल में और दूसरी से तीसरी मंजिल की लागत बढ़ती जाती है, क्योंकि जमीन से ऊपर कच्चे माल को लाने व ले जाने में अधिक श्रम व पूँजी की आवश्यकता होती है। ज्यों-ज्यों मकान की मंजिलें बढ़ायी जाती हैं त्यों-त्यों प्रत्येक अगली मंजिल की लागत बढ़ती जाती है। यह व्याख्या उत्पत्ति ह्रास नियम के ही मन्तव्य को स्पष्ट करती है।

(4) उद्योग धन्धों में (Industries) – उद्योग धन्धों में तथा तैयार माल बनाने वाले उद्योगों में भी एक सीमा के बाद उत्पत्ति ह्रास नियम क्रियाशील हो जाता है। भले ही वैज्ञानिक आविष्कारों तथा नयी-नयी उत्पादन तकनीकों के कारण इन व्यवसायों में उत्पत्ति ह्रास नियम कृषि की अपेक्षा देरी से लागू होता है, लेकिन लागू अवश्य होता है। यदि ऐसा नहीं होता तो उद्योगों में लगातार श्रम और पूँजी की उत्तरोत्तर इकाइयाँ लगायी जातीं और मनमाना उत्पादन प्राप्त कर लिया जाता और विश्व से उत्पादन की समस्या हमेशा-हमेशा के लिए समाप्त हो गयी होती, परन्तु ऐसा नहीं होता है। स्पष्ट है कि उत्पत्ति ह्रास नियम सर्वव्यापी है।

NMDC-222

13.12. उत्पत्ति समता नियम (LAW OF CONSTANT RETURNS)

उत्पत्ति वृद्धि नियम और उत्पत्ति ह्रास नियम के बीच की कड़ी को उत्पत्ति समता नियम कहा जाता है। जब उत्पत्ति वृद्धि नियम समाप्ति पर और उत्पत्ति ह्रास नियम लागू होने की दशा में होता है, तब उसी के बीच में इस नियम का प्रादुर्भाव होता है। यह अवस्था उत्पादन की एक अति अल्पकालीन स्थिति की द्योतक है।

नियम की व्याख्या (Explanation of the Law) – उत्पत्ति समता नियम की व्याख्या करते हुए प्रो. स्टिगलर (Stigler) ने लिखा है कि ''जब कभी उत्पादन साधनों को एक दिये हुए अनुपात में बढ़ाया जाता है, तो उत्पादन उसी अनुपात में बढ़ता जाता है।''1

मार्शल के अनुसार, ''जब उत्पादन के समस्त साधनों में एक दिए हुए अनुपात में वृद्धि कर दी जाती है तो उत्पत्ति उसी अनुपात में बढ़ जाती है।''2

उपर्युक्त परिभाषाओं से स्पष्ट है कि उत्पत्ति समता नियम में उत्पादन न तो बढता है और न ही घटता है अर्थात् स्थिर रहता है। उत्पादन में यह स्थिति तब देखी जाती है, जब उत्पत्ति के साधनों के बीच आदर्शतम अनुपात स्थापित होता है। इस व्याख्या को तालिका 2 से स्पष्ट कर सकते हैं।

तालिका 2

श्रम व पूंजी की मात्राएँ	कुल उत्पादन	औसत उत्पादन	सीमान्त उत्पादन	अवस्था
1	50	50	50	
2	100	150	50	
3	50	50	50	'उत्पत्ति समता'
4	200	50	50	
5	250	50	50	

तालिका के अनुसार जब श्रम और पूँजी की इकाई को उत्पादन में लगाया जाता है, तो उत्पादन 50 इकाइयों के बराबर प्राप्त होता है। यह दशा 'उत्पत्ति समता नियम' (Law of Constant Returns) या 'समता लागत

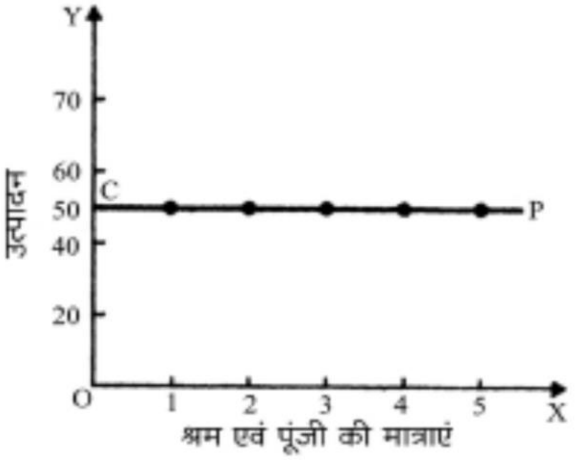

चित्र 8

NMDC-222

1. "When all the productive services are increased in a given proportion, the product is increased in the same proportion." — Stigler, The Theory of Price, p. 129.

2. "When all of the productive services are increased in the same proportion." — Marshall.

नियम' की है। इस व्याख्या को चित्र 8 से स्पष्ट किया जा सकता है। चित्र में उत्पत्ति समता नियम की आकृति को CP रेखा से दिखाया गया है। CP रेखा X-axis के समानान्तर है। रेखा में किसी प्रकार के उतार-चढ़ाव नहीं हैं। रेखा से स्पष्ट है कि जिस अनुपात में श्रम और पूँजी की इकाइयों को बढ़ाया जा रहा है, उसी अनुपात में उत्पादन भी बढ़ रहा है। इसलिए CP रेखा उत्पत्ति समता नियम को प्रदर्शित करती है। व्यावहारिक जीवन में ऐसे उदाहरण बहुत कम मिलते हैं, जिनमें उत्पत्ति समता नियम लागू होता है। इस नियम का केवल सैद्धान्तिक महत्व ही है।

13.13. उत्पत्ति वृद्धि नियम (LAW OF INCREASING RETURNS)

उत्पत्ति वृद्धि नियम उत्पादन की प्रारम्भिक अवस्था में लागू होता है। उत्पादन की प्रारम्भिक दशा में ज्यों-ज्यों उत्पादन के साधनों को उत्तरोत्तर बढ़ाया जाता है, त्यों-त्यों एक बिन्दु तक प्राप्त होने वाला प्रतिफल साधनों के अनुपात की तुलना में बड़ी तेजी से बढ़ता है।

उत्पत्ति वृद्धि नियम की परिभाषा — उत्पत्ति वृद्धि नियम के अन्तर्गत मार्शल तथा श्रीमती जॉन रॉबिन्सन की परिभाषाओं का महत्वपूर्ण स्थान है। मार्शल के अनुसार, ''श्रम तथा पूँजी की वृद्धि करने से उत्पत्ति के साधनों का संगठन सामान्यतया अधिक उत्तम हो जाता है। फलस्वरूप साधनों की कुशलता बढ़ जाती है।''

श्रीमती जॉन रॉबिन्सन के शब्दों में, ''जब उत्पादन में किसी साधन की मात्रा को बढ़ाया जाता है, तब प्रायः यह होता है कि उत्पादन के साधनों के संगठन में सुधार आ जाते हैं और उत्पत्ति के साधनों की कार्यकुशलता बढ़ जाती है। ऐसी स्थिति में उत्पादन को बढ़ाने के लिए साधनों की भौतिक मात्रा में आनुपातिक वृद्धि करने की आवश्यकता नहीं होती है।'' श्रीमती जॉन रॉबिन्सन की परिभाषा से दो बातें स्पष्ट होती हैं :

(1) प्रो. मार्शल ने उत्पत्ति वृद्धि नियम को केवल उद्योग-धन्धों तक ही सीमित रखा है, जबकि श्रीमती रॉबिन्सन ने इस नियम को सर्वव्यापक बताया है।

(2) साधनों को उत्तरोत्तर बढ़ाने से उत्पादन आदर्शतम संयोग की ओर बढ़ता है, परिणामस्वरूप साधनों की कार्यकुशलता में वृद्धि होने लगती है, जिससे उत्पादन बढ़ता है। श्रीमती रॉबिन्सन ने लिखा है कि 'उत्पादन को बढ़ाने के लिए सभी भौतिक साधनों को उसी अनुपात में नहीं बढ़ाया जाता है, जिस अनुपात में उत्पादन बढता़ है' क्योंकि उत्पत्ति वृद्धि नियम में कुछ ही साधनों को बढ़ा देने पर उत्पादन के सब साधनों की क्षमता में वृद्धि हो जाती है।

उत्पत्ति वृद्धि नियम की व्याख्या (Explanation of the Law of Increasing Returns) – उत्पत्ति वृद्धि नियम इस धारणा पर आधारित है कि उत्पादन के साधनों को बढ़ाने से उत्पादन में धीरे-धीरे वृद्धि होती है। परिणामस्वरूप सीमान्त उत्पादन बढ़ता है और कुल उत्पादन तथा औसत उत्पादन में भी तेजी से वृद्धि होने लगती है। उत्पादन वृद्धि का यह क्रम तब तक चलता रहता है जब तक साधनों का अनुपात अनुकूलतम नहीं हो जाता है। इस अनुकूलतम बिन्दु के बाद यदि साधनों के अनुपात में वृद्धि जारी रखी

गयी, तो उसके बाद सीमान्त उत्पादन तथा Deemw उत्पादन में कमी आने लगती है। इस व्याख्या को हम सारणी 3 से स्पष्ट कर सकते हैं।

सारणी 3

श्रम व पूंजी की इकाइयाँ	कुल उत्पादन (T.P.)	औसत उत्पादन (A.P.)	सीमान्त उत्पादन (M.P.)
1	10	10	10
2	25	12.5	15
3	69	16.33	24
4	84	21.5	35
5	134	26.8	50

सारणी 3 को देखने से स्पष्ट है कि ज्यों-ज्यों उत्पत्ति के साधनों में वृद्धि की जाती है त्यों-त्यों सीमान्त उत्पादन, कुल उत्पादन तथा औसत उत्पादन

में वृद्धि होती है। सारणी के आँकडों़ को देखने से यह स्पष्ट है कि साधनों को जिस अनुपात में बढाय़ा जा रहा है, उसकी तुलना में उत्पादन कई गुना अधिक बढ ़रहा है। चित्र 9 से स्पष्ट किया जा सकता है। चित्र में X-अक्ष पर श्रम व पूँजी की इकाइयाँ तथा Y-अक्ष पर लागत को दिखाया गया है। चित्र में ज्यों-ज्यों उत्पादन

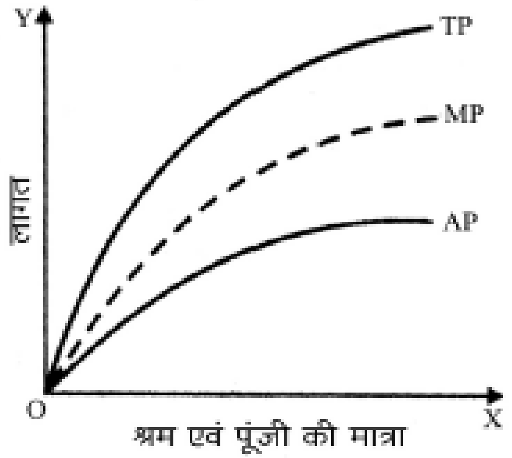

चित्र 9

के साधनों को बढ़ाया जाता है, त्यों-त्यों सीमान्त उत्पादन (MP), औसत उत्पादन (AP) तथा कुल उत्पादन (TP) बढत़ा है।

उत्पत्ति वृद्धि नियम तथा लागत (The Law of Increasing Returns and Costs)

NMDC-322

उत्पत्ति वृद्धि नियम को लागत की दृष्टि से 'लागत ह्रास नियम' कहा जाता है। इस नियम में हम स्पष्ट कर चुके हैं कि जिस अनुपात में उत्पत्ति के साधनों को बढ़ाया जाता है, उसकी तुलना में

उत्पादन कई गुना बढ़ता है। इसलिए इस नियम के अन्तर्गत सीमान्त लागत तथा औसत लागत में उत्तरोत्तर कमी आने लगती है। यह कमी तब तक होती है, जब तक कि साधनों के बीच आदर्शतम संयोग स्थापित नहीं हो जाता। लागतों के घटने के कारण इस नियम को 'लागत ह्रास नियम' कहा गया है। इस व्याख्या को चित्र 10 से स्पष्ट किया जा सकता है। चित्र में AC तथा MC, औसत एवं सीमान्त लागत की रेखायें हैं। ज्यों-ज्यों उत्पादन

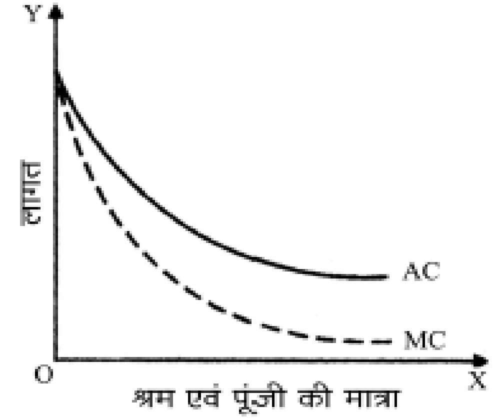

चित्र 10

बढ़ता है त्यों-त्यों सीमान्त तथा औसत लागत की रेखायें घटती जाती हैं। चित्र को देखने से ज्ञात होता है कि जिस तेजी से सीमान्त लागत घटती है उसकी तुलना में औसत लागत कम तेजी से घटती है अर्थात् श्ण से AC ऊपर है।

उत्पत्ति वृद्धि नियम के लागू होने के कारण — उत्पत्ति वृद्धि नियम के लागू होने के प्रमुख कारण निम्न हैं :

(1) उत्पत्ति के विभिन्न साधनों को वांछित अनुपात में जुटाने की क्षमता — उत्पादक अपने उत्पादन को बढ़ाने के लिए उत्पत्ति के साधनों में इस प्रकार की हेरा-फेरी करता है कि अकुशल साधनों की जगह कुशल साधनों को लगाया जाता है। इसे प्रतिस्थापन की क्रिया भी कहा जाता है। अतः प्रतिस्थापन क्रिया के लागू होने से ही उत्पादन बढ़ता है।

(2) साधनों की अविभाज्यता – श्रीमती जॉन रॉबिन्सन के अनुसार उत्पत्ति वृद्धि नियम के लागू होने का प्रमुख कारण साधनों की अविभाज्यता है। अर्थात् साधनों के छोटे-छोटे भाग नहीं किये जा सकते हैं। उदाहरण के लिए, मशीनें, व्यवस्थापक, पूँजी, आदि को मनचाहे रूप में विभाजित नहीं किया जा सकता है। उत्पादन के प्रारम्भ में जब अविभाज्य साधन के साथ परिवर्तनशील साधनों को लगाया जाता है, तो उत्पादन अनुपात से अधिक मात्रा में बढ़ने लगता है।

(3) बड़े पैमाने की उत्पत्ति की बचतें – कुछ उद्योग-धन्धे ऐसे हैं, जिन्हें बड़े पैमाने की आन्तरिक तथा बाह्य बचतें प्राप्त होती हैं। इन बचतों के कारण उत्पादन लागत घटती है, परिणामस्वरूप उत्पत्ति वृद्धि नियम लागू होने लगता है।

(4) वैज्ञानिक आविष्कार – उत्पादन को बढ़ाने के लिए उद्योग-धन्धों में लगातार नये-नये प्रयोग किये जाते हैं। इन प्रयोगों से उत्पादन में वृद्धि होती है। उत्पादकों को जब कभी उत्पादन घटने का आभास होता है तब वे उत्पादन तकनीक में फेर-बदल करके उत्पादन को बढ़ा लेते हैं।

(5) प्रकृति का प्रभाव कम – उत्पत्ति वृद्धि नियम में प्रकृति की अपेक्षा व्यक्ति का हाथ अधिक होता है। वर्षा, गर्मी, पाला, बाढ़, आदि का प्रभाव कृषि उद्योग की अपेक्षा सामान्य उद्योग-धन्धों में कम पड़ता है। अतः उद्योग में कृषि की अपेक्षा उत्पत्ति वृद्धि नियम अधिक प्रभावी होता है।

(6) व्यवसाय का प्रबन्ध – व्यवस्थापक की कुशलता के कारण उत्पादन की मात्रा साधनों के अनुपात की तुलना में कई गुना अधिक बढ़ जाती है। परिणामस्वरूप, उत्पादन लागत घटती है आरै उत्पत्ति वृद्धि नियम लागू होता है।

नियम का क्षेत्र (Scope of Law) – आधुनिक अर्थशास्त्रियों ने इस नियम के क्षेत्र को काफी व्यापक बना दिया है। उत्पत्ति वृद्धि नियम केवल कल-कारखानों में ही लागू नहीं होता है, बल्कि यान्त्रिकीकरण के कारण कृषि में भी लागू होने लगा है। उत्पादन का चाहे कोई क्षेत्र हो, उस क्षेत्र में जब तक साधनों को अनुकूलतम अनुपात में बढ़ाया जायेगा तब तक उत्पत्ति वृद्धि नियम लागू होता रहेगा। अतः इस नियम का क्षेत्र सीमित न होकर व्यापक है।

13.14. निष्कर्ष

किसी वस्तु के उत्पादन में हमें भूमि, श्रम, पूँजी जैसे – उत्पादन के साधन चाहिए इन्हीं साधनों की सहायता से उस वस्त्र के उत्पादन की मांग निर्भर करती है। साधनों तथा उत्पादन में सम्बन्ध (Input-Output Relation) को अर्थशास्त्र में उत्पादन फलन (Production Function) कहते हैं। इसे गणित की भाषा में निम्न प्रकार से व्यक्त किया जा सकता है — $q = f(a, b, c, ...)$ उत्पादन फलन की तीन प्रमुख अवस्थायें होती हैं जैसे – उत्पादन वृद्धि नियम, उत्पादन समता नियम तथा उत्पादन ह्रास नियम। इन तीनों अवस्थाओं के अपने-अपने गुण-दोष भी होते हैं।

13.15. सन्दर्भ ग्रन्थ

प्रस्तुत अध्याय को आप और अच्छी प्रकार से निम्न स्रोतों की सहायता से अध्ययन कर सकते हैं —

1. उच्चतर आर्थिक सिद्धान्त — एच.एल. आहूजा।

   एस चाँद एण्ड कम्पनी, रामनगर, नयी दिल्ली, 110055

2. व्यावसायिक अर्थशास्त्र — जय प्रकाश मिश्र

   साहित्य भवन पब्लिशर्स एवं डिस्ट्रीब्यूटर्स, आगरा, 282003

3. समष्टिभावी आर्थिक विश्लेषण — डॉ. एस.बी. गुप्ता

   छत्तीसगढ़ हिन्दी अकादमी, रविशंकर शुक्ल वि.वि. परिसर, रायपुर, छत्तीसगढ.

4. Modern Micro Economics – A. Koutsoyianmisi MacMillan Publications Ltd.

13.16. सम्बन्धित प्रश्न

1. उत्पत्ति ह्रास नियम के लागू होने के कारणों का उल्लेख कीजिए।
2. परिवर्तनशील अनुपात के नियम के महत्व का उल्लेख कीजिए।

3. परिवर्तनशील अनुपात के विभिन्न नियमों की व्यवस्था कीजिए।

4. क्या ऋणात्मक प्रतिफल की अवस्थाओं को स्थगित किया जा सकता है?

5. उत्पत्ति समता नियम की व्याख्या कीजिए।

UNIT–14 ECONOMIES AND DISECONOMIES OF SCALE OF PRODUCTION (उत्पत्ति के पैमाने की बचतें तथा अबचतें)

संरचना :–

14.1. उद्देश्य

14.2. प्रस्तावना

14.3. बड़े पैमाने का उत्पादन

14.4. बड़े पैमाने के उत्पत्ति के लाभ

14.5. आन्तरिक बचतें

14.6. वाह्य मितव्ययितायें या बचतें

14.7. बड़े पैमाने के उत्पादन की हानियाँ (अबचतें)

14.8. बड़े पैमाने के उत्पादन की सीमायें

14.9. आन्तरिक व वाह्य अबचतें

14.10. निष्कर्ष

14.11. अग्रेतर अध्ययन

14.12. सम्भावित प्रश्न

14.1 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप —

- बड़े पैमाने पर उत्पादन व उनके लाभों का विश्लेषण कर सकेंगे;
- आन्तरिक बचतें (मितव्ययितायें) व वाह्य बचतें की पहचान कर सकेंगे;
- बड़े पैमाने के उत्पादन की हानियाँ की विवेचना कर सकेंगे; एवं
- आन्तरिक व वाह्य अबचतों (अल्पस्यय) को परिभाषित कर सकेंगे।

14.1. प्रस्तावना

UPRTOU / MDC-222

उत्पत्ति के पैमाने से आशय उत्पादन के आकार से लगाया जाता है। प्राचीनकाल में जब आज के समान कल-कारखानों तथा उत्पादन की तकनीकि का विकास नहीं हुआ था तब उत्पादन का पैमाना

सीमित था। उस युग की तुलना करें जब पहिये का अविष्कार नहीं हुआ था और यातायात के साधन नहीं थे, एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाने पर लोगों को बहुत सारी कठिनाइयों का सामना करना पड़ता था। उस समय व्यक्ति की आवश्यकतायें भी सीमित हुआ करती थीं। वह अपनी आवश्यकता की वस्तुओं को स्वयं ही उत्पादित करता था। सभ्यता के क्रमिक विकास के साथ-साथ उत्पादन का पैमाना छोटे आकार से बढ़ता-बढ़ता बडे ़आकार में परिवर्तित होने लगा।

आज सामान्यतया उत्पादन के पैमाने को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है —

1. बड़े पैमाने का उत्पादन (Large Scale Production)
2. छोटे पैमाने का उत्पादन (Small Scale Production)

14.2 बड़े पैमाने का उत्पादन (LARGE SCALE PRODUCTION)

बड़े पैमाने के उत्पादन के सम्बन्ध में प्रो. मार्शल ने लिखा है, — ''बड़े पैमाने के उत्पादन में तीन आवश्यक तत्व होते हैं —

(i) कारखानों में कार्यरत (काम करने वाले) श्रमिकों की संख्या अधिक हो।

(ii) पूँजी को कारखाने में बड़ी मात्रा में लगाया जाये।

(iii) उत्पादन को बड़े पैमाने में प्राप्त किया जाना।

उपरोक्त बातों के लागू होने पर ही उत्पादन करने वाली इकाइयों का आकार तथा उत्पादित मात्रा में वृद्धि होती है।

14.3. बड़े पैमाने की उत्पत्ति के लाभ (ADVANTAGES OF LARGE SCALE PRODUCTION)

बड़े पैमाने के उत्पादन की प्रारम्भिक दशा में उत्पत्ति वृद्धि नियम लागू होता है जिससे उत्पादन को प्रमुख रूप से तीन प्रकार की बचतें प्राप्त होती हैं —

(1) साधनों की अविभाज्यता सम्बन्धी बचतें

(2) उत्पादन मितव्ययितायें

(3) प्रतियोगिता सम्बन्धी मितव्ययितायें

(1) साधनों की अविभाज्यता सम्बन्धी बचतें (Economies Due to Indivisibility of Factors)

साधनों की अविभाज्यता का अर्थ है कि साधन की ऐसी इकाइयाँ जिन्हें उत्पादन के विभिन्न पैमाने की उपयुक्तता के अनुसार विभाजित नहीं किया जा सकता। अविभाज्यता की यह विशेषता मशीन-अनुसन्धान विपणन तथा विज्ञापन आदि के रूप में होती है। इन सब विशेषताओं के कारण एक बड़े पैमाने के उद्योग की छोटे पैमाने के उद्योग की अपेक्षा लाभ प्राप्त होते हैं। उदाहरणार्थ, एक उद्योग में एक संस्थापक की देख-रेख में 25 श्रमिक कार्य करते हैं। अब यदि इस उद्योग में 100 श्रमिकों को काम में लगाया जाता है, तो एक व्यवस्थापक इतने मजदूरों की देखभाल आसानी से कर सकता है, जबकि हमें 25 मजदूरों की देखभाल के लिए भी एक ही व्यवस्थापक लगाना था। अब वही व्यवस्थापक उतने ही पारिश्रमिक में 100 मजदूरों की देखभाल कर लेता है, तो दूसरी दशा में व्यवस्थापक की मजदूरी उद्योग के लिए काफी सस्ती

हुई क्योंकि व्यवस्थापक एक अविभाज्य इकाई है। हम कम मजदूरों को लगाने पर व्यवस्थापक की कम इकाई का उपयोग नहीं करेंगे। यही बात एक मशीन के सम्बन्ध में भी लागू होती है। संक्षेप में, ज्यों-ज्यों बड़े पैमाने के उत्पादन का आकार बढ़ता है, त्यों-त्यों साधनों की अविभाज्यता भी बढ़ती है और बड़े पैमाने के उत्पादन को अधिक लाभ मिलता है।

(2) उत्पादन मितव्ययितायें (Production Economies)

उद्योग को प्राप्त होने वाली उत्पादन सम्बन्धी मितव्ययिताओं को निम्न दो भागों में बाँटा जा सकता है :

(1) आन्तरिक मितव्ययितायें (अथवा बचतें) (Internal Economies) – बड़े पैमाने के उत्पादन की आन्तरिक मितव्ययितायें उद्योग के भीतर ही प्राप्त होती हैं। इन बचतों के बारे में मार्शल का कहना है कि "आन्तरिक मितव्ययितायें वे हैं जो किसी एक फर्म को उसकी आन्तरिक कुशलता तथा व्यवस्था आदि की श्रेष्ठता के कारण होती हैं।" उद्योग की आन्तरिक बचतें निम्नलिखित हैं:

14.4. आन्तरिक बचतें (INTERNAL ECONOMIES)

(अ) तकनीकी बचतें — एक उद्योग की तकनीकी बचतों को निम्न चार भागों में बांटा जा सकता है :

(i) श्रेष्ठ तकनीकी बचतें (Technical Economics) — छोटे पैमाने के उत्पादन की अपेक्षा बड़े पैमाने के उत्पादन को श्रेष्ठ तकनीकी बचतें प्राप्त होती हैं, क्योंकि उद्योग में उच्चकोटि की मशीनों व उपकरणों का उपयोग किया जाता है। भले ही ऐसे उत्पादन में मशीनों की लागत ऊँची होती है, परन्तु इनके द्वारा जो उत्पादन किया जाता है, वह आकार में बहुत अधिक होता है। यहाँ 'महंगी मजदूरी सस्ती मज़दूरी' के कथन को चरितार्थ करता है। उदाहरणार्थ, बड़े उद्योग में लगाई जाने वाली स्वचालित मशीनों, इलेक्ट्रॉनिक कम्प्यूटिंग मशीनों, आदि से बड़े पैमाने पर उद्योग ही लाभ कमा सकता है।

(ii) बड़े आयाम की बचतें (Economies of Large Scale) — उद्योग में कुछ ऐसी दशाएँ होती हैं जिनमें केवल बड़ी मशीनों का प्रयोग किया जाता है, जिनके प्रयोग से उद्योग को बचतें प्राप्त होती हैं।

(iii) विशिष्टीकरण की बचतें (Economies of Specialisation) — एक छोटी फर्म की अपेक्षा बड़ी फर्म में श्रम-विभाजन तथा विशिष्टीकरण की अधिकाधिक सम्भावनाएँ होती हैं। जिस कारखाने का विस्तार जितना बड़ा होगा, उसमें श्रम-विभाजन की उतनी ही अधिक सम्भावनाएँ होंगी। परिणामस्वरूप उत्पादन लागत में कमी आएगी और उद्योग को लाभ होगा।

(iv) सह-क्रियाओं का प्रयोग (Use of Linked Processes) — बड़े पैमाने के उत्पादन में सह-क्रियाओं के लिए किसी दूसरी फर्म पर निर्भर नहीं रहना पड़ता है। उदाहरणार्थ, चीनी के उद्योग में अनेकानेक प्रकार की सह-क्रियाओं को स्वयं कर लिया जाता है। जैसे, मिलों के द्वारा गन्ने की फसल बोना तथा काटना, ताकि मिलों को पर्याप्त मात्रा में कच्चा माल उपलब्ध हो सके।

(ब) प्रबन्ध सम्बन्धी बचतें (Managerial Economies) — बड़े पैमाने के उद्योग में प्रबन्ध सम्बन्धी व्यवस्था को अनेक भागों में बांट दिया जाता है। प्रत्येक विभाग को वह काम दिया

जाता है, जिसमें उसे दक्षता प्राप्त होती है। उदाहरण के लिए, लेखा-विभाग, विज्ञापन व प्रसारण विभाग, बिक्री और खरीद विभाग, आदि। इसे कार्यात्मक विशिष्टीकरण भी कहा जाता है। इस विभाजन से प्रत्येक विभाग की कार्यकुशलता बढ़ती है और उत्पादन भी बढ़ने लगता है।

(स) बाजार सम्बन्धी मितव्ययिताएँ (Marketing Economies) — बाजार सम्बन्धी मितव्ययिताएँ सामान की खरीद-फरोख्त से प्राप्त होती हैं। जब एक फर्म बड़े पैमाने पर कच्चे माल को क्रय करती है, तब वह उस माल को थोक में कुछ कम कीमत पर क्रय कर लेती है। इसके अतिरिक्त, वस्तु की बिक्री के लिए अनेक प्रकार के अनुसन्धान आदि किए जाते हैं, जिससे बिक्री काफी बढ़ जाती है।

(द) वित्तीय मितव्ययिताएँ (Financial Economies) — एक बड़े उद्योग को अनेक प्रकार से वित्तीय बचतें प्राप्त हो सकती हैं। बड़े पैमाने के उद्योग में बड़े पैमाने की पूँजी भी लगाई जाती है। बैंकों तथा अन्य वित्तीय संस्थाओं से जब ये उद्योग ऋण प्राप्त करते हैं, तो इन्हें कम ब्याज पर ऋण प्राप्त हो जाता है। इसलिए इन उद्योगों में लगाई जाने वाली पूँजी की सीमान्त-उत्पादकता अधिक होती है, जिसके परिणामस्वरूप बड़े पैमाने के उत्पादन को छोटे पैमाने के उद्योगों की अपेक्षा अधिक लाभ प्राप्त होता है।

(य) जोखिम सम्बन्धी मितव्ययिताएँ (Risk-bearing Economies) — छोटे उद्योग की अपेक्षा बड़े उद्योगों में जोखिम झेलने की क्षमता अधिक होती है। इसका मुख्य कारण है जोखिम का अनेकानेक भागों में बंटा रहना, इसके अतिरिक्त इन उद्योगों के द्वारा विभिन्न प्रकार की वस्तुओं को विभिन्न प्रकार के बाजारों में बेचकर हानि को कम कर लिया जाता है।

14.5. बाह्य मितव्ययितायें (अथवा बचतें) (EXTERNAL ECONOMIES)

बाह्य मितव्ययियताएँ वे हैं जो प्रायः समान रूप से किसी उद्योग की सभी फर्मों को उपलब्ध होती हैं। इन बचतों के सम्बन्ध में प्रो. चैपमैन (Chapman) का कहना है कि ''बाह्य बचतें वे होती हैं जिनमें उद्योग विशेष के सभी व्यवसायियों का भाग होता है।'' इस सम्बन्ध में प्रो. केरनक्रास (Cairncrass) का कहना है कि ''बाह्य मितव्ययिताएँ वे मितव्ययिताएँ हैं, जो अनेक फर्मों या उद्योग को प्राप्त होती हैं, जबकि एक उद्योग में या उद्योगों के समूह में उत्पादन का पैमाना बढ़ता है।''

जब कभी किसी क्षेत्र-विशेष में बैंक, पोस्ट ऑफिस, तारघर, रेल लाइन तथा यातायात के साधनों को खोला जाता है, तो इससे सभी इकाइयों को बाह्य मितव्ययिताएँ प्राप्त हो जाती हैं। ये लाभ उस क्षेत्र-विशेष की लगभग सभी फर्मों को मिलते रहते हैं। इस सन्दर्भ में मार्शल का कहना है कि ''बाह्य मितव्ययिताएँ उद्योगों के समान विकास पर निर्भर होती हैं। जैसे-जैसे किसी उद्योग-विशेष का विकास होता है, वैसे-वैसे वे मितव्ययिताएँ भी अधिक मात्रा में उपलब्ध होने लगती हैं।'' बाह्य मितव्ययिता के प्रमुख लाभ निम्नलिखित हैं :

(अ) केन्द्रीकरण की बचतें (Economies of Concentration) — बड़े पैमाने के उत्पादन में उद्योग-धन्धों को केन्द्रीकरण के लाभ प्राप्त होते हैं। किसी स्थान विशेष पर जब अनेकानेक उद्योग-धन्धे केन्द्रित हो जाते हैं, तब वहाँ लगभग सभी उद्योगों को यातायात व परिवहन की सुविधाएँ, सस्ता श्रम, कच्चे माल की उपलब्धता, श्रमिकों को प्रशिक्षित करने सम्बन्धी सुविधाएँ, आदि मिलने लगती हैं।

(ब) सूचना एवं सन्देश सम्बन्धी लाभ (Economies of Information) — बडे पैमाने के उत्पादन में व्यापार सम्बन्धी पत्र-पत्रिकाएँ प्रकाशित होने लगती हैं, जिससे लोगों को बाजार की

जानकारी, कच्चे माल की उपलब्धि तथा उत्पादन के क्षेत्र में होने वाले नए-नए प्रयोगों का ज्ञान होता है।

(स) कच्चे माल सम्बन्धी लाभ (Economies of Raw Materials) — यदि कोई उद्योग अन्य उद्योगों से अलग स्थापित होता है, तब उसे कच्चे माल का भारी स्टॉक रखना होता है, क्योंकि उसे भय रहता है कि आवश्यकता के समय उसे कच्चा माल उपलब्ध नहीं हो सकता है, इसके विपरीत, जब एक साथ कई उद्योग-धन्धे केन्द्रित हो जाते हैं, तब वहाँ कच्चे माल की उपलब्धता अधिक होती है। कच्चे माल की मांग बढ़ जाने से इन स्थानों में कच्चा माल कोने-कोने से आने लगता है। प्रायः इन उद्योगों को आसानी से सस्ते दामों पर कच्चा माल उपलब्ध होने लगता है।

(द) विशेषज्ञों की सेवा का लाभ (Economies of Specialisation) — जब एक स्थान विशेष पर बहुत सारी फर्में केन्द्रित होती हैं, तब वहाँ उद्योग-धन्धों से सम्बन्धित विशिष्ट कार्य को किसी विशेष संस्था या व्यक्ति को सौंप दिया जाता है। जैसे, मशीनों की मरम्मत का कार्य फर्म के द्वारा न करके किसी ऐसे व्यक्ति द्वारा किया जाना, जो इसका विशेषज्ञ हो और वह अपनी विशिष्टता के आधार पर केवल मशीनों को सुधारने का ही कार्य करेगा। अतः उद्योगों को आसानी से विशेषज्ञों का लाभ मिल जाता है।

(3) प्रतियोगिता सम्बन्धी मितव्ययितायें (Economies of Competition) – बड़े पैमाने के उद्योगों को प्रतियोगिता सम्बन्धी लाभ भी प्राप्त होते हैं। प्रतियोगिता सम्बन्धी लाभ या मितव्ययिताएँ अग्रलिखित हैं :

(i) बड़े पैमाने के उत्पादन की इकाई विज्ञापन में बड़ी भारी रकम व्यय करके लोगों का ध्यान अपनी वस्तु की तरफ आकर्षित कर लेती है। इससे वस्तुओं की मांग बढ़ जाती है। वस्तुओं की मांग बढ़ जाने से इन उद्योगों का लाभ भी बढ़ जाता है।

(ii) कच्चे तथा पक्के माल के क्रय-विक्रय में भी बड़े पैमाने के उद्योगों को छोटे पैमाने के उद्योगों की अपेक्षा अधिक लाभ मिलता है, क्योंकि छोटे पैमाने के उद्योग बड़े पैमाने के उद्योगों के साथ प्रतियोगिता में नहीं टिक पाते हैं।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि बड़े पैमानों के उद्योगों की अनेकानेक प्रकार की बचतें प्राप्त होती हैं। इन्हीं बचतों से इन उद्योगों को अधिकाधिक लाभ भी मिल जाता है। परिणामस्वरूप, वर्तमान समय में बड़े पैमाने के उद्योगों का विकास तेजी से हो रहा है।

14.6. बड़े पैमाने के उत्पादन की हानियाँ (अबचतें)

बड़े पैमाने की बचतों (लाभों) को देखने से यह नहीं समझ लेना चाहिए कि इनसे हमेशा लाभ ही होते हैं। बड़े पैमाने के उद्योगों की अनेक हानियाँ अर्थात् अबचतें (Diseconomies) भी हैं। इन हानियों में निम्नलिखित मुख्य हैं :

(1) एकाधिकारी प्रवृत्ति (Tendency towards Monopoly) — बड़े पैमाने के उद्योगों में एकाधिकार की दशाएँ जन्म लेती हैं। प्रायः प्रतियोगिता के अन्तर्गत बड़े-बड़े उद्योग छोटे-छोटे उद्योगों को समाप्त कर देते हैं। अन्त में, बड़े पैमाने के उद्योगों का एकाधिकार हो जाता है।

अपने लाभ को ध्यान में रखते हुए ये उद्योग आपस में प्रतियोगिता नहीं कर सकते हैं। फलतः ऊँचे मूल्य पर वस्तुओं को बेचकर अधिक लाभ कमाने लगते हैं।

(2) धन का असमान वितरण (Unequal Distribution of Wealth) — उत्पादन में जब बड़े पैमाने के उद्योग-धन्धों का बोलबाला बढ़ने लगता है, तो देश के उद्योगपतियों का एकाधिकार बढ़ते- बढ़ते प्राकृतिक साधनों तक पहुँच जाता है। राष्ट्र का सम्पूर्ण धन केन्द्रित होकर कुछ ही लोगों के हाथों में चला जाता है। फलतः एक वर्ग धनी और दूसरा वर्ग निर्धन बन जाता है।

(3) कारखाना प्रणाली के दोष (Evils of Factory System) — बड़े पैमाने के उद्योग-धन्धों में कारखाना प्रणाली के दोष दिन-प्रतिदिन बढ़ने लगते हैं। मुख्य रूप से वर्ग-संघर्ष, गन्दी बस्तियों का बढ़ना, अत्युत्पादन का भय, हड़ताल, तालाबन्दी, संघर्ष, शोषण, दुराचार, भ्रष्टाचार, आदि बातों का बोलबाला बढने़ लगता है।

(4) श्रम-विभाजन की हानियाँ (Disadvantages of Division of Labour) — ज्यों-ज्यों बड़े पैमाने का उत्पादन बढ़ता है त्यों-त्यों श्रम-विभाजन की बारीकियाँ भी बढ़ती है। श्रम-विभाजन के बढ़ जाने से श्रम-विभाजन सम्बन्धी हानियाँ उत्पन्न होने लगती हैं। मशीनों के अधिकाधिक प्रयोग से व्यक्ति की प्रवृत्ति भी मशीनी बन जाती है।

(5) लघु एवं कुटीर उद्योगों का ह्रास (Decline of Small-scale & Cottage Industries)

बड़े पैमाने का उत्पादन मशीनों पर आधारित है। प्रायः मशीनों द्वारा निर्मित माल हाथ से निर्मित माल की अपेक्षा सस्ता होता है। इन सस्ती वस्तुओं के मुकाबले में लघु एवं कुटीर उद्योगों द्वारा निर्मित माल काफी महंगा होता है। इसलिए उपभोक्ताओं के द्वारा मशीनों द्वारा निर्मित माल की मांग की जाती है। भारत में अंग्रेजों के राज से पूर्व दस्तकारी के साजो-सामान की बेहद मांग थी। अंग्रेजों ने ज्यों-ज्यों उद्योगों में मशीनीकरण को बढ़ावा दिया, त्यों-त्यों लघु एवं कुटीर उद्योगों द्वारा निर्मित माल की मांग कम होती गई और स्थिति यहाँ तक पहुँच गई कि लघु एवं कुटीर उद्योगों द्वारा निर्मित माल की वस्तुएँ इतिहास की सामग्री बन गई भले ही स्वतन्त्रता-प्राप्ति के बाद सरकारी प्रयत्नों के द्वारा इस व्यवसाय में सुधार लाया जा रहा है।

(6) श्रमिकों एवं पूंजीपतियों में संघर्ष (Industrial Disputes) — बड़े पैमाने के उत्पादन से उत्पादन की इकाई का आकार बड़ा हो जाता है, जिससे सेवायोजकों तथा श्रमिकों के बीच भाई-चारे की भावना समाप्त हो जाती है। सेवायोजक श्रमिकों के सुख-दुख का ध्यान नहीं रखते और श्रमिक भी सेवायोजकों की कठिनाइयों से परिचित नहीं रहते हैं। इस प्रकार सेवायोजक आरै श्रमिक जो जिस शाखा में बैठा है, वह उसी शाखा को सबसे पहले काटना चाहता है। फलतः आए दिन वर्ग-संघर्ष, तालाबन्दी व हड़ताल जैसी घटनाएँ होती रहती हैं।

(7) अन्तर्राष्ट्रीय संघर्ष की आशंका (International Tension) — बड़े पैमाने के उत्पादक

अपने उत्पादन की बिक्री के लिए, विदेशी बाजारों की खोज करते रहते हैं जहाँ उन्हें विदशेी उत्पादकों के साथ तीव्र प्रतियोगिता करनी पड़ती है। उनकी यह प्रतियोगिता कभी-कभी गम्भीर रूप धारण कर लेती है और यह प्रतियोगिता राष्ट्रों के बीच युद्ध का कारण बन जाती है।

उपर्युक्त हानियों को देखते हुए प्रत्येक व्यक्ति इतना तो अवश्य कह सकता है कि बड़े पैमाने के उद्योग-धन्धों के जो लाभ हैं उनके साथ साथ हानियाँ भी हैं। भले ही बड़े पैमाने के उत्पादन में आर्थिक विकास होता है, परन्तु इससे गैर-आर्थिक कल्याण में बहुत अधिक कमी आ जाती है। पूँजीवादी अर्थ-व्यवस्था में जो बुराइयाँ पाई जाती हैं लगभग वही बुराइयाँ बड़े पैमाने में पाई

जाती हैं। अतः इसमें प्रत्यक्ष व परोक्ष रूप से नियन्त्रण लगाकर बुराइयों को दूर किया जा सकता है।

14.7. बड़े पैमाने के उत्पादन की सीमाएँ

बड़े पैमाने के उत्पादन की प्रमुख सीमाएँ निम्नलिखित हैं :

(1) बाजार का विस्तार (Expansion of Market) — बड़े पैमाने के उत्पादन के लिए बाजार का विस्तृत होना आवश्यक है। यदि बाजार संकुचित है, तब वस्तुओं को बड़े पैमाने पर नहीं बेचा जा सकेगा और बड़े पैमाने का उत्पादन नहीं होगा।

(2) संगठन की योग्यता (Managerial Ability) — बड़े पैमाने का उत्पादन व्यवस्थापक की योग्यता पर निर्भर रहता है, परन्तु उसकी भी एक सीमा होती है। यदि बड़े पैमाने का उत्पादन व्यवस्थापक की योग्यता की सीमा के बाहर है, तो व्यवसाय फैलेगा और बड़े पैमाने का उत्पादन असफल हो जाएगा। अतः बड़े पैमाने के उत्पादन को व्यवस्थापक की कुशलता से आगे नहीं बढ़ना चाहिए।

(3) तकनीकी कठिनाइयाँ (Technical Difficulties) — बड़े पैमाने के उत्पादन में छोटी-बड़ी सभी प्रकार की मशीनों का उपयोग होता है, एक सीमा तक मशीनें उत्पादन बढ़ाती हैं, परन्तु एक सीमा के बाद मशीनों की क्षमता भी घट जाती है। यदि इससे आगे उत्पादन किया गया, तो हानि होने लगती है।

(4) पूँजी तथा श्रम की कठिनाइयाँ (Problems of Labour and Capital) — बड़े पैमाने के उत्पादन में श्रम और पूँजी की अधिक इकाइयों की आवश्यकता होती है। यदि एक सीमा के बाद श्रम और पूँजी पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध नहीं होती है, तो बड़े पैमाने का उत्पादन नहीं होगा।

(5) व्यवसाय का स्वरूप (Nature of the Business) — कुछ व्यवसाय छोटे पैमाने पर ही चलाए जा सकते हैं। यही कारण है कि आज भी छोटे पैमाने के उद्योगों का महत्व है। अतः छोटे पैमाने के व्यवसाय की प्रकृति बड़े पैमाने के व्यवसाय को सीमित कर देती है।

14.8. आन्तरिक व बाह्य अबचतें या हानियाँ (INTERNAL AND EXTERNAL DISECONOMIES)

जब एक फर्म का विस्तार होता है तो प्रायः आन्तरिक बचतें प्राप्त होती हैं, और जब एक उद्योग का विस्तार होता है तब बाह्य बचतें प्राप्त होती हैं, परन्तु यह संभव है कि जब फर्म अथवा उद्योग का विस्तार एक सीमा से अधिक किया जाए तो बचतों के स्थान पर अबचतें प्राप्त हों। वास्तव में, अत्यधिक विस्तार के कारण आन्तरिक एवं बाह्य बचतों के कारक ही आन्तरिक व बाह्य अबचतों के कारण बन जाते हैं। जब उत्पादन के पैमाने को एक सीमा से अधिक बढ़ाया जाता है तब निम्न श्रेणी अथवा कम कुशल साधनों को प्रयोग में लाना पड़ता है जिसके फलस्वरूप बचतों के स्थान पर अबचतें प्राप्त होने लगती हैं। अन्य शब्दों में, पैमाने के अत्यधिक विस्तार के फलस्वरूप औसत लागत घटने के स्थान पर बढ़ने लगती है। आन्तरिक व बाह्य अबचतों के कारण निम्न होते हैं :

NMDC-222

1. अकुशल श्रम का प्रयोग — उत्पादन को एक सीमा से अधिक बढ़ाने पर अधिक संख्या में कुशल श्रमिकों की आवश्यकता पड़ती है। कुशल श्रमिकों के न मिलने पर अकुशल श्रमिकों को काम पर लगाना पड़ता है जिसके फलस्वरूप बचतों के स्थान पर अबचतें प्राप्त होती हैं।

2. प्रबन्धकीय समस्याएँ — जब किसी फर्म का विस्तार एक सीमा से अधिक किया जाता है तब प्रबन्धकीय समस्याएँ उत्पन्न होने लगती हैं। कुशल प्रबन्ध के अभाव में उत्पादों की लागतें बढ़ने लगती हैं।

3. व्यवसाय का स्वरूप — कुछ व्यवसाय ऐसे होते हैं जिनका संचालन छोटे स्तर पर ही कुशलतापूर्वक किया जा सकता है। यदि उनका विस्तार किया जाए तो बचतों के स्थान पर अबचतें प्राप्त होती हैं।

4. तकनीकी समस्या — उत्पादन को एक सीमा से अधिक बढ़ाने पर तकनीकी समस्याएँ उत्पन्न हो जाती हैं। मशीनों का प्रयोग एक सीमा तक कुशलतापूर्वक किया जा सकता है। जब इनका अधिक प्रयोग किया जाता है तब इनमें घिसावट व टूट-फूट की समस्या उत्पन्न होने लगती हैं। इस तरह एक सीमा तक ही इनसे उत्पादन बढ़ाया जा सकता है। इसके बाद इनकी उत्पादन क्षमता बढ़ने के बजाय घट जाती है।

5. केन्द्रीकरण की समस्या — फर्मों का केन्द्रीकरण एक सीमा से अधिक होने पर समस्याएँ उत्पन्न होने लगती हैं। कच्चे माल व उत्पादन के साधनों की प्राप्ति हेतु स्थानीय फर्मों में कड़ी प्रतिस्पर्द्धा होने लगती है जिसके फलस्वरूप कच्चे माल व उत्पादन के साधनों की कीमतें बढ़ जाती हैं। फर्मों को अधिक मजदूरी, अधिक ब्याज, अधिक लगान तथा कच्चे माल की अधिक कीमत चुकानी पड़ती है। इससे फर्मों की उत्पादन लागत बढ़ जाती है।

   इस तरह निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि उत्पादन के पैमाने को एक सीमा तक बढ़ाने पर ही बचतें प्राप्त होती हैं। ।यदि उत्पादन को इस सीमा से आगे बढ़ाया जाता है तो बड़े पैमाने के उत्पादन को प्राप्त होने वाली बचतें अबचतों में बदल जाती है।

14.9. निष्कर्ष

उत्पत्ति के पैमाने से आशय उत्पादन के आकार से लगाया जाता है। उत्पादन के प्राचीनतम स्वरूप से लेकर अद्यतन तकनीकि में क्रमशः विकास हुआ। पहले लोगों की आवश्यकतायें सीमित थीं परन्तु आज आवश्यकताओं में गुणात्मक वृद्धि हुई है। सभ्यता के क्रमिक विकास के साथ-साथ उत्पादन का पैमाना छोटे आकार से बड़े आकार में परिवर्तित होता गया। आज पैमाने के आकार को दो भागों में विभाजित किया जाता है — छोटे आकार का उत्पादन, बड़े आकार का उत्पादन।

14.10. अग्रेतर अध्ययन

इस इकाई के विषय में और गम्भीरता से अध्ययन करने के लिए निम्नलिखित पुस्तकों की सहायता ली जा सकती है —

1. आन्तरिक वित्त — डॉ. एस.सी. शर्मा

   साहित्य भवन पब्लिशर्स एवं डिस्ट्रीब्यूटर्स, आगरा, 282003

2. उच्च वित्तीय प्रबन्ध — डॉ. एस.पी. गुप्ता

साहित्य भवन पब्लिशर्स एवं डिस्ट्रीब्यूटर्स, आगरा, 282003

3. उच्चतर आर्थिक विश्लेषण — एच.एल. आहूजा

एस चाँद एण्ड कम्पनी, रामनगर, नयी दिल्ली, 110055

14.11. सम्भावित प्रश्न

1. उत्पादन के पैमाने से आप क्या समझते हैं?
2. उत्पादन की बचतें तथा अबचतों में अन्तर स्पष्ट कीजिए।
3. बाह्य मितव्ययितायें क्या हैं ?
4. बड़े पैमाने के उत्पादन की हानियों का उल्लेख कीजिए।

NMDC-222

NMDC-222

UNIT–15 REVENUE ANALYSIS (आगम विश्लेषण)

संरचना :–

15.1. उद्देश्य

15.2. प्रस्तावना

15.3. आगम की विभिन्न धारणायें

15.4. आगम की विभिन्न धारणाओं का चित्रीय निरूपण

15.5. औसत आगमन तथा सीमान्त आगम सम्बन्ध

15.6. विभिन्न बाजारों में औसत आगम वक्र तथा सीमान्त आगम वक्रों की स्थिति

15.7. आगम का महत्व / निष्कर्ष

15.8. महत्वपूर्ण प्रश्न

15.9. अग्रेतर अध्ययन

15.1 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन करने पर आप इस योग्य हो सकेंगे कि —

- आगम की अवधारणा को परिभाषित कर सकें;
- आगम की विभिन्न अवधारणाओं का विवेचन कर सकें; एवं
- विभिन्न बाजारों में औसत आगम तथा सीमान्त आगम वक्रों की स्थिति का विश्लेषण कर सकें।

15.1. प्रस्तावना

हम जानते हैं कि मांग वक्र एक निश्चित समय और स्थान पर विभिन्न कीमतों एवं उन पर खरीदी जाने वाली वस्तु की मात्राओं के विभिन्न संयोगों को बताता है। आधुनिक अर्थशास्त्र में विनिमय एवं कीमत-निर्धारण के लिए मांग वक्र एवं पूर्ति वक्रों के स्थान पर क्रमशः आय वक्र (Revenue curve) एवं लागत वक्रों (Cost curves) का प्रयोग किया जाता है। आय वक्र विक्रय से उत्पादक को प्राप्त होने वाले आगमों (revenue) को बताता है।

आगम का अभिप्राय उस विक्रय राशि (Sales proceeds) से है जिसे फर्म अपना उत्पादन बेचकर प्राप्त करती है। प्रत्येक फर्म का उद्देश्य अधिकतम लाभ कमाना होता है। लाभ, उत्पादन लागत तथा प्राप्त आगम पर निर्भर करता है। हम जानते हैं कि —

लाभ = आय — लागत

फर्म का कुल लाभ दी हुई लागत दशाओं में कुल आगम (total revenue) पर निर्भर करता है।

15.2. आगम की विभिन्न धारणाएँ (DIFFERENT CONCEPTS OF REVENUE)

आगम की विभिन्न धारणायें निम्नलिखित हैं —

(i) कुल आगम (Total Revenue or TR) – किसी फर्म की कुल आगम वस्तु की एक इकाई कीमत तथा कुल विक्रय की गई इकाइयों के गुणनफल द्वारा प्राप्त किया जाता है।

दूसरे शब्दों में,

कुल आगम = कुल बिक्री से प्राप्त राशि

बिक्री इकाइयाँ × प्रति इकाई मूल्य

उदाहरण के लिए, एक विक्रेता वस्तु की एक इकाई 10 रु. में बेचता है और यदि वह कुल 500 इकाइयाँ बेचता है तब इस दशा में

आगम = 10 × 500 = 5,000 रुपये

(ii) औसत आगम (Average Revenue or AR) – कुल आगम को बिक्री की गई इकाइयों की संख्या से भाग देने पर औसत आगम (AR) प्राप्त होता है।

$$\text{औसत आगम} = \frac{\text{कुल आगम}}{\text{कुल बिक्री की गई इकाइयाँ}}$$

$$AR = \frac{TR}{Output}$$

अर्थात् AR सदैव वस्तु की प्रति इकाई कीमत को प्रदर्शित करता है (AR always depicts price of the commodity per unit)।

(iii) सीमान्त आगम (Marginal Revenue or MR) – बाजार में उत्पादन की एक अतिरिक्त (one additional) इकाई के विक्रय के कुल आगम में जो वृद्धि होती है उसे सीमान्त आगम कहते हैं।

यदि $TR_{n+1} = (n + 1)$ इकाइयों से प्राप्त आगम

तथा $TR_{n+1} = n$ इकाइयों से प्राप्त आगम

तथा $MR = TR_{n+1} - TR_n$

दूसरे शब्दों में $MR = \frac{\delta(TR)}{\delta(Q)} - \frac{\text{कुल आय में व्रद्धि}}{\text{वस्तु की मात्रा में व्रद्धि}}$

दोनों प्रकार के आगमों को निम्न तालिका द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है :

इकाइयों की संख्या	कुल आगम (TR)	औसत आगम = वस्तु की कीमत (AR)	सीमान्त आगम (MR)
1	20	20	20

2	38	19	18
3	54	18	16
4	68	17	14
5	80	16	12
6	90	15	10
7	98	14	8
8	104	13	6
9	108	12	4
10	110	11	2
11	110	10	0
12	108	9	— 2

उपर्युक्त तालिका मांग के नियम का ह्रासमान उपयोगिता नियम के साथ सम्बन्ध स्पष्ट करती है। एक सीमा तक तो TR वक्र X अक्ष के प्रति उन्नतोदर (convex) रहता है। एक बिन्दु के पश्चात् सीमान्त आगम (MR) के घटने के कारण कुल आगम (TR) में वृद्धि तो होती है किन्तु घटती दर से। तालिका से स्पष्ट है कि 11वीं इकाई के लिए सीमान्त आगम (MR) शून्य है, दूसरे शब्दों में TR अधिकतम है। 12वीं इकाई के लिए सीमान्त आगम (MR) ऋणात्मक हो जाता है, जिसके कारण कुल आगम (TR) घटने लगता है।

15.3. आगम की विभिन्न धारणाओं का चित्रीय निरूपण (DIAGRAMMATIC REPRESENTATION)

उपर्युक्त तालिका को चित्र के माध्यम से भी प्रदर्शित करके AR, MR तथा TR वक्रों की आकृति को प्राप्त किया जा सकता है। चित्र 1 में प्रदर्शित TR और MR के पारस्परिक सम्बन्ध को निम्नांकित रूप में व्यक्त किया जा सकता हैः

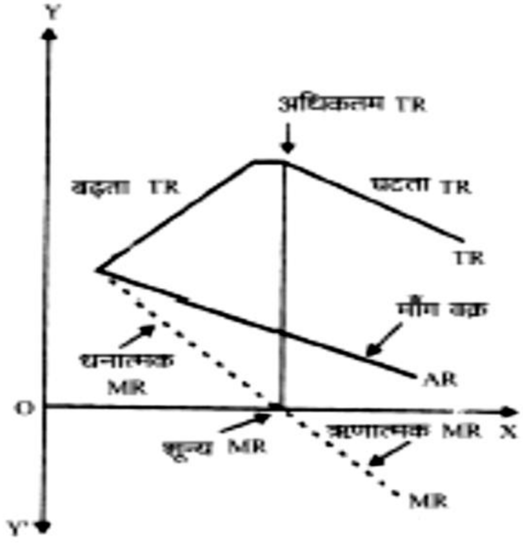

चित्र 1

1. बिक्री की पहली इकाई के लिए औसत आगम, सीमान्त आगम एवं कुल आगम परस्पर बराबर होते हैं।

2. जब तक सीमान्त आगम (MR) धनात्मक है, कुल आगम (TR) बढ़ता है।

3. जब सीमान्त आगम (MR) शून्य होता है तब कुल आगम (TR) अधिकतम हो जाता है।

4. जब सीमान्त आगम (MR) ऋणात्मक हो जाता है तब कुल आगम (TR) घटने लगता है।

औसत आगम वक्र की मांग की लोच पर निर्भरता औसत आगम वक्र प्रमुख रूप से मांग की लोच (elasticity of demand) पर निर्भर करता है। इसी कारण औसत आय (AR), सीमान्त आय (MR) और मांग की लोच (e) के मध्य एक गणितीय सम्बन्ध पाया गया है।

$$AR = MR\left(\frac{e}{e-1}\right)$$

15.4. औसत आगम तथा सीमान्त आगम सम्बन्ध (RELATIONSHIP BETWEEN AVERAGE AND MARGINAL REVENUE)

(1) यदि औसत आगम एक सीधी रेखा के रूप में उपलब्ध होता है तब उससे सम्बन्धित सीमान्त आगम भी सीधी रेखा का मार्ग अपनाता है।

इस स्थिति को चित्र 2 में प्रदर्शित किया गया है। यदि AR तथा MR चित्रानुसार सीधी रेखा के रूप में हों तब AR रेखा के किसी भी बिन्दु से Y अक्ष पर डाले गए लम्ब की दूरी को सम्बन्धित MR रेखा का बिन्दु दो भागों में बांटता है अर्थात् SR = RK। इसे निम्नलिखित प्रकार से सिद्ध किया जा सकता है :

हम जानते हैं कि,

AR × वस्तु की विक्रय मात्रा = TR

चित्र में, वस्तु कीमत (AR) OS अथवा KM

तथा विक्रय मात्रा = OM

अतः कुल आगम = OX × OM

TR = OSKM क्षेत्र ... (i)

दूसरे रूप में,

TR = सभी MR का जोड़

चित्र 2 : औसत आगम रेखा तथा सीमान्त आगम रेखा सम्बन्ध

TR = ΣMR

OM वस्तुओं के लिए

ΣMR = ODRLM क्षेत्र = TR .... (ii)

समीकरण (i) तथा (ii) बराबर हैं।

अर्थात् TR = OSKM क्षेत्र = ODRLM क्षेत्र

दोनों क्षेत्रों में क्षेत्र OSRLM उभयनिष्ठ (Common) है, अतः त्रिभुज DSR त्रिभुज RKL

दोनों त्रिभुज बराबर हैं, क्योंकि

$\angle DRS = \angle KRL$

$\perp DSR = \perp RKL$ — अतः दोनों त्रिभुज बराबर हैं।

$\angle SDR = \angle RLK$

दोनों त्रिभुज बराबर सिद्ध होने पर, हम कह सकते हैं :

$$SR = RK$$

अर्थात् AR वक्र के बिन्दु K से Y अक्ष पर डाले गये लम्ब की दूरी SK को सम्बन्धित MR बिन्दु R बराबर भागों में बांटता है।

(2) यदि औसत आगम एक वक्र के रूप में उपलब्ध होता है तो उससे सम्बन्धित सीमान्त आगम भी एक वक्र का ही मार्ग अपनाता है।

(i) यदि औसत आगम वक्र (AR Curve) मूल बिन्दु की ओर उन्नतोदर (Convex to Origin) होता है तब AR वक्र के किसी बिन्दु से Y अक्ष पर डाले गये लम्ब पर MR वक्र का बिन्दु मध्य बिन्दु से बायीं ओर होता है।

इस स्थिति को चित्र 3(A) में दिखाया गया है। PQ दूरी का मध्य बिन्दु T है, किन्तु MR वक्र का बिन्दु C मध्य बिन्दु से बायीं ओर बिन्दु C से गुजरता है। अर्थात् AR वक्र के मूल बिन्दु के उन्नतोदर होने की स्थिति में,

$$PC < CQ$$

(ii) यदि औसत आगम वक्र (AR Curve) मूल बिन्दु की ओर अवनतोदर (Concave to Origin) होता है, तब AR वक्र के किसी बिन्दु से Y अक्ष पर डाले गये लम्ब के मध्य बिन्दु से MR वक्र का बिन्दु दायीं ओर उपलब्ध होता है।

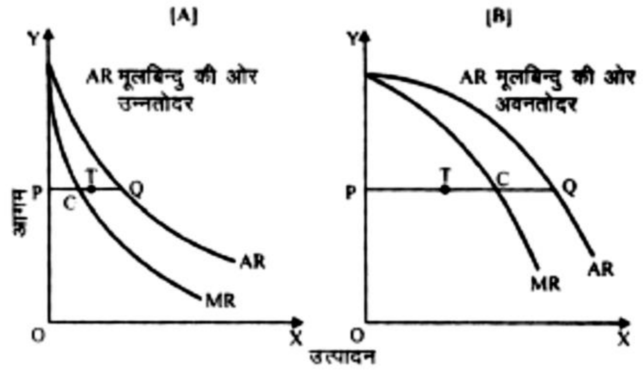

चित्र 3(A) चित्र 3(B)

औसत वक्र तथा सीमान्त लागत वक्र सम्बन्ध

इस स्थिति को चित्र 3(B) में दिखाया गया है। PQ दूरी का मध्य बिन्दु T है, किन्तु उन्नतोदर की स्थिति में बिन्दु C मध्य बिन्दु के दायें उपलब्ध होता है।

अर्थात् AR वक्र के मूल बिन्दु के प्रति अवनतोदर होने पर, PC > CQ

(iii) श्रीमती जॉन रॉबिन्सन ने औसत आगम (AR), सीमान्त आगम (MR) तथा मांग की लोच (e) में एक सम्बन्ध स्थापित किया है।

उनके अनुसार, $AR = MR\left(\frac{e}{e-1}\right)$

अथवा $MR = AR\left(\frac{e-1}{e}\right)$

उत्पत्ति (Proof)

चित्र 4 में OM उत्पादन पर वस्तु कीमत (AR) = NM, K बिन्दु इस प्रकार प्राप्त किया जाता है कि, PK = KN

इस प्रकार AR रेखा से सम्बन्धित MR रेका प्राप्त की जाती है। उत्पादन OM पर, SM सीमान्त आगम है।

बिन्दु N पर बिन्दु लोच

$$(Point Elasticity at Point N) = \frac{Lower Segment}{Upper Segment}$$

$$e = \frac{NT}{DN} \quad .....(i)$$

त्रिभुज NMT तथा त्रिभुज NPD समरूप हैं।

क्योंकि $\angle DNP = NTM$

$\perp \angle DPN = \perp \angle NMT$

अतः दोनों त्रिभुजों की सम्बन्धित भुजाओं का अनुपात बराबर होगा।

$$\frac{NT}{DN} = \frac{NM}{DP} \quad .....(ii)$$

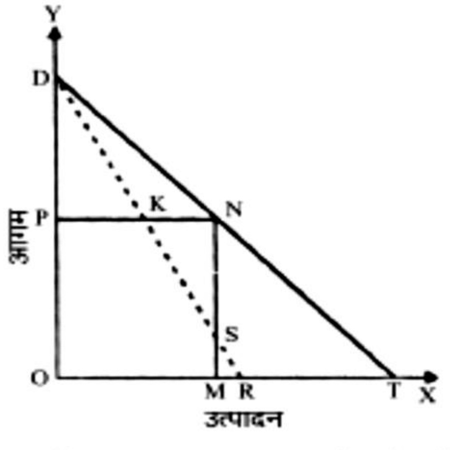

चित्र 4 : AR, MR तथा मांग लोच में सम्बन्ध

NMDC-222

चित्र 4 AR, MR तथा मांग लोच में सम्बन्ध समीकरण (i) तथा (ii) की तुलना करने पर

$$e = \frac{NM}{DP} \qquad \text{......(iii)}$$

हम पहले सिद्ध कर ही चुके हैं कि

$\perp \Delta DPK = \perp \Delta KNS$

अतः $DP = NS$ ... (iv)

समीकरण (iii) के अनुसार $e = \frac{NM}{DP}$

समीकरण (iv) के अनुसार $DP = NS$

अतः $e = \frac{NM}{NS}$

चित्र से स्पष्ट है कि $NM = NS + SM$

अतः $NS = NM - SM$

NM

इस प्रकार, $e = \frac{NM}{NM - SM} = \frac{\text{औसत आगम}}{\text{औसत आगम} - \text{सीमान्त आगम}}$

अर्थात् $e = \frac{AR}{AR - MR}$

या, $e\,(AR - MR) = AR$

या, $e \,.\, AR - e \,.\, MR = AR$

या, $e \,.\, AR - AR = e \,.\, MR$

या, $(e - 1)\, AR = e \,.\, MR$

$$AR = MR.\frac{e}{e-1}$$

या, $MR = AR.\frac{e-1}{e}$

इस प्रकार,

(i) यदि $e = 1$

तब $MR = AR.\frac{1-1}{1} = 0$

(ii) यदि $e = \infty$

NMDC-222

तब $MR = AR\left(\frac{\infty - 1}{\infty}\right) = AR\left(\frac{\frac{1}{0} - 1}{\frac{1}{0}}\right)$

अर्थात् AR = MR (पूर्ण प्रतियोगिता की दशा)

(iii) यदि e > 1 (माना e = 2)

तब $MR = AR\left(\frac{2-1}{2}\right) = \frac{AR}{2}$ धनात्मक

अर्थात् जब तक धनात्मक होगा।

(iv) यदि e < 1 (माना e = 1) तब $AR\left(\frac{\frac{1}{2} - 1}{\frac{1}{2}}\right)$ ऋणात्मक

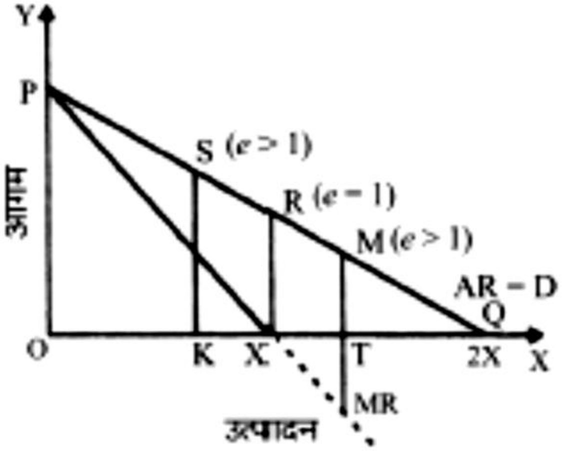

चित्र 5 : मांग की लोच तथा सीमान्त आगम

अर्थात् e < 1 होने पर MR ऋणात्मक हो जाता है। इन सब स्थितियों को चित्र 5 में दिखाया गया है।

1. बिन्दु R पर e = 1 जिसके कारण सम्बन्धित MR शून्य हो गया है।
2. बिन्दु S पर e < 1 जिसके कारण MR धनात्मक है।
3. बिन्दु M पर e < 1

जिसके कारण MR ऋणात्मक हो जाता है।

इस प्रकार श्रीमती रॉबिन्सन द्वारा प्रतिपादित सम्बन्ध के आधार पर किसी भी उत्पादन स्तर पर मांग की लोच ज्ञात होने पर सीमान्त आगम (MR) ज्ञात किया जा सकता है।

15.5. विभिन्न बाजारों में औसत आगम तथा सीमान्त आगम वक्रों की स्थिति (STRUCTURE OF AR AND MR CURVES IN DIFFERENT MARKETS)

विस्तृत रूप से तीन बाजारों के अन्तर्गत AR तथा MR वक्रों की स्थिति का अध्ययन किया जा सकता है।

(1) पूर्ण प्रतियोगिता (Perfect Competition) – पूर्ण प्रतियोगिता में वस्तु की माँग पूर्णतया लोचदार (Perfectly Elastic) होती है। पूर्ण प्रतियोगिता में फर्म कीमत प्राप्तकर्ता (Price Taker) होती है। उद्योग मांग तथा पूर्ति दशाओं द्वारा जो कीमत निर्धारित करती है, उद्योग के अन्तर्गत कार्य कर रही प्रत्येक फर्म उसे दिया हुआ मान लेती है। पूर्ण प्रतियोगिता में फर्म प्राप्त कीमत पर वस्तु की कितनी भी मात्रा का उत्पादन एवं विक्रय कर सकती है। फर्म अपनी वस्तु की माँग बढ़ाने के लिए वस्तु की कीमत में कमी नहीं कर सकती। यही कारण है कि प्रत्येक अतिरिक्त इकाई के विक्रय से प्राप्त आगम (अर्थात् सीमान्त आगम MR) सदैव वस्तु कीमत (AR) के बराबर होती है। पूर्ण प्रतियोगिता में,

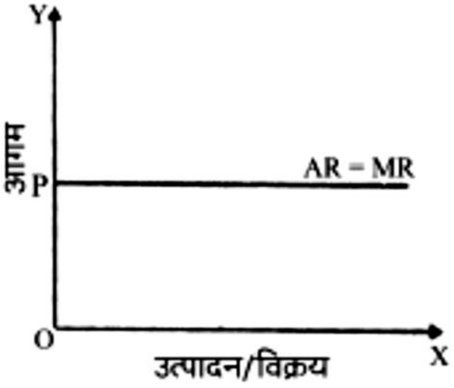

चित्र 6 : पूर्ण प्रतियोगिता में औसत तथा सीमान्त आगम

औसत आगम = सीमान्त आगम

$$AR = MR$$

यही कारण है कि पूर्ण प्रतियोगिता में माँग वक्र (अर्थात् AR वक्र) तथा सीमान्त आगम वक्र एक ही होते हैं तथा X-अक्ष के समानान्तर एक पड़ी रेखा (Horizontal line) के रूप में होते हैं।

चित्र 6 में पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत औसत आगम (AR) तथा सीमान्त आगम (MR) वक्रों की स्थिति दिखाई गई है। चित्र में ध्ङ कीमत पर फर्म कितनी ही मात्रा का विक्रय कर सकती है।

श्रीमती जॉन रॉबिन्सन के द्वारा प्रतिपादित सूत्रानुसार,

$$AR = MR\left(\frac{e}{e-1}\right) = MR\left(\frac{1}{1-1/e}\right)$$

हम जानते हैं कि पूर्ण प्रतियोगिता में मांग की पूर्णतया लोचदार स्थिति होती है।

अर्थात् $e = \infty$

इस प्रकार, पूर्ण प्रतियोगिता में, $AR = MR\left(\frac{1}{1-1/\infty}\right) = MR\left(\frac{1}{1-0}\right)$

$$MR = \left(\frac{1}{1}\right) = MR$$

अर्थात् $AR = MR$

(2) एकाधिकारी तथा अपूर्ण प्रतियोगिता (Monoply and Imperfect Competition) –

एकाधिकार तथा अपूर्ण प्रतियोगिता में औसत आगम वक्र बाएं तथा दाएं नीचे गिरता हुआ होता है। इन बाजारों में सीमान्त आगम वक्र नीचे गिरता हुआ तथ औसत आगम वक्र से नीचे स्थिर होता है।

$$AR > MR$$

एकाधिकारी फर्म तथा एकाधिकृत प्रतियोगी फर्म वस्तु कीमत कम करके अपनी बिक्री को बढ़ा सकती है जिसके कारण सीमान्त आगम कम हो जाता है। किन्तु यह बात स्मरण रखने योग्य है कि सीमान्त आगम में कमी की दर औसत आगम में कमी की दर से अधिक होती है जिससे सीमान्त आगम वक्र औसत आगम वक्र की तुलना में अधिक तेजी से गिरकर औसत आगम वक्र से नीचे हो जाता है।

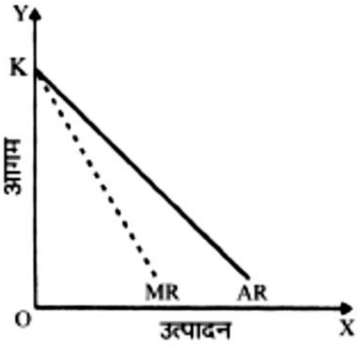

चित्र 7 : एकाधिकार में औसत एवं सीमान्त आगम

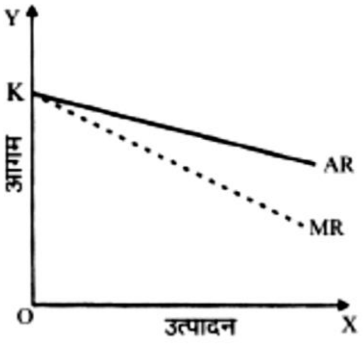

चित्र 8 : एकाधिकृत प्रतियोगिता में औसत तथा सीमान्त आगम

चित्र 7 तथा 8 में क्रमशः एकाधिकारी फर्म तथा एकाधिकृत प्रतियोगी फर्मों के औसत (AR) तथा सीमान्त आगम (MR) वक्र प्रदर्शित किए गए हैं।

(2) अल्पाधिकार (Oligopoly) – अल्पाधिकारी में मांग वक्र विकुंचित (Kinked) होता है जिसके कारण औसत और सीमान्त आगम वक्रों का ढाल एकसमान नहीं होता। अल्पाधिकार में कम विक्रेता होते हैं। अतः एक फर्म की वस्तु कीमत अन्य विक्रेताओं को प्रभावित करती है। एक फर्म के द्वारा कीमत बढ़ा देने पर अन्य फर्में उसका अनुकरण नहीं करेंगी जिसके कारण कीमत बढ़ाने वाली फर्म हानि उठायेगी। इसके विपरीत, यदि कोई फर्म विक्रय में वृद्धि के उद्देश्य से कीमत में कमी करती है तो अन्य फर्में तुरन्त उसका अनुकरण करेंगी जिसके कारण कीमत कम करने वाली फर्म को आशा से कम लाभ होगा। इस प्रकार अल्पाधिकार में कीमत दृढ़ता (Price Rigidity) पाई जाती है। इस स्थिति को चित्र 9 में प्रदर्शित किया गया है। मांग वक्र का DR

भाग अधिक लोचदार तथा RD भाग कम लोचदार है। इसके कारण MR वक्र बिन्दु K से T तक टूटा हुआ प्राप्त होता है।

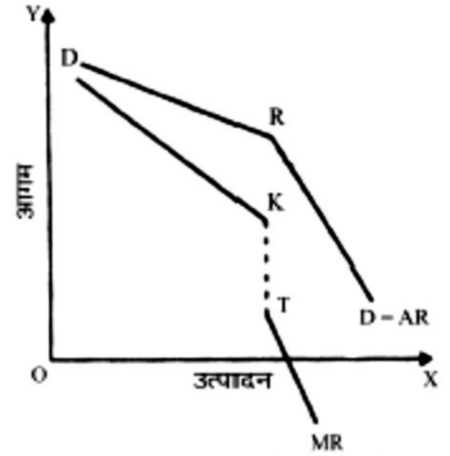

चित्र 9 : अल्पाधिकार में विकुंचित मांग वक्र (औसत आगम वक्र)

15.6. निष्कर्ष

आगम का अभिप्राय उस विक्रय राशि से है जिसे फर्म अपना उत्पादन बेचने से प्राप्त करती है। कुल आगम = औसत आगम × कुल विक्रय की गयी इकाइयाँ

अर्थात् $TR = AR \times X$

15.7. महत्वपूर्ण प्रश्न

1. सिद्ध कीजिए (Prove) :

$$MR = AR\left(\frac{e-1}{e}\right)$$

जहाँ, MR = सीमान्त लागत (Marginal Revenue)

AR = औसत आगम (Average Revenue)

e = मांग की लोच (Elasticity of Demand)

2. वक्रों की सहायता से सीमान्त आगम, औसत आगम तथा कुल आगम के सम्बन्ध को बताइए।
3. पूर्ण प्रतियोगिता तथा अपूर्ण प्रतियोगिता में औसत आगम तथा सीमान्त आगम वक्रों के सम्बन्ध की व्याख्या कीजिए।

15.8. सन्दर्भ पुस्तकें

1. Micro Economics – Kotsyya MacMillan Publications Ltd.
2. Advanced Economics – H.L. Ahuja

S. Chand And Company Ltd. Ram Nagar, New Delhi 110055

3. उच्च वित्तीय प्रबन्ध — डॉ. एस.पी. गुप्ता

साहित्य भवन पब्लिशर्स एवं डिस्ट्रीब्यूटर्स, आगरा, 282003

4. व्यवसायिक वित्त — डॉ. एस.सी. शर्मा

साहित्य भवन पब्लिशर्स एवं डिस्ट्रीब्यूटर्स, आगरा, 282003

NMDC-222

UNIT–16 CAPITAL BUDGETING & PRACTICES (पूँजी बजटिंग और अभ्यास)

इकाई संरचना :–

16.1. उद्देश्य

16.2. प्रस्तावना

16.3. पूँजी बजटिंग का अर्थ

16.4. पूँजी बजटिंग प्रक्रिया

16.5. पूँजी बजटिंग की प्रकृति एवं परिभाषा

16.6. पूँजी बजटिंग निर्णयों की विशेषतायें

16.7. पूँजी बजटिंग का महत्व

16.8. पूँजी बजटिंग निर्णयों के प्रकार

16.9. पूँजी बजटिंग की तकनीकि

16.10. पूँजी बजटिंग की आवश्यकता

16.11. पूँजी बजटिंग का महत्व

16.12. पूँजी बजटिंग पर नियंत्रण

16.13. अग्रेतर अध्ययन

16.14. संभावित प्रश्न

16.1 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप —

- पूँजी बजटिंग की अवधारणा को परिभाषित कर सकेंगे;
- पूँजी बजटिंग प्रक्रिया एवं प्रकृति का विवेचन कर सकेंगे;
- पूँजी बजटिंग की विशेषताओं को सूचीबद्ध कर सकेंगे;
- पूँजी बजटिंग की तकनीकि की पहचान कर सकेंगे; एवं
- पूँजी खर्च पर नियंत्रण के तरीकों की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

NMDC-222

16.1. प्रस्तावना

एक प्रगतिशील व्यवसाय सदैव आगे बढ़ता रहता है। इसकी स्थायी सम्पत्तियों एवं अन्य साधनों में सम्बर्द्धन होता रहता है या सम्बर्द्धन की आवश्यकता होती है। यह भी निर्विवाद सत्य है कि अधिकतम लाभ को जारी रखने के लिए नयी पद्धति अपरिहार्य होती है। परन्तु नयी पद्धति के लिए आवश्यक हो जाता है कि नयी योजना के रूप में स्थायी सम्पत्तियों में विनियोग किया जाता रहे। इस प्रकार के विनियोग के लिए दीर्घकालीन पूँजी की आवश्यकता पड़ती है और इस प्रकार के विनियोग की पूँजी को विनियोग या पूँजी खर्च कहते हैं। इस सफल व्यवसाय संचालन में इस प्रकार के पूँजी का खर्च अनुमान उतना ही महत्वपूर्ण होता है जितना दिन-प्रतिदिन के कार्य के लिए कार्यशील पूँजी का अनुमान महत्वपूर्ण होता है।

16.2. पूँजी बजटिंग का अर्थ

पूँजी बजटिंग प्रबन्धकीय निर्णय की बहुत महत्वपूर्ण या जटिल समस्या है। इसका सम्बन्ध एक क्रमबद्ध कार्यक्रम को बनाने या लागू करने से होता है। इसमें ऐसे खर्चों का नियोजन शामिल है जिनमें कई वर्षों तक प्रतिफल प्राप्त करने की सम्भावना होती है। पूँजी बजटिंग के अन्तर्गत प्रस्तावित पूँजी खर्चों या उनके अर्थ-प्रबन्धन पर विचार किया जाता है और उपलब्ध संसाधनों का अधिकतम लाभप्रद प्रयोग देने वाली परियोजना का ही चुनाव किया जाता है। चार्ल्स टी. हार्नग्रेन के अनुसार, ‘‘पूँजी बजटिंग प्रस्तावित पूँजी कार्यों को बनाने व उनके अर्थप्रबन्धन करने का एक दीर्घकालीन नियोजन है।’’ इसी प्रकार का दृष्टिकोण मेन्स डी. रिचर्डस् व पॉल एस. ग्रीनलो भी रखते हैं। जब वे कहते हैं कि पूँजी बजटिंग सामान्यतया दीर्घकालीन प्रत्याय देने वाली उत्पादन करकों की प्राप्ति से सम्बन्धित है। परन्तु इन दीर्घकालीन विनियोगों में विनियोजन करते समय लाभ व धन का अधिकीकरण ही मुख्य उद्देश्य रखता है इसी कारण आर.एम. लिन्च ने कहा है, ‘‘फर्म की दीर्घकालीन लाभदायता को अधिकतम बनाने के उद्देश्य के लिए उपलब्ध पूँजी के विकास का विनियोग पूँजी में निहित है।’’ हालाँकि दीर्घकालीन फण्ड का उगाहना भी पूँजी बजटिंग का अंग है। इस अर्थ में पूँजी बजटिंग का अर्थ पूँजी प्राप्ति व पूँजीगत खर्चों से होता है। इन दोनों के समन्वय में अनुमान लगाने पड़ते हैं। इस प्रकार हम्पूटन जॉन जे. ने इसे पूँजी की प्राप्ति व विनियोग की औपचारिक प्रक्रिया माना है। चूँकि प्राप्ति किये गये फण्ड को विभिन्न स्थायी परिसम्पत्तियों में वितरण करना पड़ता है। अतः इसे दीर्घकालीन विनियोग निर्णयन भी कहते हैं।

इस प्रकार पूँजी बजटिंग एक निर्णय प्रक्रिया का रूप धारण कर लेती है जिसके माध्यम से एक संख्या सम्बर्द्धन, प्रतिस्थापन आदि के लिए विभिन्न स्थायी सम्पत्तियों के क्रय का मूल्यांकन करती है। इस अर्थ में जैसा कि ‘‘एल.जे. गिटमैन’’ ने कहा है — पूँजी बजटिंग पूँजी खर्च विकल्पों के निर्माण, मूल्यांकन, चुनाव तथा देखभाल की (follow up) समूची प्रक्रियाओं को सम्बोधित करती है। इस प्रक्रिया से जो बजट बनता है उसे पूँजी खर्च बजट कहते हैं।

16.3. पूँजी बजटिंग प्रक्रिया (CAPITAL BUDGETING PROCESS)

गिटमैन द्वारा प्रतिपादित विचार के आधार पर पूँजी बजटिंग प्रक्रिया को 5 भागों में विभाजित किया जाता है —

(i) परियोजना का निर्माण या सृजन

(ii) परियोजना का मूल्यांकन

(iii) परियोजना का चुनाव

(iv) परियोजना का क्रियान्वयन

(v) देखभाल (Follow up)

(i) परियोजना का निर्माण या सृजन (Project Generation)

पूँजी खर्च प्रस्ताव या परियोजना दो प्रकार के होते हैं —

(i) आय बढ़ाने वाले प्रस्ताव

(ii) लागत में कमी वाले प्रस्ताव

प्रथम श्रेणी में नये उत्पाद को लागू करना, वर्तमान क्षमता को बढ़ाना नये व्यवसाय को चालू करना आदि से सम्बन्धित प्रस्तावों को शामिल करते हैं।

दूसरी श्रेणी में ऐसे प्रतिस्थापन प्रस्तावों को शामिल करते हैं जिनसे उत्पादन या संचालन स्तर में बिना किसी परिवर्तन के लागत में बचत की संभावना होती है। यह भी माना जाता है कि ऐसे प्रस्तावों की पर्याप्त संख्या सृजित हो ताकि फण्ड का पूर्ण व क्षम्य प्रयोग हो सके।

(ii) परियोजना का मूल्यांकन (Project Evaluation)

इसके अन्तर्गत रोकड़ बहाव के रूप में लागत व लाभों का अनुमान तथा परियोजना की उपयुक्तता की जाँच के लिए उचित मापदण्ड का चुनाव शामिल होता है। जहाँ तक लागत व लाभों के अनुमान का प्रश्न है यह कहा जाता है कि यह कार्य योग्य व्यक्तियों को सौंप देना चाहिए।

(iii) परियोजना का चुनाव (Project Selection)

इसके अन्तर्गत परियोजनाओं की स्क्रीनिंग व उनका चुनाव शामिल है। यद्यपि परियोजनाओं का अन्तिम अनुमोदन उच्च प्रबन्ध द्वारा ही किया जाता है। फिर भी विचाराधीन परियोजनाओं का प्रबन्ध के विभिन्न स्तर पर स्क्रीनिंग किया जा सकता है। सामान्यतः स्क्रीनिंग व चुनाव के लिए कोई मानक कार्यविधि निर्धारित नहीं की जा सकती है।

(iv) परियोजना का क्रियान्वयन (Project Execution)

जब परियोजनाओं का अन्तिम रूप से चुनाव कर लिया जाता है तो उनके लिए फण्ड का वितरण होता है — फण्ड वितरण की इस औपचारिक योजना को पूँजी बजट कहते हैं। यह उच्च प्रबन्ध या अधिशासी समिति का दायित्व है कि वह देखे कि पूँजी बजट में वितरण फण्ड के अनुसार ही वास्तविक खर्च किये जायें। ऐसे पूंजीगत खर्च पर नियंत्रण बहुत ही आवश्यक है।

(v) देखभाल (Follow up)

पूर्ण हो चुके परियोजनाओं के परिणामों की देखभाल के लिए एक पद्धति अवश्य अपनानी चाहिए। वास्तविक निष्पादन की बजटेड समंकों की तुलना करके पूर्वानुमान की प्रक्रिया को और अधिक अच्छा व सुदृढ़ बनाया जा सकता है।

16.4. पूँजी बजटिंग की प्रकृति एवं परिभाषा (NATURE AND DEFINITION OF CAPITAL BUDGETING)

पूँजी बजटिंग का अर्थ (Meaning of Capital Budgeting) — ''पूँजी बजटिंग एक ऐसी विधि है जिसमें दीर्घकालीन सम्पत्तियों में विनियोग से सम्बन्धित निर्णय लिये जाते हैं। यह एक ऐसी प्रक्रिया है जिससे यह निर्णय लिया जाता है कि किसी विशेष सम्पत्ति में जिससे एक वर्ष से अधिक की अवधि तक लाभ होने की सम्भावना है, विनियोग किये जायें या नहीं।''

आर.एम. लिन्च के अनुसार — ''पूँजी बजटिंग फर्म की दीर्घकालीन लाभदायकता को अधिकतम करने के उद्देश्य से व्यवसाय की उपलब्ध पूँजी को विनियोग करने की योजना है।''1

मिल्टन एच. स्पेन्सर के शब्दों में — ''पूँजी बजटन सम्पत्तियों के लिए व्ययों का नियोजन है जिससे भावी अवधियों में लाभ प्राप्त होंगे।''2

अतः पूँजी बजटिंग के निर्णय को इस प्रकार से परिमाणित किया जा सकता है कि यह दीर्घकालीन सम्पत्तियों में कोषों के विनियोग का निर्णय है जो इन सम्पत्तियों के जीवनकाल तक इनके लाभ प्राप्त करने की सम्भावना से किया जाता है। ये लाभ बढ़े हुए विक्रय या घटी हुई लागत के रूप में हो सकते हैं। पूँजी बजटिंग निर्णयों में व्यवसाय के विस्तार, दीर्घकालीन सम्पत्तियों के

क्रय, आधुनिकीकरण और प्रतिस्थापन सम्बन्धी निर्णय लेना सम्मिलित होता है। एक फर्म के साथ विभिन्न प्रकार के विनियोग प्रस्ताव विचाराधीन हो सकते हैं। यह उन प्रस्तावों के प्रकार के अनुसार उन सबको अथवा उनमें से किसी एक को अथवा उनमें से कुछ प्रस्तावों को स्वीकार कर सकती है।

16.5. पूँजी बजटिंग निर्णयों की विशेषताएँ (FEATURES OF CAPITAL BUDGETING DECISION)

पूँजी बजटिंग की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं :—

(i) कोषों को दीर्घकालीन सम्पत्तियों में विनियोग किया जाता है।

(ii) भावी लाभों की सम्भावना में वर्तमान में कोषों का विनियोग किया जाता है।

(iii) फर्म को भावी लाभ कई वर्षों तक होते रहते हैं।

(iv) पूँजी बजटिंग निर्णय काफी जोखिमपूर्ण होते हैं क्योंकि भावी लाभ अनिश्चित होते हैं।

1. "Capital Budgeting consists in planning the deployment of available capital for a purpose of maximising the long term profitability of the firm." — R.M. Lyinch.

2. "Capital Budgeting involves the planning of expenditure for assets, the return from which will be realized in future time period." — Milton H. Spencer.

16.6. पूँजी बजटिंग निर्णयों का महत्व (IMPORTANCE OF CAPITAL BUDGETING DECISION)

वित्तीय निर्णयन में पूँजी बजटिंग निर्णयों का अत्यधिक महत्व है। ऐसे निर्णयों का महत्व निम्नलिखित कारणों से है :—

(i) ऐसे निर्णय फर्म की लाभदायकता को प्रभावित करते हैं।

(ii) दीर्घ अवधि तक बजटिंग निर्णय फर्म पर अपना प्रभाव डालता है।

(iii) एक बार किये गये पूँजी बजटिंग निर्णय वापस नहीं लिये जाते।

(iv) भारी कोषों की आवश्यकता पड़ती है।

(v) स्थायी परिसम्पत्तियों में विनियोग से फर्म की जोखिम की स्थिति में भी परिवर्तन आ सकता है।

(vi) इस प्रकार के निर्णय लेना कठिन होता है।

16.7. पूँजी बजटिंग निर्णयों के प्रकार (KINDS OF CAPITAL BUDGETING DECISIONS)

एक फर्म के समक्ष विभिन्न प्रकार के विनियोग प्रस्ताव विचाराधीन हो सकते हैं। अतः इन प्रस्तावों के प्रकार के अनुसार उन सबको अथवा उनमें से किसी एक को अथवा उनमें से कुछ प्रस्तावों को स्वीकार कर सकती है। ऐसे निर्णय निम्न प्रकार के हो सकते हैं —

(i) स्वीकार अथवा अस्वीकार निर्णय (Accept-Reject Decisions) – पूँजी बजटिंग का यह एक मूल निर्णय होता है। यदि फर्म किसी प्रस्ताव अथवा परियोजना (project) को स्वीकार (accept) करती है तो फर्म इसमें विनियोग करेगी और यदि इसे अस्वीकार (reject) करती है तो फर्म इसमें विनियोग नहीं करेगी। सामान्यतः उन सभी प्रस्तावों (proposals) अथवा परियोजनाओं (projects) को स्वीकार किया जाता है जिनमें प्राप्त आय (return) की दर एक पूर्व निर्धारित न्यूनतम दर से अधिक होती है और शेष सभी प्रस्तावों को अस्वीकार किया जाता है। इस मापदण्ड के आधार पर, समस्त स्वतन्त्र प्रस्तावों को या तो स्वीकार किया जाता है अथवा अस्वीकार। स्वतन्त्र प्रस्ताव उन प्रस्तावों को कहते हैं जो आपस में एक-दूसरे के प्रतियोगी नहीं हैं तथा सभी प्रस्तावों को एक साथ ही स्वीकृत किया जा सकता है। अतः वे सभी प्रस्ताव, जो न्यूनतम आय के मापदण्ड को पूरा करते हैं, स्वीकार कर लिए जाते हैं।

(ii) परस्पर प्रतिस्पर्द्धी निर्णय (Mutually Competitive Decisions) – ऐसे निर्णय उन प्रस्तावों के सम्बन्ध में करने होते हैं जो एक-दूसरे के इस प्रकार प्रतियोगी हैं कि एक प्रस्ताव को स्वीकार करते ही दूसरे प्रस्ताव को अस्वीकार करना होगा। उदाहरणतया एक कम्पनी अपने प्लाण्ट के निर्णय के लिए दो स्थानों X और Y पर विचार कर रही है। यदि प्लाण्ट लगाने के लिए X स्थान का चुनाव किया जाता है तो Y स्वतः ही अस्वीकृत हो जायेगा।

(iii) प्राथमिकता क्रय सम्बन्धी निर्णय (Priority Order Decisions) – यदि किसी फर्म के पास असीमित कोष हों तो उन सभी स्वतन्त्र परियोजनाओं को स्वीकार कर लिया जाता है जो एक पूर्व-निर्धारित दर से अधिक दर पर आय प्रदान करती है परन्तु वास्तविक जीवन में अधिकांश फर्मों के पास कोषों की मात्रा सीमित ही होती है। अतः फर्म को इन कोषों को विनियोजित करने का एक प्राथमिकता क्रम निर्धारित कर देना चाहिए। फर्म अपने कोषों को विभिन्न परियोजनाओं

में इस प्रकार वितरित करती है कि फर्म के लाभ अधिकतम हो जाएँ। परियोजनाओं का प्राथमिकता क्रम एक पूर्व-निर्धारित मापदण्ड के अनुसार निर्धारित किया जायेगा, जैसे — आय की दर। इस आधार पर वे सभी परियोजनाएँ, जिनकी आय की दर अधिकतम है, स्वीकार की जायेगी और शेष सभी परियोजनाएँ अस्वीकार की जायेंगी।

16.8. पूँजी बजटिंग की तकनीकि (TECHNIQUE OF CAPITAL BUDGETING)

पूँजी व्यय से सम्बन्धित निर्णय लेने के लिए दो मापदण्ड हैं —

(i) लेखांकन लाभ मापदण्ड

(ii) रोकड़ प्रवाह मापदण्ड

लेखांकन मापदण्ड के अन्तर्गत पूँजीगत व्यय निर्णय लेने के लिए केवल एक विधि है, इस विधि को प्रत्याय की औसत दर विधि कहा जाता है। रोकड़ प्रवाह मापदण्ड के अन्तर्गत पूँजीगत व्यय निर्णय लेने के लिए किसी परियोजना के रोकड़ अन्तर्वाहों (ैंप् ग्हत्दै) और रोकड़ बहिर्वाहो (ैंप् दलूत्दै) पर विचार किया जाता है। रोकड़ अन्तर्वाहों में किसी परियोजना से प्राप्त होने वाली रोकड़ को शामिल किया जाता है और बहिर्वाहों में परियोजना में लगायी जाने वाली रोकड़ को शामिल किया जाता है।

रोकड़ प्रवाह मापदण्ड के अन्तर्गत मुद्रा के समय मूल्य (Time Value of Money) को भी ध्यान में रखा जाता है। रोकड़ प्रवाह मापदण्ड रोकड़ प्रवाह पर आधारित है न कि लेखांकन लाभों पर। अतः इससे लेखांकन अनिश्चिततायें दूर हो जाती हैं। रोकड़ निम्नलिखित विधियों को शामिल किया जाता है

(i) वापसी अदायगी विधि (Pay Back Method)

प्रवाह मापदण्ड के अन्तर्गत

(ii) अपलेखित रोकड़ विधि (Discounted Cash Flow Method)

अपलेखित रोकड़ विधि पुनः तीन प्रकार की होती है —

(a) शुद्ध वर्तमान विधि (Net Present Value Method)

(b) लाभप्रदतता सूचकांक विधि (Profitability Index Method)

(c) प्रत्याय की आन्तरिक दर विधि (Internal Rate of Return Method)

(i) वापसी अदायगी विधि (Pay Back Method)

पूँजी विनियोग निर्णय लेने के लिए प्रयोग की जाने वाली विधियों में सबसे सरल और सबसे अधिक प्रचलित परम्परा विधि है। इस विधि में यह गणना की जाती है कि किसी परियोजना में मूलतः विनियोग की गयी राशि कितने वर्षों में वापस प्राप्त की जायेगी। वापसी अदायगी अवधि वह अवधि है जो किसी परियोजना में मूल विनियोग को वापस प्राप्त करने में लगेगी।

इस विधि से ज्ञात की गयी वापसी अदायगी अवधि की तुलना प्रबन्ध द्वारा पूर्व निर्धारित अधिकतम अदायगी अवधि से की जाती है। यदि वास्तविक अदायगी अवधि पूर्व निर्धारित अदायगी अवधि से कम है तो परियोजना को स्वीकार कर लिया जायेगा अन्यथा परियोजना को अस्वीकार कर दिया जायेगा। वापसी अदायगी अवधि की गणना दो विधियों से की जाती है

NMDC-222

प्रथम विधि — यह विधि तब अपनायी जाती है जब परियोजना से प्राप्त रोकड़ प्रवाह प्रतिवर्ष समान हो। ऐसी दशा में अदायगी अवधि की गणना करने के लिए विनियोग की प्रारम्भिक राशि को समान वार्षिक रोकड़ अन्तर्प्रवाह की राशि से भाग किया जाता है —

$$\text{PayBack Period(PB)} = \frac{\text{Investment}}{\text{Constant Annual Cash Flow}}$$

द्वितीय विधि — यह विधि तब अपनायी जाती है जब परियोजना से प्राप्त रोकड़ प्रवाह प्रतिवर्ष असमान हो। ऐसी दशा में अदायगी अवधि की गणना करने के लिए प्रत्येक वर्ष के रोकड़ अर्न्तप्रवाह को तब तक जोड़ते जायेंगे जब तक कि वह प्रारम्भिक विनियोग की राशि के बराबर नहीं हो जाते।

(ii) अपलेखित रोकड़ प्रवाह पर आधारित विधियाँ

(Methods Based on Discounted Cash Flow)

प्रत्याय की औसत दर (ARR) तथा पे-बैक विधियों की मुख्य सीमा यह है कि मुद्रा के समय मूल्य को ध्यान में नहीं रखती है। ब्याज की उपस्थिति मुद्रा को समय मूल्य प्रदान करती है। समय मूल्य अवधारणा के अनुसार आज एक रुपया एक वर्ष के बाद एक रुपये से अधिक मूल्यवान होता है।

अतः विनियोग प्रस्तावों पर निर्णय लेते समय हम प्रायः भविष्य के रोकड़ प्रवाह का वर्तमान मूल्य ज्ञात करना पड़ता है। इसके लिए हम भविष्य के रोकड़ प्रवाहों को उनके अनुरूप उनके वर्तमान मूल्य माप से गुणा करते हैं —

अपलेखित रोकड़ प्रवाह पर निम्नलिखित विधियाँ आधारित हैं —

(i) शुद्ध वर्तमान मूल्य विधियाँ (Net Present Value Method)

(ii) लाभदायकता सूचकांक (Profitability Index)

(iii) प्रत्याय की आन्तरिक दर विधि (Internal Rate of Return Method)

(i) शुद्ध वर्तमान मूल्य विधियाँ (Net Present Value (NPV) Method)

शुद्ध वर्तमान मूल्य विधि अपलेखित रोकड़ प्रवाह (Discounted Cash Flow or DCF)

विधियों में से एक है। इस विधि में रोकड़ बहिर्वाहों तथा रोकड़ अन्तर्वाहों के वर्तमान मूल्य को ज्ञात किया जाता है और इसके शुद्ध रोकड़ अन्तर्वाहों के वर्तमान मूल्य में से रोकड़ बहिर्वाहों के वर्तमान मूल्य को घटाया जाता है। अन्तर को शुद्ध वर्तमान मूल्य (Net Present Value or NPV) कहा जाता है। अतः NPV = PV of Inflow – PV of Outflow अन्य शब्दों में, यदि किसी परियोजना के प्रारम्भ में ही विनियोग किया जाता है तो NPV निम्न सूत्र की सहायता से ज्ञात की जायेगी :

NPV = [(Cash Inflow in 1st year × PVF1) + (Cash inflow in 2nd year times PVF2)
+ (Cash Inflow in 3rd year × PVF3) + ... (Cash Inflow in nth year × PVFn)]
– [Initial Cash Outflow × PVF0]

यदि प्रश्न में PVF नहीं दी हुई है तो NPV को निम्न सूत्र की सहायता से ज्ञात किया जायेगा :

$$NPV = \left[\text{CashInflowin1styear} \times \frac{1}{(1+r)^1} \right] + \left[\text{CashInflowin2ndyear} \times \frac{1}{(1+r)^2} \right]$$

$$+ NPV \left[\text{CashInflowin3rdyear} \times \frac{1}{(1+r)^3} \right] + NPV \left[\text{CashInflowin nthyear} \times \frac{1}{(1+r)^n} \right]$$

$$- \left[\text{CashInflowoutflow} \times \frac{1}{(1+r)^0} \right]$$

Here r = rate of interest (i.e. Cost of Capital)

n = expected life of the proposal

यदि परियोजना का कोई अवशेष मूल्य (Salvage value) भी हो तो इसे अन्तिम वर्ष के रोकड़ अन्तर्वाह में जोड़ दिया जाता है। इसी प्रकार, यदि परियोजना में कुछ कार्यशील पूँजी (working capital) की भी आवश्यकता हो तो इसे परियोजना की प्रारम्भिक लागत में तथा अन्तिम वर्ष के रोकड़ अन्तर्वाह दोनों में जोड़ दिया जाता है।

शुद्ध वर्तमान विधि के आधार पर किसी परियोजना का मूल्यांकन करना — यदि किसी परियोजना की NPV धनात्मक (Positive) है तो परियोजना को स्वीकार कर लेना चाहिए, यदि NPV ऋणात्मक (Negative) है तो परियोजना को अस्वीकार कर देना चाहिए और यदि NPV शून्य (Zero) है तो परियोजना को उसी दशा में स्वीकार किया जायेगा यदि उससे कुछ गैर-वित्तीय लाभ प्राप्त होते हों।

यदि विभिन्न विनियोग प्रस्तावों में से किसी एक प्रस्ताव का चुनाव करना हो तो जिस परियोजना की शुद्ध वर्तमान विधि (NPV) सबसे अधिक होती है, उसे प्राथमिकता दी जाती है और उसे पहला क्रमांक (Number One Ranking) दिया जाता है और जिस परियोजना की शुद्ध वर्तमान विधि (NPV) सबसे कम होती है, उसे अन्तिम क्रमांक दिया जाता है।

लाभ (Advantages) – इस विधि के प्रमुख लाभ निम्नलिखित हैं —

1. यह विधि मुद्रा के समय मूल्य का ध्यान रखती है।
2. यह विधि परियोजना के पूरे जीवनकाल को ध्यान में रखती है।
3. सम्पदा अधिकतम करना।

हानियाँ (Disadvantages) – इस विधि की प्रमुख हानियाँ निम्नलिखित हैं —

1. समझने और प्रयोग करने में कठिन।
2. परियोजना की आवश्यक दर निर्धारण करने में कठिनाई।
3. यदि दो परियोजनाओं में प्रारम्भिक विनियोग अलग-अलग हो तो यह विधि सन्तोषजनक परिणाम नहीं देती।
4. यदि दो परियोजनाओं का जीवनकाल अलग-अलग हो तो यह विधि सन्तोषजनक परिणाम नहीं देती।

(ii) लाभप्रदता सूचकांक (Profitability Index or PI)

किसी परियोजना को अपलेखित रोकड़ प्रवाह (DCF) के आधार पर मूल्यांकन करने की दूसरी विधि लाभप्रदता सूचकांक विधि है। इस विधि को लाभ-लागत अनुपात (Benefit Cost Ratio) भी कहा जाता है।

यह विधि शुद्ध वर्तमान विधि (NPV) से मिलती-जुलती है। यह विधि परियोजना से प्राप्य प्रत्यायों का प्रति रुपया वर्तमान मूल्य मापती है। NPV विधि की एक मुख्य कमी यह थी कि जब विभिन्न परियोजनाओं के लिए आवश्यक विनियोग की राशि भिन्न-भिन्न हो तो यह सन्तोषजनक परिणाम नहीं देती है। PI विधि इस समस्या का हल प्रदान करती है। अतः NPV विधि उस दशा में अच्छी समझी जाती है जब विभिन्न परियोजनाओं में प्रारम्भिक विनियोग की राशि समान हो और PI विधि उस दशा में अपनाई जाती है जब विभिन्न परियोजनाओं में विनियोग की राशि अलग-अलग हो।

लाभप्रदता सूचकांक की गणना का सूत्र निम्नलिखित है :

$$PI = \frac{Present Value of Cash Inflows}{Present Value of Cash Outlays or Outflows}$$

यदि PI 1 से अधिक है तो परियोजना को स्वीकार किया जाएगा। यदि PI 1 से कम है तो परियोजना को अस्वीकार किया जाएगा और यदि PI 1 के बराबर है तो परियोजना को केवल गैर-वित्तीय तत्वों के आधार पर स्वीकार किया जा सकता है।

यदि PI तकनीक के आधार पर हमें कई परियोजनाओं में से एक परियोजना का चयन करना हो तो जिस परियोजना का PI सबसे अधिक होगा, उसी का चयन किया जायेगा।

लाभ (Advantages) – लाभदायकता सूचकांक के प्रमुख लाभ निम्नलिखित हैं — लाभदायकता सूचकांक (PI) विधि के निम्नलिखित लाभ हैं :

1. अन्य DCF तकनीकों की भाँति ही PI विधि भी मुद्रा के समय मूल्य का ध्यान रखती है।
2. यह परियोजना के जीवनकाल के समस्त रोकड़ प्रवाहों को ध्यान में रखती है।
3. लाभदायकता सूचकांक (PI) विधि उस दशा में शुद्ध वर्तमान विधि (NPV) विधि की तुलना में विश्वसनीय समझी जाती है जब विभिन्न परियोजनाओं में प्रारम्भिक विनियोग की राशि अलग-अलग हो। उदाहरण के लिए, दो परियोजनाओं की शुद्ध वर्तमान विधि एक समान जैसे 20,000 रु. है परन्तु परियोजना A में 1,00,000 रु. प्रारम्भिक विनियोग की आवश्यकता है, जबकि परियोजना B में केवल 50,000 रु.। लाभदायकता सूचकांक B परियोजना का चयन करेगा जबकि शुद्ध वर्तमान विधि के अनुसार दोनों परियोजनाओं को एक समान लाभप्रद माना जाएगा।

हानियाँ (Disadvantages) – लाभदायकता सूचकांक की प्रमुख हानियाँ निम्नलिखित हैं —

1. यह पद्धति समझने में और लागू करने में कठिन है।
2. इस पद्धति में गणनाएँ काफी पेचीदा होती हैं।

(iii) प्रत्याय की आन्तरिक दर विधि (Internal Rate of Return or IRR Method)

प्रत्याय की आन्तरिक दर विधि पूँजी विनियोग निर्णय लेने की एक और विधि है जो Discounted Cash Flow (DCF) पर आधारित है। प्रत्याय की आन्तरिक दर विधि (IRR) को समय समायोजित प्रत्याय की दर (Time Adjusted Rate of Return), पूँजी की सीमान्त कार्यकुशलता (Marginal Efficiency of Capital), पूँजी की

सीमान्त उत्पादकता (Marginal Productivity of Capital) और विनियोग पर उपार्जित दर (Yield on Investment) आदि नामों से भी जाना जाता है।

शुद्ध वर्तमान विधि (NPV) की तरह ही प्रत्याय की आन्तरिक दर विधि (IRR) भी रोकड़ प्रवाहों की कटौती करके मुद्रा के समय मूल्य को ध्यान में रखती है परन्तु दोनों पद्धतियों में कटौती करने का आधार बिल्कुल अलग-अलग है। शुद्ध वर्तमान विधि के अन्तर्गत कटौती की दर वह दर होती है जो प्रत्याय की आवश्यक अथवा वांछित (required or desired) दर होती है और यह पहले से ही निर्धारित होती है। अतः इस दर का निर्धारण करते समय रोकड़ अन्तर्वाहों और रोकड़

बहिर्वाहों का ध्यान नहीं रखा जाता। इसके विपरीत, प्रत्याय की आन्तरिक दर विधि किसी विनियोग प्रस्ताव के आन्तरिक तथ्यों पर आधारित होती है। यह पूर्ण रूप से परियोजना के रोकड़ अन्तर्वाहों तथा रोकड़ बहिर्वाहों से निर्धारित होती है। अतः प्रत्याय की आन्तरिक दर विधि वह दर है जो किसी परियोजना से अर्जित की जाती है। अतः इसे प्रत्याय की आन्तरिक दर (Internal Rate of Return) कहा जाता है।

प्रत्याय की आन्तरिक दर विधि कटौती की वह दर है जिस पर रोकड़ अन्तर्वाहों का वर्तमान मूल्य रोकड़ बहिर्वाहों के वर्तमान मूल्य के बराबर होता है। दूसरे शब्दों में, प्रत्याय की आन्तरिक दर विधि वह दर है जिस पर किसी परियोजना की शुद्ध वर्तमान विधि शून्य होती है।

प्रत्याय की आन्तरिक दर विधि के आधार पर किसी परियोजना का मूल्यांकन करना — प्रत्याय की आन्तरिक दर विधि के अनुसार किसी परियोजना का मूल्यांकन करने के लिए उस परियोजना की प्रत्याय की आन्तरिक दर विधि की तुलना इसकी पूर्व-निर्धारित आवश्यक दर (required rate of return) से की जाती है। यदि प्रत्याय की आन्तरिक दर विधि इस आवश्यक दर से अधिक है तो परियोजना को स्वीकार किया जाता है। इसके विपरीत, यदि प्रत्याय की आन्तरिक दर विधि इस आवश्यक दर से कम है तो परियोजना को अस्वीकार कर दिया जाता है।

यह बात नोट करने योग्य है कि प्रत्याय की आन्तरिक दर विधि पर परियोजना की शुद्ध वर्तमान विधि शून्य होती है। अतः यदि प्रत्याय की आन्तरिक दर विधि आवश्यक दर से अधिक है ाो परियोजना को इसलिए स्वीकार किया जाता है क्योंकि इस दर पर परियोजना की शुद्ध वर्तमान विधि की धनात्मक (positive) होगी। इसी प्रकार, यदि प्रत्याय की आन्तरिक दर विधि आवश्यक दर से कम है तो परियोजना को इसलिए अस्वीकार किया जाता है क्योंकि इस दर पर परियोजना की शुद्ध वर्तमान विधि ऋणात्मक (negative) होगी। यदि कई परियोजनाएँ विचाराधीन हैं और इनमें से सबसे श्रेष्ठ का चयन करना है तो जिस परियोजना की प्रत्याय की आन्तरिक दर विधि सबसे अधिक होगी, उसका चयन किया जाएगा।

Procedure to find out IRR

Step I – औसत रोकड़ प्रवाहों के आधार पर अनुमानित आदायगी अवधि (fake pay back period) ज्ञात कीजिए :

$$\text{Fake Pay Back Period} = \frac{\text{Initial Cash Outflows}}{\text{Average Cash Inflows}}$$

$$\text{Average Cash Inflows} = \frac{\text{Total Cash Inflows during the life of of the Project}}{\text{Number of Years of life}}$$

Step II – Annuity Table A-2 में (जो इस अध्याय के अन्त में दी हुई है) परियोजना के वर्षों की संख्या के सामने वाली लाइन में fake pay back period के निकटतम संख्या को खोजिए। ऐसी निकटतम संख्या किसी भी खाने में पाई जा सकती है। उस खाने में पाई जाने वाली दर 'प्रथम कटौती कर' होगी।

Step III – उपर्युक्त प्रकार से ज्ञात की गई 'प्रथम कटौती दर' के आधार पर परियोजना की शुद्ध वर्तमान विधि ज्ञात कीजिए। यदि शुद्ध वर्तमान विधि धनात्मक (positive) है तो एक दूसरी कटौती दर निर्धारित कीजिए जो प्रथम कटौती दर से ऊँची हो जिससे दोबारा निकाली गई शुद्ध वर्तमान विधि ऋणात्मक (negative) आ जाए। इसी प्रकार, यदि प्रथम कटौती दर से निकाली गई शुद्ध वर्तमान विधि ऋणात्मक है तो दूसरी कटौती दर प्रथम दर से नीची दर से लीजिए जिससे दोबारा निकाली गई शुद्ध वर्तमान विधि धनात्मक आ जाए। अब हमारे पास दो अलग-अलग दरों से निकाली गई दो शुद्ध वर्तमान विधि हैं जिनमें से एक धनात्मक है और दूसरी ऋणात्मक।

Step IV – अब प्रत्याय की आन्तरिक दर विधि ज्ञात करने के लिए निम्न सूत्र प्रयोग किया जायेगा :

IRR = Lower Discount Rate

$$+\frac{NPV at Lower Discount Rate}{NPV at Lower Discount Rate - NPV at Higher Discount Rate}$$

× Difference in Discount Rates

प्रत्याय की आन्तरिक दर विधि (IRR) विधि के लाभ (Advantages of IRR Method) –

प्रत्याय की आन्तरिक दर विधि के लाभ निम्नलिखित हैं —

(1) अन्य DCF तकनीकों की भाँति ही प्रत्याय की आन्तरिक दर विधि विधि भी मुद्रा के समय मूल्य का ध्यान रखती है।

(2) यह परियोजना के जीवनकाल के समस्त वर्षों के रोकड़ अन्तर्वाहों और रोकड़ बहिर्वाहों का ध्यान रखती है।

(3) यद्यपि प्रत्याय की आन्तरिक दर विधि की गणना करने में काफी जटिल गणनाएँ करनी होती हैं परन्तु प्रत्याय की आन्तरिक दर विधि का अर्थ समझना, शुद्ध वर्तमान विधि की तुलना में काफी सरल हैं, जैसे — यह समझना काफी सरल है कि किसी परियोजना की प्रत्याय की आन्तरिक दर विधि 18इ है जबकि इसकी पूर्व-निर्धारित आवश्यक दर 10इ है बजाय यह कहने के कि इस परियोजना की शुद्ध वर्तमान विधि 14,350 रु. है।

(4) प्रत्याय की आन्तरिक दर विधि में पूर्व निर्धारित आवश्यक दर का प्रयोग नहीं किया जाता है। यह स्वयं एक ऐसी दर (अर्थात् IRR) निर्धारित करती है जो किसी परियोजना की लाभप्रदताको सूचित करती है।

(5) यह विधि अंशधारियों की सम्पदा को अधिकतम करने के उद्देश्य को पूरा करती है। प्रत्याय की आन्तरिक दर विधि के आधार पर केवल उन्हीं परियोजनाओं को स्वीकृत किया जाएगा जिनकी प्रत्याय की आन्तरिक दर विधि पूर्व-निर्धारित आवश्यक दर से अधिक है। अतः अंशों के मूल्य बढ़ोत्तरी की तरफ अग्रसर होंगे जिससे अंशधारियों की सम्पदा अधिकतम होती जाएगी।

NMBC-222

दोष (Disadvantages) – प्रत्याय की आन्तरिक दर विधि के प्रमुख दोष निम्नलिखित हैं—

(1) प्रत्याय की आन्तरिक दर विधि की गणना में काफी जटिल गणनाएँ होती हैं।

(2) कभी-कभी यह विधि एक से अधिक IRR प्रकट कर देती है जिससे किसी प्रस्ताव को स्वीकार अथवा अस्वीकार करना कठिन हो जाता है।

(3) प्रत्याय की आन्तरिक दर विधि की यह मान्यता है कि परियोजना के सभी रोकड़ अन्तर्वाहों को प्रत्याय की आन्तरिक दर विधि पर पुनः विनियोग कर दिया जाता है। यह मान्यता उचित नहीं है क्योंकि रोकड़ अन्तर्वाहों का अन्य उद्देश्यों के लिए प्रयोग किया जा सकता है, जैसे — लाभांश के बँटवारे में।

16.9. पूँजीगत बजटन की आवश्यकता (NEED OF CAPITAL BUDGETING)

पूँजी सम्पत्तियों में विनियोग एक बहुत महत्वपूर्ण परन्तु कठिन समस्या है। बजटन स्वयं में एक आवश्यक तंत्र है परन्तु पूँजी सम्पत्तियों के बजटन की आवश्यकता निम्नलिखित कारणों से और भी अधिक हो जाती है :

(1) पूँजीगत परियोजनाओं में बहुत धन का विनियोग होता है। अतः उनका कुशल बजटन आवश्यक है।

(2) पूँजीगत परियोजनाओं में विनियोजित धन एक स्थायी बन्धन (Permanent commitment) है। बिना महत्वपूर्ण हानि के इनसे धन तुरन्त वापस नहीं लिया जा सकता।

(3) पूँजीगत परियोजनाएं व्यवसाय के आगामी कई वर्षों की अर्जनों को प्रभावित करती हैं।

उदाहरण के लिए श्रम के स्थान पर मशीन के प्रतिस्थापन में व्यवसाय की स्थिर लागतें बढ़ जाती हैं।

(4) दीर्घकालीन विनियोग निर्णयों की पेचीदगियां अल्पकालीन विनियोग निर्णयों से अधिक विस्तृत होती हैं क्योंकि एक तो इनके निर्णयों का प्रभाव चालू वर्ष से भी आगे तक रहता है आरै इनकी शुद्धता का तुरन्त सही अनुमान नहीं लगाया जा सकता। दूसरे, इन परियोजनाओं का प्रभाव आगामी बहुत-से वर्षों तक रहने के कारण इनमें अनिश्चितता व जोखिम भी अधिक होती है। उपर्युक्त कारणों से व्यवसाय में कुशल पूंजीगत बजटन बहुत आवश्यक हो गया है। उद्योगों के बढ़ते हुए आकार व मशीनीकरण से इसकी आवश्यकता और भी बढ़ रही है।

16.10. पूँजी बजटिंग का महत्व (IMPORTANCE OF CAPITAL BUDGETING)

बजटन का महत्व निम्नलिखित है —

(1) यह बिक्री बजट में प्रदर्शित अतिरिक्त राशि को पूरा करने के लिए उत्पादन सुगमताओं के सम्बर्द्धन की सम्भावनाओं पर प्रकाश डालता है।

(2) पूँजी बजट के आधार पर नष्ट प्राय सम्पत्ति या प्रयोगविहीन सम्पत्ति की पुनर्स्थापना के लिए उपलब्ध विभिन्न वैकल्पिक सम्पत्तियों के प्रारूपों के बारे में ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है।

(3) दीर्घकालीन योजना व नीति निर्माण में सहायक होता है।

NMDC-222

(4) रोकड़ पूर्वानुमान व बजट के लिए आवश्यक होता है।

(5) सम्पत्ति पुनर्स्थापन व ह्रास के सम्बन्ध में एक ठोस नीति अपनाने में सहायक होता है।

(6) लागत-नियन्त्रण व लागत-कमी की विधियों पर विचार-विमर्श करते समय सहायक होता है।

(7) इस बजट के आधार पर हम यह देख सकते हैं कि मानवीय श्रम के स्थान पर मशीन का प्रयोग लाभकर होगा या नहीं।

(8) इसी प्रकार कार्य-दशाओं में सुधार या सुरक्षा विधियों की पूँजी लागत के सम्बन्ध में इस बजट का अनुमान लगा सकते हैं।

16.11. पूँजी-खर्च पर नियन्त्रण (CAPITAL EXPENDITURES CONTROL)

औद्योगिक इकाइयों में मशीनीकरण और स्वचालन के विस्तार से पूंजीगत व्ययों का नियन्त्रण बहुत महत्वपूर्ण हो गया है। पहले की तुलना में आजकल स्थायी सम्पत्तियों में विनियोग बहुत बढ़ गया है। इन व्ययों से कम्पनी की भावी नीति और दीर्घकालीन लाभप्रदता प्रभावित होती है। इसलिए इन व्ययों पर समुचित नियन्त्रण आवश्यक हो जाता है। इसके लिए प्रबन्ध-लेखापाल पूंजीगत व्ययों पर नियन्त्रण की एक प्रणाली क्रियान्वित कर सकता है जिसकी मुख्य बातें निम्नलिखित होती हैं :

(1) नियोजित विकास (Planned Development) – पूंजीगत सम्पत्तियों में विनियोग इस प्रकार नियोजित किये जायें जिससे कि कम्पनी के प्रत्येक विभाग या इकाई का सन्तुलित विकास हो। पूंजीगत विनियोग के अनुमोदन और परिपालन के लिए एक सुदृढ़ संगठन स्थापित किया जाय। इसके लिए एक 'बजट विनियोजन समिति' बनायी जा सकती है जो कि प्रत्येक परियोजना की सुदृढ़ता व कम्पनी के सन्तुलित विकास के लिए उत्तरदायी होगी। परियोजना पर प्रबन्ध के अनुमोदन के पश्चात् जब उस पर वास्तव में कार्य प्रारम्भ हो, उस समय भी इसकी सुदृढ़ता पर पुनर्विचार किया जाना चाहिए।

(2) पूँजीगत बजट (Capital Budget) – कम्पनी में चाहे बजटरी नियन्त्रण की एक पूर्ण पद्धति न भी हो तो भी पूँजीगत बजट बनाया जाए। परियोजना के लिए रोकड़ की उपलब्धता (Availability of Cash) और सम्पत्ति की प्राप्ति को आश्वस्त (ensure) करने के लिए पूँजीगत विनियोजनों और भुगतानों का पूर्व-नियोजन आवश्यक हो जाता है।

(3) प्रगति अभिलेख (Progress Record) – प्रत्येक पूँजीगत परियोजना की प्रगति दिखलाने के लिए उसका प्रगति अभिलेख रखना चाहिए। इसके लिए प्रत्येक स्वीकृत परियोजना के लिए एक पूँजीगत परियोजना पत्र (Capital Project Sheet) रखा जाए जिस पर उस परियोजना का पूर्ण विवरण दिया जाए। जब किसी परियोजना पर कार्य चल रहा हो तो उसके अधिकृत व्ययों और वास्तविक व्ययों की एक निश्चित अवधि के बाद तुलना की जाए और अन्तर ज्ञात किये जायें तथा प्रबन्ध कोषों का भी ज्ञान होना चाहिए और कोषों की रकम के अनुकूल ही परियोजना का चुनाव करना चाहिए।

16.12. अग्रेतर अध्ययन (FURTHER STUDIES)

इस अध्याय को और गम्भीर रूप से अध्ययन करने के लिए निम्नलिखित पुस्तकों की सहायता ली जा सकती है —

(1) व्यवसायिक वित्त — डॉ. एस.सी. शर्मा

साहित्य भवन पब्लिशर्स एवं डिस्ट्रीब्यूटर्स, आगरा, 282003

(2) उच्च वित्तीय प्रबन्ध — डॉ. एस.पी. गुप्ता साहित्य भवन प्रकाशक, आगरा, 282003

16.13. सम्भावित प्रश्न (IMPORTANT QUESTIONS)

(1) पूँजी बजटिंग से आप क्या समझते हैं ? एक औद्योगिक संस्था की दृष्टिकोण से इस प्रकार के बजटन के उद्देश्यों का वर्णन कीजिए।

(2) यह पूँजी खर्च निर्णय ही है जो व्यावसायिक सफलता एवं व्यवसायिक असफलता के अन्तर को स्पष्ट करता है। क्या आप इस कथन से सहमत हैं?

(3) 'पूँजी बजटन निर्णयन में शुद्ध रोकड़ व्यय के कौन से अवयव होते हैं' — स्पष्ट कीजिए।

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय
प्रयागराज

॥ सरस्वती नः सुभगा मयस्करत् ॥

सेक्टर-एफ, शान्तिपुरम, फाफामऊ, प्रयागराज-211021

www.uprtou.ac.in

टोल फ्री नम्बर - 1800-120-111-333